ग्रंथांक....347

परमसत्य-असत्य-समीक्षा

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

फलोरिडा में आयोजित द्वितीय जैन कान्फ्रेन्स में देश-विदेशों के 1500 वैज्ञानिक, आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव व आचार्य कनकनन्दी के अनेक दि. श्वे. जैन वैज्ञानिक शिष्यों के भाग लेना

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

(1) श्रीमती चन्द्रकान्ता ध.प. श्री सुमतिविलास जी पंचोरी, ग.पु.कॉ. सागवाड़ा

(2) श्री सुनील जी धनराज जी गोवाड़िया, सागवाड़ा

ग्रंथांक-347 संस्करण-प्रथम 2021

प्रतियाँ-300 मूल्य-151/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री हेमन्त प्रकाश देवड़ा (महावीर)

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 94608-78187

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

पृथ्वी में व्यापक ज्ञान प्राप्ति का सुअवसर आया!

(जीनियस गुरु आचार्यश्री कनकनन्दी जी की वेबिनार देशना)

भावानुमोदक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः क्या मौसम आया है...)

क्या अवसर आया है!...ज्ञानानन्द छाया है...
वैश्विक गुरुवर की वेबिनार चली...
देशना से खिली...चेतना की कली...
कनकनन्दी गुरुवर...सुप्रबोधन कर्त्ता...
अभिनव श्रुत केवली...अभिप्रेरक नेता...क्या अवसर...(ध्रुव)...
विलक्षणज्ञानी आतमध्यानी...ज्ञानोपयोगी विज्ञानी...
स्वमत...परमत-तात्कालीन...ज्ञान-विज्ञान पुरोगामी...
पूरब-पश्चिम के समस्त दर्शन...आधुनिक सर्व विधा के अध्यापक...कनकनन्दी...(1)...
हिन्दु-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई...दिक्-श्वेताम्बर जैनी...
देश-विदेश के शिष्यों में...अनेकान्त दृष्टि पैनी...
जो भी भव्य सुनते...पाते हैं शान्ति...
सुख-साता-समता...स्व/(निज) में विश्रान्ति...कनकनन्दी...(2)...
वैज्ञानिक-दार्शनिक...लेखक-महाकवि...
सारस्वत-तार्किक...बहुभाषी गुणी-गणी...
जीनियसों के जीनियस...पृथ्वी में अग्रणी...
निस्पृह सन्त पाकर...धन्य हुई अवनी...कनकनन्दी...(3)...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-18/12/2020, मध्याह्न-2.40

भव्य जीवों हेतु आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव का दिव्य सन्देश

(चालः वो दिल कहाँ से लाऊँ...) **-क्षु. सुवीक्षमती**

मिथ्यात्व को नशाकर, सम्यक्त्व को है पाना।
हे! भव्य जीव तुझको, निजरूप को है पाना...(ध्रुव)...

अनादि से भटका है तू, स्वयं को नहीं जाना-2
पर में ही रत रहा तू, पर को ही अपना माना...मिथ्यात्व...(1)
देह और आत्मा का, भेद न तूने जाना-2
पुद्गल से चेतना को, भिन्न नहीं है माना...मिथ्यात्व...(2)
पर से न कर तू राग, पर से ममत्व त्याग-2
परभाव सारे तजकर, स्वभाव को है पाना...मिथ्यात्व...(3)
तू नहीं है तन-मन, अक्ष नहीं है तव-2
अनन्तज्ञानदर्श, सुख का तू है खजाना...मिथ्यात्व...(4)
स्वाध्याय तप द्वारा, सत्य का ज्ञान करना-2
ध्यान अनल के द्वारा, कर्मों को है जलाना...मिथ्यात्व...(5)
निश्चय से तू है शुद्ध, व्यवहार से अशुद्ध-2
सत्पुरुषार्थ को जगाकर, सिद्धत्व को है पाना...मिथ्यात्व...(6)
सम्यग्ज्ञान-दर्श पाकर, सुचारित्र को बढ़ाना-2
आध्यात्मिक रसिक बनकर, 'सुवीक्ष' निज को पाना...मिथ्यात्व...(7)

ग.पु.का. सागवाड़ा, दि-22/11/2020, रात्रि-10.00

परम उपकारी सम्यग्दृष्टि प्रदाता कनकनन्दी गुरुवर

भाव सुमन अर्चक-ब्र. आशादेवी खुशपाल जी शाह

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा

प. पू. वैश्विक गुरु, कलिकाल तीर्थंकर, वृहस्पति, सिद्धान्त चक्री, आत्मरमणी, आत्मज्ञानी, तत्त्व वेत्ता, समन्तभद्र, स्वाध्याय तपस्वी, अभिनव श्रुत केवली, अनेक भाषाविद्, समतायोगी, करुण हृदयी, अन्त्योदयी, सर्वोदयी, विश्व कल्याणकारी, वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की जय हो!

हे परम उद्धारक मुनिवर! मुझ मिथ्यात्वी अज्ञानी को मिथ्यात्व से दूर कराकर सम्यक्त्व का बोध कराया। भौतिकवाद से निकालकर आध्यात्मिक बनाया, यह मेरे जीवन में आत्मविकास की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। स्व/(आत्मा) को नहीं जानने से मेरी समस्त धार्मिक क्रियाएँ व्यर्थ थी। मैं घोर अन्धकार में भटकी हुई थी। आपने

अधोगमन से ऊर्ध्वगमन का मार्ग दिखाया। आपके अनन्त उपकारों के प्रति श्रद्धा भक्ति पूर्वक नमन अभिवन्दन-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु...

''भवसागर तारक कनक गुरु''

भाव सुमन-ब्र. आशा देवी

(चालः दयालु प्रभु से... (तुम्हीं मेरे मन्दिर)...

कनक गुरु का ध्यान करूँ मैं...त्रियोग से नित नमन करूँ मैं...
आतम ध्याऊँ तव गुण पाऊँ...तुम सम बनूँ ऐसा वर चाहूँ...(ध्रुव)...
हे समन्तभद्र कलिकाल तीर्थंकर...हे अलौकिक गुरु समता के आगर...
समता को धारूँ वैर भाव त्यागूँ...शान्ति को धारूँ आनन्द पाऊँ...
कनक गुरु का...(1)...
आत्मश्रद्धा धारूँ सम्यक् ज्ञान पाऊँ...स्वयं को जानूँ, स्वयं को पाऊँ...
हे सत्यज्ञानी विश्व विज्ञानी...निराले गुरुवर स्व-पर हितकारी...
कनक गुरु का...(2)...
मुझे भवसागर के दुःखों से बचाना...जीवन भर मेरा साथ निभाना...
भवसागर से पार लगाना...आत्मकल्याण करूँ ऐसा वर देना...
कनक गुरु का...(3)...
हे अयाचक निस्पृही गुरुवर...स्वाध्याय तपस्वी समदृष्टि गुरुवर...
मुझमें करुणा-समता भरना...वात्सल्य मूर्ति के चरणों में नमना...
कनक गुरु का...(4)...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-26/12/2020

गुणों के भण्डार कनकनन्दी गुरुदेव से आशीष पाऊँ

-सुश्री मासूम जैन

(चालः- थोड़ा सा प्यार...)

गुरु के गुणगान गाऊँ, गुरु को नित/(मैं) शीश नवाऊँ।
कनक गुरुवर है हो...ऽऽऽ अनुपम दिव्य योगी...(स्थायी)
श्रुतकेवली गुरुवर, समता शिरोमणि है...

आप सम न कोई है इस धरा पर गुरुवर...
गुरुओं के महागुरु, कवियों के महाकवि
लेखकों में गुरुवर आप हो महालेखक...
वात्सल्य योगी गुरुवर हो...ऽऽऽ आध्यात्म योगी हैं...।। (1) गुरु के...
कौन हूँ 'मैं' गुरुवर, आप से जाना मैंने...
तन-मन रहित, आत्मा हूँ जाना मैंने...
भाषा विज्ञान गुरुवर आप से ही है जाना...
अनेक विषयों का ज्ञान आप से पाया मैंने...
भाग्य मेरे हैं जागे...हो..ऽऽऽ गुरु आशीष पाकर...।। (2) गुरु के...
चिन्तन-मनन में गुरुवर लीन रहते सदा ही...
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा से दूर रहते सदा ही...
बाह्य आडम्बरों से गुरुवर दूर रहते...
आत्मविशुद्धि को ही केन्द्र में है ये रखते
ऐसे गुरु के चरण में...हो ऽऽऽ 'मासूम' का नमन है...।। (3) गुरु के...

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-27/12/2020

मैं हर पल चाहूँ कनकनन्दी गुरुवर का आशीष

श्रीमती ममता W/O नीलेश संघवी

(चालः- ओ गुरु सा..)

कनक गुरुवर तव सेवा चाहूँ मैं, कृपा चाहूँ मैं,
आशीष हर पाल प्राप्त करूँ मैं...(ध्रुव)
आपके स्वाध्याय/वेबिनार में मन रम जाता
आप अरिहंत तव गणधर बनूँ मैं...।।(1)
आप हो बहुभाषाओं के विज्ञानी
हम अज्ञानी सदा ज्ञानी चाहे हम...।। (2)
आपसे ही सीखा हमने आहार विज्ञान
प्राणायाम, व्यायाम, भ्रमण का ज्ञान...।। (3)

मेवाड़, वागड़ वासियों के आप उद्धारक
मोह अज्ञान के संहारक हो...।। (4)
आप से ही जाना हमने आत्म/मैं का स्वरूप
तन मन इन्द्रियों से परे स्वरूप...।। (5)
ममता चरणों में शीश नवाएँ
श्रीसंघ का सदा रहे/मिले आशीर्वाद...।। (6) **ग.पु.कॉ. सागवाड़ा**

अभिनव श्रुतकेवली आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर का नवाचारक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व

अनुमोदक-शाह नगीन जैन, अध्यक्ष

श्री परमपूज्य अभिनव श्रुतकेवली स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ वागड़ क्षेत्र सागवाड़ा कॉलोनी में विराजमान है। COVID-19 के कारण राष्ट्रधर्म कानून व्यवस्था का पालन निर्वाहन के कारण धर्म सभाएँ नहीं हो सकी। लेकिन आचार्यश्री ने वेबिनार के माध्यम से सारे विश्व एवं पृथ्वी के सम्पूर्ण जीवों को ज्ञानामृत पिलाया है। गुरुदेव के ज्ञान महासागर के वेबिनार में आध्यात्मिक के साथ-साथ अन्य विषयों जैसे धर्म, दर्शन, विज्ञान, न्याय, कानून, सम्विधान, राजनीति, शिक्षा, संस्कृति पर्यावरण व समस्त युगीन बहुआयामी ज्ञानादि के बारे में विस्तृत जानकारियाँ दी। आचार्यश्री के संसघ का सेवा का पुण्य अवसर समाज अध्यक्ष होने के कारण मुझे मिला है। इस अल्प समय में मैं मेरा अनुभव बता रहा हूँ, आपका चातुर्मास खर्च रहित यानि जीरो BALANCE में हुआ है। इसका मुख्य कारण आप आत्मा के स्वाभाविक स्वभाव में रहना सिखाते हैं। आडम्बर, व्यसन, फैशन ख्याति, पूजा, लाभ आदि भौतिक चकाचौंध से दूर रहते है और हमें भी दूर रहने की प्रेरणा देते है।

वागड़ क्षेत्र के छोटे-छोटे गाँवों में आपने चातुर्मास किये है। स्वाध्याय का लाभ देते हुए आपने हमारी कमियों को समझा, हमारे शिक्षा स्तर को पहचानकर हमारे अनुकूल शब्द वाक्यों व भाषा का चयन करते हुए पढ़ना, शुद्धबोलना, व्याकरण सम्बन्धी हिन्दी भाषा में काफी सुधार करवाया। इतना ही नहीं नन्हें बालकों

को बालकवि बना दिया। बच्चों के माता-पिता दादा-दादी, नाना-नानी, गर्व महसूस करते हैं।

महिला शक्ति आपके ज्ञान से काफी प्रभावित हुई हैं। महिलाएँ समझती थीं कि हम किचन रसोई तक हमारा कार्य सीमित है, लेकिन महिलाओं के पढ़ने की रुचि बढ़ने से उन्होंने भी काव्य रचनाएँ रची हैं गुरुदेव के वेबिनार में बालक, पुरुषों के साथ-साथ महिलाएँ भी प्रचारण प्रसारण में विशेष सहभागी हैं। गुरुदेव की वेबिनार प्रवचन शृंखला विश्वव्यापी हैं; भारत एवं विदेशों में समय का अन्तर है। फिर भी स्वाध्याय प्रेमी विदेशी मध्यरात्रि में भी श्रवण करते हैं। आपके अधिकतम शिष्य 30 से 40 वर्ष पुराने जो उच्च शिक्षाधारी जज, प्रोफेसर, दार्शनिक, वैज्ञानिक जो अलग-अलग विषयों P.H.D किये हुए हैं। वे अपनी जिज्ञासाएँ वेबिनार में प्रश्नोत्तर के माध्यम से पूरी करते हैं।

आपके प्रवचन की विशेषता है, कि आत्म स्वभाव की, पर्यावरण सुरक्षा प्रकृति के अनुकूल रहने की व सूक्ष्मजीवदया चरित्र, आपका आचरण आपकी लेखनी की अनुरूप है। पन्थवाद से दूर किसी की निन्दा नहीं करना। अच्छे गुणों का बखान करना, इन विशेषताओं के कारण विश्व के सभी सम्प्रदाय के धार्मिक गुणवान् साधक श्वेताम्बर, सनातन, इस्लामी, ईसाई (मुस्लिम) सभी साधक आपके भक्त हैं एवं वेबिनार को श्रवण करते हैं।

आचार्यश्री कि शिक्षा, प्रेरणा, व चर्या से प्रभावित होकर वागड़वासी धर्म स्नेही परिवारों ने अपने मांगलिक कार्य विवाह आदि दिन में सम्पन्न किये हैं। सूर्यास्त से पहले भोजन समाप्ति एवं विवाह भोजन में जैनाचार की मर्यादाओं का पालन किया है। विवाह में गिफ्ट आइटम के बजाय धार्मिक पुस्तकों जो आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों का वितरण किया। मैं नगीनशाह कॉलोनी श्रीसमाज अध्यक्ष आचार्य श्री का सानिध्य पाकर अपनी बेटी की शादी में ज्ञानदान के रूप में ग्रन्थों का वितरण किया है। अन्य चार प्रकार का दान दिया है। इससे समाज को एक नई दिशा मिलेगी नवाचार हुआ।

नव-विवाहित जोड़ों को धर्म निर्वाह करते हुए आत्मस्वभाव का पालन करने के लिए आचार्यश्री ने आशीर्वाद दिया है। **जय-जय सदगुरुदेव**

तत्त्वार्थ सूत्र-(स्वतंत्रता के सूत्र)-वेबिनार

प्रस्तुति-दीपिका नगीन शाह

''आचार्य रत्न मचलं गुण सागरं च,
स्वाध्याय कर्मणिरतं परमं प्रशांतम्।
गभ्भीर सिन्धु तम नाशक भास्करं च,
वंदे सदा कनकनन्दी महा यतीन्द्रम्''।।

कलिकाल समन्तभद्र, अकलंक स्वामी, सिद्धान्तचक्रवर्ती, श्रुतकेवली, आध्यात्म योगी, वैश्विक सूरी, स्वाध्याय तपस्वी, महाविज्ञानी, महाकवि, आचार्य भगवन् श्री कनकनन्दी गुरुदेव एवं ससंघ के पावन चरणों में कोटिशः वंदन।

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के आध्यात्मिक महान् गुणों की अनुशंसा करते हुये मैं यह कह रही हूँ कि गुरुदेव निस्पृही, निराडम्बरी, आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी, आत्मानुभवी, सहज, सरल, समताधारी है। यह एकदम सत्य है वैसे तो मैं 1997 सागवाड़ा चातुर्मास से गुरुदेव से श्रद्धा स्वरूप जुड़ी हुई हूँ परन्तु विशेष हमारे यहाँ (गलियाकोट पुनर्वास कॉलोनी सावाड़ा) 2007 में चातुर्मास से गुरुदेव से अध्ययन व गुरुसेवा करते हुये अनुभव कर रही हूँ कि गुरुदेव ख्याति, पूजा, लाभ, प्रशंसा, प्रतीक्षा-उपेक्षा से परे व लड़ाई-झगड़ा संकीर्ण संतवाद, कट्टर पंथवाद, ग्रंथवाद, पट्टवाद, परनिंदा, परप्रपंच, चंदा-चिट्ठा, बोली, बाह्य आडम्बर, धन-जन पराश्रित से परे पंचकल्याणक, शिविर, पूजा-विधान, संगोष्ठी, वेबिनार आदि करते हैं। आचार्यश्री अभी प्रायः एकांत, जंगल, गाँव, शांतस्थान में रहते हुये पाँच प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मौन साधना करते हैं एवं आचार्य, साधु, वैज्ञानिक दार्शनिक आदि अनेक विद्वान् शिष्यों को पढ़ाते हैं।

आचार्यश्री के अनेक विद्वान् शिष्य वैज्ञानिक, उद्योगपति, प्रोफेसर आदि आचार्यश्री के लिये करोड़ों रुपया खर्च कर स्व-नगर में ले जाना चाहते हैं और चरणों में रहकर सेवा और ज्ञानार्जन करना चाहते हैं तथापि आचार्यश्री एकांत, जंगल, गाँव में, शांत-स्थान में निवास कर रहे हैं।

आचार्य श्री के अभी 400 चातुर्मास का निवेदन है जिसमें कई दिगम्बर, श्वेताम्बर, हिन्दू भक्त व दो राजवंश परिवार के अलग-अलग चातुर्मास हेतु कई बार श्रीफल भेंटकर आशीर्वाद प्राप्त किया है।

गुरुदेव की दृष्टि सभी पर एक समान है अमीर-गरीब छोटा-बड़ा, विद्वान्-सामान्य कभी भेदभाव नहीं करते हैं। ऐसे महान् संत के गुणानुवाद स्वरूप मेरी स्वरचित कविता प्रस्तुत है।

''इस युग के महावीर, युगश्रेष्ठ, श्रुतकेवली, मेरे आराध्यप्रभू आचार्य भगवान् जी कनकनन्दीजी''

(''रचयित्री-दीपिका नगीन शाह'')

हे! महाज्ञानी हे! महाऋषिवर, इस युग के महावीर।
महापापों से मुझे बचाओ, आतम बोध कराओ।।
कि परम सत्य जानूँ प्रभु, परम लक्ष्य पाऊँ प्रभु।।
माना कि तीर्थंकर फिर से, जन्म नहीं लेते।
तीर्थंकर के लघुनन्दन श्री, 'कनक' गुरु सम होते।।
हे! पर उपकारी, करुणाधारी, तुम हो आत्मध्यानी।
मिथ्या मोह से मुझे बचाओ, आतम बोध कराओ।
कि तव गुण गाऊँ प्रभु, परम गुण पाऊँ प्रभु।। (1)
महान् उदारभावी ऋषिवर, नरक दुःखों से बचाया।
''समता ही परमो धर्म'', यह सबको बतलाया।।
हे! कलिकाल के समन्तभद्र/अकलंक, तुम विविध विधा के ज्ञानी।
हे! वर्तमान के श्रुत केवली, तुम विविध विधा के ज्ञानी)
महादोषों से मुझे बचाओ, सम्यक् बोध कराओ।
कि दिव्य वाणी उर धरूँ, स्वात्म विशुद्धि करूँ।। (2)
हे! महाज्ञानी............................।
महापापों से..............................।।

ऐसे महान् ज्ञानी गुणधारी उदारभावी गुरुवर को मैंने और हमारे यहाँ वागड़ के पाँच गाँव वालों ने विपरीत समझकर घोरातिघोर पाप बंध किया था। इन पापों का

प्रायश्चित्त करते हुये मैं साक्षात् गुरु चरणों में दोष स्वीकार कर पाप प्रक्षालन कर रही हूँ। हे गुरुदेव आप मुझे (हमें) क्षमा करें।

हमारे पाँच दोष निम्नलिखित हैं-

1. गुरुदेव की श्रेष्ठ आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, गणितीय भाषा एवं अठारह भाषाओं का व्याकरणबद्ध ज्ञान को न समझकर हमने महागुरु को ही विपरीत माना कि गुरुदेव की हिन्दी भाषा नहीं आती।

2. आचार्यश्री विमलसागरजी गुरुदेव के आदेश से गुरुदेव ने ग्रंथ लेखन प्रारंभ किया है आचार्यश्री विमलसागरजी के आदेशानुसार आज गुरुदेव की कलम जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुये अनवरत चल रही है। ऐसे महान् सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले महागुरु को गलत (विपरीत) मानकर हम यह कहते रहे कि गुरुदेव ग्रंथ क्यों छपाते हैं? उनको कौन पढ़ता है? अविनय होता है ऐसा विपरीत मानकर घोरातिघोर ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया है।

3. मैं अर्थात् आत्मा को न जानते हुये हमने मैं को देह, पुद्‌गल ही माना और मैं को अहंकार स्वरूप मानकर गुरुदेव की आध्यात्मिक मैं की चर्चा को विपरीत माना।

4. गुरुदेव सदैव अपने आराध्य देव-शास्त्र-गुरु की प्रशंसा, गुणानुवाद जयकारा करते हैं एवं अपने भक्त शिष्यों की भी बार-बार प्रशंसा ही करते हैं आपके इस प्रशंसा महान् गुण को गलत (विपरीत) माना। आप सदैव अच्छे कार्य की प्रशंसा करते हैं एवं उन्हें प्रोत्साहित करते हैं।

5. गुरुदेव सब कुछ जानते हुये कमी किसी की कभी नहीं बताते, कभी निंदा नहीं करते किन्तु उसके उत्थान का भाव रखते हैं। अगर किसी को कुछ समझाना हो तो संदर्भ आने पर करुणाभाव से प्राणी मात्र के हित के लिए उपदेश देते हो।

ऐसे महान् गुरुवर के चरणों में अनंतानंत प्रणाम।

-ॐ जय जय जय गुरुदेव-

आ. कनकनन्दी गुरुदेव की महानताएँ व हमारी विपरीतताएँ

(वेबिनार में पठित)

-सौ. विजयलक्ष्मी

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के महान् आध्यात्मिक अनंत गुणों में से उनके पाँच विशेष गुणों को मैंने व हम वागड़ के पाँच गाँवों के लोगों ने विपरीत माना। मैं विजयलक्ष्मी गोदावत 1997 गुरुदेव के सागवाड़ा चातुर्मास से सम्पर्क में हूँ तथा 2007 से गुरुदेव से पढ़ रही हूँ। हमारा मिथ्यात्व जड़ से मिट जाये इस हेतु मैं गुरु चरणों में दोषों का विवेचन कर प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। पहला दोष-मैं का अर्थ आत्मा। गुरुदेव हमेशा मैं का प्रयोग आत्मा के अर्थ में करते हैं, परन्तु हम मूढ़ बुद्धि वाले मैं का प्रयोग शरीर के अर्थ में ही करते हैं। पहले हमें आत्मा का तो परिचय ही नहीं था अतः गुरुदेव को गलत समझते थे कि वह अहंकार कर रहे हैं। गुरुदेव से पढ़ने से ज्ञात हुआ कि आत्मा के ज्ञान के बिना सब ज्ञान कुज्ञान, मिथ्याज्ञान है व धर्म को स्वयं से जोड़े बिना सब धर्म कार्य अधर्म है।

2.ग्रन्थ लेखन की गलत धारणा-गुरुदेव अपने आचार्य गुरुओं की प्रेरणा, मार्गदर्शन आशीर्वाद व बार-बार गुरु आज्ञा की पालना हेतु साहित्य सृजन कर रहे हैं। वे अपने जैनधर्म में गर्भित वैज्ञानिक सिद्धान्तों व रहस्यों को प्रचीन महान् ग्रन्थों की समीक्षा करके वर्तमान की नई पीढ़ी को दिशा व मार्गदर्शन दे रहे हैं। परन्तु उसके साहित्य सृजन को हम वागड़ के पाँच गाँव वालों ने गलत माना कि इतने सारे ग्रन्थ गुरुदेव लिखते है इसका क्या उपयोग है? कौन पढ़ता है? मंदिर में रखे रहते है? उनकी कोई देखभाल नहीं करता है। यह सब हमारी ही कमियाँ हैं, हम ही स्वाध्याय अति कम करते हैं अतः इनकी उपयोगिता व महत्व को नहीं जानते हैं। वर्तमान में वेबिनार के माध्यम से तथा गुरुदेव के साहित्य पर P.H.D. आदि होने से उसका महत्व ज्ञात हुआ है। गुरुदेव के स्वाध्याय से जाना कि जिनवाणी के रख-रखाव, सुरक्षा, कवर चढ़ाना, ठीक करना, व्यवस्थित करना भी महान् पुण्य है, वैयावृत्य है। पहले शास्त्र का एक पेज पढ़ लेना ही स्वाध्याय है यहाँ तक ही सीमित था। कथा-कहानियों तक ही शास्त्र ज्ञान जानते थे। करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग का केवल नाम तक ही परिचय था। स्वदोषों को दूर करने के लिए व ज्ञान बढ़ाने के लिए

हमने गुरुदेव के साहित्य कक्ष की स्थापना की है। जिसके माध्यम से पूरी पृथ्वी में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान की प्रभावना बढ़ रही है।

3. भाषा ज्ञान को विपरीत समझना-हिन्दी भाषा व व्याकरण का कुछ ज्ञान नहीं होने के कारण गुरुदेव की उच्च गणितीय, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, व्याकरण बद्ध हिन्दी को हम समझ नहीं पाते थे अतः हम उन्हें गलत समझते थे कि उन्हें हिन्दी नहीं आती हैं। वह अन्य प्रान्त के होने से शायद उन्हें हिन्दी कम आती होगी। हम हिन्दी भाषी होने पर भी हिन्दी का व्याकरणबद्ध प्रयोग नहीं करते, हमारा उच्चारण भी सही नहीं है। अतः हमें उनका शुद्ध उच्चारण भी अशुद्ध ज्ञात होता है। हम अधिकांश मुसलमानी उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग करते है, यह भी हमें ज्ञात नहीं था हमारे उच्चारण में शुद्ध हिन्दी शब्दों का तो लगभग लोप ही हो गया है। यह हमारे देश का कई वर्षो तक गुलाम रहने का प्रतिफल है वर्तमान में बच्चों को इंगलिश मीडियम में पढ़ाने का भूत सवार होने से न बच्चों को हिन्दी आती है न इंगलिश। वर्तमान में शुद्ध हिन्दी का लोप ही हो गया है। हिन्दी हमारी मातृभाषा है उसका ज्ञान हमें अवश्य होना चाहिए। परन्तु इस दृष्टि से हम सब अञ्चल के वासी भ्रमित व विपरीत थे।

4. गुण प्रशंसा व गुण प्रोत्साहन को विपरीत मानना-गुरुदेव की दृष्टि हमेशा गुणग्राही व गुणों को ही देखने वाली है। गुरुदेव पापी, दुष्टी में भी एकाध गुण अवश्य ढूँढ लेते है। गुरुदेव किसी भी व्यक्ति के छोटे से गुण को देखकर उसकी प्रशंसा व प्रोत्साहन से उसका विकास करके महान् बना देते है। मैं भी उनमें से एक हूँ। मेरे लेखन के व स्वयं के अनुभव लिखने के सामान्य गुण को गुरुदेव के प्रोत्साहन, सुधार, मार्गदर्शन व आशीर्वाद से मैंने दो पुस्तकें ''दिव्य देशना'' व आचार्य कनकनंदी वचनामृत गुरुदेव के स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान का संकलन करके लिखी है व अन्य भी लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में देती हूँ। जिससे गुरुदेव के ज्ञान का लाभ सभी को प्राप्त हो। ऐसे ज्ञानी गुरु मिलना अतिदुर्लभ है अतः सब उनसे ज्ञानार्जन करें ऐसी मेरी भावना 2007 से ही हैं। गुरुदेव ज्ञान देने में बहुत उत्सुक हैं। गुरुदेव सबका विकास व सबको प्रोत्साहन देते हैं, उनमें कोई पक्षपात नहीं है। ऐसे महान् गुण को लोगों ने गलत समझ लिया था कि गुरुदेव सबकी प्रशंसा ही करते है। यह व्यक्ति तो पापी है तो भी गुरुदेव इसकी प्रशंसा करते हैं।

5. निंदा नहीं करने को भी गलत मानना–गुरुदेव किसी की भी निंदा नहीं करते हैं। वे सबके दोष व कमियों को जानते हैं परन्तु उसकी निंदा नहीं करते हैं। माध्यस्थ भाव रखते है, किसी के भी दोष की चर्चा उनके संघ में या गुरुवर के सामने कभी कोई कर ही नहीं सकता। कोई निंदा करे तो गुरुवर उसको महान् दण्ड देते हैं। गुरुदेव कहते हैं निंदा करने से उसकी पीठ का माँस खाने का पाप लगता है। अर्थात् पीठ पीछे निंदा से 70 कोड़ाकोडी सागर तक दुःख भोगना पड़ता है। हम अधिकांश समय एक-दूसरे की निंदा ही करते रहते हैं, निंदा से इतना महान् पाप बंध होता है वह नहीं जानते थे। अतः गुरुदेव के इस महान् गुण को भी विपरीत मानते थे। देव-शास्त्र-गुरु व गुण-गुणी की निंदा करना नरक-निगोद में अनन्तकाल तक रहने की इच्छा रखने जैसा हैं।

हमारे वागड़ के पाँच गाँवों के लोगों के इन पाँच दोषों को दूर करने के लिए कनकनन्दी गुरुदेव ने सैंकड़ों ग्रन्थों की रचना की है। स्वदोष स्वीकार से हमारी धर्म-प्रभावना, ज्ञानदान, आहारदान आदि में दिनोदिन वृद्धि हो रही है। गुरुदेव को पीड़ा है कि वागड़वासी सेवा, वैयावृत्य, आहार-दान में सबसे आगे हैं परन्तु ये पाँच दोषों के कारण महान् पाप कर रहे हैं। मैं 1997 से गुरुदेव से सम्पर्क में हूँ व 2007 से तो पढ़ रही हूँ फिर भी स्वयं के दोष ज्ञात नहीं हो रहे थे परन्तु गुरुदेव अपने शिष्यों के दोष दूर करने के लिए सबको व्यक्तिगत रूप से बताते हैं व सुधार के लिए प्रायश्चित्त भी देते हैं। आहार के समय भी शरीर के किसी अंग या कपड़ों को हाथ लगने पर गुरुदेव बार-बार हाथ धुलाते हैं परन्तु हम उसका वैज्ञानिक कारण नहीं जानते थे परन्तु वर्तमान में कोराना जैसे शुद्र प्राणी से यह भी सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो गया।

सागवाड़ा के पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगंबर जैन मंदिर में ससंघ विराजित धर्माचार्य ने दिए प्रवचन

धर्माचार्य ने देश-विदेश के वैज्ञानिकों और शिष्यों को वेबिनार में धर्म ध्यान के प्रकार और जीवन में आवश्यकता की दी जानकारी

पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगंबर जैन मंदिर में ससंघ विराजित वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी गुरुदेव ने देश विदेश के वैज्ञानिकों व शिष्यों की वेबिनार में

धर्मध्यान के प्रकार और जीवन में उसकी आवश्यकता के बारे में विस्तार से समझाया। गुरुदेव ने बताया कि बाह्य क्रियाकांड ही धर्म नहीं है, वह निमित्त है। आत्म विकास के लिए चार प्रकार के धर्म यान है। आज्ञा वचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय धर्मध्यान। जो करुणा से युक्त नहीं है वह धर्मध्यान नहीं कर सकता। लोग रूढ़िवादिता के कारण प्रायोगिक धर्म, यथार्थ धर्म, आत्म स्वभाव को नहीं जानते हैं। आचार्य ने कहा कि अशुभ ध्यान को छोड़ेंगे तब शुभ ध्यान होगा।

जो आध्यात्म ज्ञान आत्मज्ञान में सक्षम नहीं है तथा राग द्वेष से लिप्त है वे शुभध्यान नहीं कर सकते। जिनमें करुणा, दान, दयादत्ती, सौम्यता, प्रेम नहीं होंगे तथा रौद्र ध्यानी, क्रूर लड़ाई झगड़े करने वाले, कलहकर वचन बोलने वाले, मोहित होने वाले, भाव में क्रूरता, निर्दयता तथा आसक्ति भाव वाले लोग धर्म ध्यान नहीं कर सकते। काले कठोर विषाक्त भारी परमाणु पाप के परमाणु हैं। भाव तरंगे पूरे ब्रह्मांड में फैलती है जो अन्य जीवों को भी प्रभावित करती हैं। एकाग्रता होने पर मन स्थिर होता है। गुरुदेव ने कहा सबसे पहले भाव परिष्कार करो। जब तक वचन व क्रिया शुभ नहीं होगी तब तक शुभध्यान नहीं होगा। पवित्र भाव से पुण्य बंध होगा और इसी से जीव का विकास व गुणस्थान में वृद्धि होगी। धर्म में दया करुणा आदि आध्यात्मिक भाव किसी न किसी रूप में होते हैं। एक जाति के लोप से उसकी अनुषांगिक 32 प्रजातियाँ नष्ट हो जाएंगी। मधुमक्खियाँ व पतंगे नष्ट होने पर कुछ ही दिनों में मनुष्य मर जाएंगे। विजयलक्ष्मी गोदावत की जिज्ञासा थी कि पीड़ाचिंतन आर्त्तध्यान से कैसे बच सकते हैं? गुरुदेव ने उसके समाधान में बताया कि अनंतवीर्य प्रगट नहीं होगा तब तक व उत्तम संहनन नहीं होने पर छद्मस्थ जीव को अवश्य पीड़ा होती है। पीड़ा को स्व स्वभाव नहीं मानना चाहिए, समता से सहन करना चाहिए। इससे पहले मंगलाचरण विजयलक्ष्मी गोदावत ने किया।

वेबिनार में ध्यान, प्राणायाम और पूजा का आध्यात्मिक-धार्मिक महत्व बताया

पुनर्वास कॉलोनी जैन मंदिर में आचार्य के समाधि दिवस पर पूजा हुई

सागवाडा। पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी गुरुदेव के सानिध्य में मंगलवार को वात्सल्यरत्नाकर आचार्य विमलसागरजी गुरुदेव के 27 वे समाधि दिवस पर पूजा हुई।

श्रद्धालुओं ने भगवान् की प्रतिमा पर विभिन्न द्रव्यों से अभिषेक किया। विजयलक्ष्मी गोदावत ने बताया कि पूजन के बाद आचार्य ने देश विदेश के वैज्ञानिकों और शिष्यों की वेबिनार में ध्यान, प्राणायाम, पूजा आदि के आध्यात्मिक और धार्मिक महत्व के बारे में विश्लेषण किया। आचार्यश्री ने बताया कि प्राणायाम अवलंबन है साध्य नहीं है। ध्यान के लिए, स्वास्थ्य लाभ के लिए प्राथमिक विद्यार्थी के लिए अवलंबन आवश्यक है। आचार्य ने प्राणायाम का उदाहरण देते हुए बताया कि ध्यान जो अमृत है सुवर्ण पात्र में छिपा हुआ है परंतु उसकी चकाचौंध देखकर भ्रमित हो रहे हैं। प्राणायाम को अधिक महत्व देना इसी तरह है। लक्ष्य के अनुसार गमन ही लक्ष्य को प्राप्त कराएगा। प्राणवायु से शक्तिशाली मन है तथा मन से भी अनंत शक्तिशाली आत्मा है। उफनते दूध को शांत करने के लिए ईंधन निकालना पड़ेगा। उसी प्रकार ध्यान के लिए राग, द्वेष, क्रोध आदि कषायों को शांत करना पड़ेगा। इंद्रियाँ मन आदि को एकाग्र करके समता से ध्यान करना चाहिए। समता ही परम मोक्षमार्ग, परमचरित्र है।

शहर के पुनर्वास कॉलोनी जैन मंदिर में वेबिनार से देश विदेश के वैज्ञानिक और शिष्य जुड़े

मनुष्य का मन एकाग्र होने से आई. क्यू. और एसक्यू बढ़ता है: धर्माचार्य कनकनंदीजी

पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में ससंघ विराजित वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी गुरुदेव ने रविवार को देश विदेश के वैज्ञानिकों व

शिष्यों की वेबिनार में ध्यान का आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक विश्लेषण किया। आचार्य ने बताया कि वेबिनार के माध्यम से आज हर घर स्कूल और कॉलेज सिद्ध हो रहे हैं। ध्यान के प्रति विदेशों में अधिक आकर्षण है। आचार्य ने बताया कि केवल शारीरिक व्यायाम ही ध्यान नहीं है। ध्यान मुख्य रूप से तीन प्रकार का अशुभ, शुभ, शुद्ध होता है। मोक्षमार्ग में शुभ व शुद्ध ध्यान आत्म विशुद्धि के लिए अनिवार्य है। ध्यान व ज्ञान में बड़ा अंतर है।

एक इन्द्रिय से लेकर पंच इंद्रिय हर जीव सतत आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान करता है। 84 प्रकार के आसन जैनधर्म व हिन्दूधर्म में है, वह योगासन है परंतु योगासन ध्यान नहीं है। ध्यान मन को पवित्र भाव से केंद्रीयभूत करना है। आचार्य ने कहा कि मनुष्य से अधिक पशु ध्यान करते हैं। जैसे एनाकोण्डा, घड़ियाल, पोलर बियर ये सप्ताह तक एक स्थान पर बिना हिले डुले स्थिर रहकर बिना शरीर को हिलाए ध्यान करते हैं परंतु यह आर्त्त ध्यान रौद्र ध्यान है। ये जीव शिकारी आदि के लिए जो ध्यन करते हैं वह मोक्ष के भागीदार नहीं है। पंच पाप राग द्वेष होते हुए शुभ ध्यान नहीं होता। शुभ भाव श्रावक को भावना रूप में तथा मुनि को प्रकृष्ट रूप में होता है। भाव अपवित्र होने पर मन चंचल होगा ही। मन को स्थिर करने का सबसे बड़ा उपाय है मन को पवित्र करना। मन एकाग्र होने से आई क्यू-एसक्यू बढ़ता है। शुभ ध्यान नहीं करने वालों का ओरा काला व शुभ ध्यान करने वालों का ओरा सफेद होता है।

शुभ ध्यान से मानसिक व शारीरिक रोग दूर होता है तथा अल्फा, बीटा किरणें निकलती है। जो तप, श्रुत, व्रत से युक्त होता है वही शुभ ध्यान कर सकता है। आत्म तत्त्व को जानना ध्यान के लिए आवश्यक है। आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, पंच पाप, सप्त व्यसन आदि का त्याग होने पर शुभ ध्यान होगा। योग के बारे में बताते हुए आचार्य ने कहा कि पंच पापों को त्याग करना यम है। मन को संयमित करने के लिए रोज नियम करना नियम है। मन को एकाग्र चित्त, ज्ञान को स्थिर करना तथा चंचल मन को स्थिर करना, मन वचन काय व आत्मा को परमात्मा से जोड़ना योग है। मन अस्थिर होने से न्यूरॉन्स मस्तिष्क से कट जाते हैं अतः याद नहीं रहता है। मन चंचल होने पर ध्यान अवस्था में बैठने पर भी ध्यान नहीं होता है। संकल्प विकल्प को रोकना ध्यान से ही संभव है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से न्यूरॉन्स डिस्टर्ब हो

जाते हैं। इसलिए उनको रोकने के लिए ध्यान, योग, प्राणायाम, सत्संग और स्वाध्याय का सहारा लेना चाहिए।

आचार्य श्री कनकनन्दी जी का विश्वव्यापी शंखनाद

साभार-जैन गजट

देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान् से लेकर भगवान् महावीर, उसके बाद गौतम गणधर से लेकर पुष्पदन्त-भूतबलि कुंदकुंदाचार्य स्वामी के बाद क्रम से पूर्वोचार्यो द्वारा आती हुई मा जिनवाणी जिसमें जैन दर्शन के प्रत्येक सिद्धांत, आत्म तत्व, कर्म सिद्धान्त, धर्म-दर्शन व विज्ञान समाहित है।

उसे अहिंसा मिशन फाउंडेशन व अंतर्राष्ट्रीय जैन विद्वत संघ के संस्थापक इसरो वैज्ञानिक डॉ. राजमल जी के पुरुषार्थ द्वारा वर्तमान समन्तभद्र, कलिकाल अकलंक, अभिनव श्रुतकेवली स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुराज के अथाह ज्ञानबल, अद्वितीय शिक्षण शैली, सारगर्भित लाइव प्रवचन के द्वारा प्रत्येक सप्ताह में चार बार सोमवार, मंगलवार, गुरुवार व शनिवार दोपहर 3.30 बजे जैनम जूम चैनल वेबिनार के माध्यम से विश्व भर में शंखनाद किया जाता है।

जिसमें देश-विदेश के अनेक विद्वतजन सम्मिलित होकर आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित हो रही ज्ञान गंगा में से कलश भरकर सारे विश्व में ज्ञानामृत रूपी गन्धोदक की वृष्टि कर रहे हैं।

वेबिनार में ठीक 4.30 बजे जारी स्वाध्याय विषय से सम्बन्धित किसी भी श्रोता की जिज्ञासा का आचार्यश्री द्वारा समाधान होता है।

इस प्रकार ठीक 3.30 से 4.30 तक आचार्यश्री का विश्व द्रव्य विज्ञान-मोक्ष शास्त्र पर लाईव प्रवचन व 4.30 से 5 बजे तक लाइव जिज्ञासा समाधान होता है।

इस वेबिनार के नियमित श्रोता संचालक डॉ. राजमल जी, भारतीय कृषि अनुसंधान के पूर्व राष्ट्रीय उपमहानिदेशक प्रो. देव कुमार चक्रवर्ती, कृषि वैज्ञानिक डॉ. श्यामलाल गोदावत, डी लिट्-प्रो.बी. एल.सेठी अमेरिका से विद्वत रामगोपाल जी, जर्मनी से विद्वत अजित जी बेनाड़ी, सांगली से दिलीप जी बाघमरे, दिल्ली से विज्ञान विद् अरिंजय जी, जमशेदपुर से डॉ. जीवराज जी, विद्याधर जी धानवड़े, डॉ रेखा

जैन बेंगलोर व डॉ. रीता जैन मुम्बई सहित अन्य भी ज्ञानी जन गद्गद् होकर भगवन् के समवशरण में खिरने वाली दिव्य ध्वनि का जो वर्णन आगम में बताया है उसके समान अनुभूति होने का बखान करते हैं।

इसी शृंखला में आचार्य श्री गुप्तिनन्दी जी, आचार्यश्री विद्यानन्दी जी, मुनिश्री आज्ञासागर जी, गणिनी आर्यिका आस्थाश्री माताजी भी स्वाध्याय में सम्मिलित होकर पूज्य महाज्ञानी वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज के समक्ष जिज्ञासा रखकर श्रेष्ठ समाधान को प्राप्त करते हैं।

यह वेबिनार भारतीय समयानुसार जब लाइव होता है तब अन्य देशों में मध्य रात्रि होती है किंतु फिर भी जिज्ञासु श्रोतागण एलार्म रखकर निद्रा प्रमाद को छोड़कर निश्चित समय से पूर्व ही स्वाध्याय कक्षा में सम्मिलित हो जाते है।

वर्तमान में विराजित सन्तों में सबसे वरिष्ठ व वात्सल्य के अनन्त भंडार गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी ऋषिराज के सबसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ सुशिष्य सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज जो कि जैन दर्शन के ज्ञान सूर्य हैं, चलते फिरते जैनागम हैं, जीवंत वृहद पुस्तकालय है ऐसे महाज्ञानी गुरु की दिव्य देशना का जैनम् जूम चैनल वेबिनार के माध्यम से विश्वभर को लाभान्वित किया जा रहा है।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के गुरुभक्त अग्रणी युवा पारस जी लोहाड़े, राहुल जैन जो इस वेबिनार को नियमित जारी रखने की अनुमोदना कर चुके हैं।

पूज्य गुरुराज की दिव्य देशना को सुनकर विश्वभर में उनके द्वारा रचित 350 गहन साहित्यों की समाधान हेतु मांग हो रही है जिसे अनुभव करते हुए गुरुभक्त श्रीमान् सनत जी पहाड़िया उदयपुर ने अपने पुण्य पुरुषार्थ, निःस्वार्थ व स्व प्रेरणा से समस्त साहित्यों को वेबसाइट पर निःशुल्क पीडीएफ के रूप में डिजिटल कर दिए जिसके भाव सहयोगी श्रीमान राजेश जी जीतमल जी जैन रहे। ये समस्त साहित्य www. acharyakanaknandijikesahitya.com पर उपलब्ध है। गुरुदेव की ज्ञानवाणी को विश्व स्तर पर पहुँचाने के लिए इस वेबिनार में आचार्यश्री को लाइव रखने के लिए स्थानीय 13 वर्षीय बालक वर्ण मनीष जी जैन व 21 वर्षीय युवा

अभय आश्विन जैन अपने ऑनलाईन शिक्षा में उपयोगी डिवाइस व नेट का सदुपयोग स्वेच्छा से यहाँ पर भी कर देते हैं।

बिना किसी याचना, दबाव, बिना चंदे व बिना प्रलोभन, बिना बोली के विश्व व्यापक धर्म कार्य मा जिनावाणी की सेवा सराहनीय है।

(मधोक जैन, चितरी)

देव-शास्त्र-गुरु के प्रत्यक्ष-परोक्ष विनय

(शास्त्रों में भी गुरु शिष्यों का वर्णन विधेय/(अनिवार्य))

(चालः- यमुना किनारे..)

गुणगान करूँ देव-शास्त्र-गुरु का, विनय करूँ मैं प्रत्यक्ष-परोक्ष का।
विनय मोक्षद्वार व ज्ञान प्राप्ति का, यह ही स्तुति, वन्दना, पूजा-प्रार्थना।। (1)
''वन्देतद्गुणलब्धये'' हेतु मैं करूँ, ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धि त्यागूँ।
नवकोटि से सतत मैं करूँ, लेखन-पठन-प्रवचन में करूँ।। (2)
निबद्ध-अनिबद्ध मंगलाचार में करूँ, पापनाश व पुण्य हेतु मैं करूँ।
निर्विघ्न कार्य सम्पादन हेतु में करूँ, परम्परा से मोक्ष प्राप्ति हेतु करूँ।। (3)
गणधर से ले पूर्वाचार्य तक, करते हैं, ऐसा सभी विनय कर्म।
आदि-मध्य-अन्त में करते विनय, न हि कृतमुपकारं विस्मरन्ति सन्तः।। (4)
ग्रन्थों में भी स्वगुरु का करते स्मरण, प्रशस्ति में लिखते स्वगुरु का नाम।
तथाहि पूर्वाचार्यों को करते नमन, शिष्य-भक्तों का भी नाम लेखन।। (5)
अन्यथा होगा अविनय, कृतघ्न काम, जिससे बन्धेंगे घातिया कर्म।
इहपरलोक में होगा आत्मपतन, नरक-निगोद में होगा भ्रमण।। (6)
कुज्ञानी मोही अहंकारी दुर्जन, उक्त विनय से करते विपरीत काम।
जिससे न बढ़ता उनका सम्यग्ज्ञान, 'सूरी कनक' करे पंचविध मोक्ष विनय।। (7)

विषय-सूची

क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	पृथ्वी में व्यापक ज्ञान प्राप्ति का सुअवसर आया!	2
2.	भव्य जीवों हेतु आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव का दिव्यसन्देश	2
3.	परम उपकारी सम्यग्दृष्टि प्रदाता कनकनन्दी गुरुवर	3
4.	भव सागर तारक 'कनक गुरु'	4
5.	गुणों के भण्डार कनकनन्दी गुरुदेव से आशीष पाऊँ	4
6.	मैं हर पाल चाहूँ कनकनन्दी गुरुवर का आशीष	5
7.	अभिनव श्रुतकेवली आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर का नवाचारक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व	6
8.	तत्त्वार्थ सूत्र वेबिनार	8
9.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव की महानताएँ व हमारी विपरीतताएँ	11
10.	आचार्यश्री कनकनन्दी जी का विश्वव्यापी शंखनाद	17
11.	देव-शास्त्र-गुरु के प्रत्यक्ष-परोक्ष विनय	19

परमसत्य-असत्य समीक्षा

1.	भगवान् केवली की स्तुति	22
2.	सत्य V/S असत्य	25
3.	मेरी सर्वोच्च पावन भावना=आत्मा से बनूँ परमात्मा	47
4.	मम शुद्धात्म स्वरूप अष्टक-ध्यान	61
5.	आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय : गुणस्थान	78
6.	व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग V/S सांसारिक व्यवहार काम	94
7.	जाना है मैंने स्वात्मा के अनन्त वैभव	104
8.	अशुभ त्याग से शुभ व शुभवृद्धि से शुद्धभाव	137
9.	धन्य मानो! धन्य मानो!	153
10.	सज्जन V/S दुर्जन	177
11.	एकान्तवासी, मितभाषी व प्राज्ञ के गुण	179

12. आदर्श आचार्य के व्यापक स्वरूप 190
13. गुण-गुणी को जलाने वाली ईर्ष्या 209
14. स्वशुद्धात्मा वैभव प्राप्ति हेतु-समता-शान्ति-निस्पृहता की साधना करूँ 222
15. मम-शत्रु-मित्र मैं ही हूँ 238
16. मैं हूँ धन्य स्व-परम सत्य के ज्ञान से 286
17. विश्व हितकर कनकनन्दी गुरुवर के वेबिनार में आओ 301
18. अन्त्योदय से सर्वोदय हेतु... 307
19. आत्मशुद्धि-शान्ति-मुक्ति हेतु मेरी साधना 314
20. आत्मविजयी मुनि बाहुवली... 318
21. मम स्वभाव ही मम-वैभव 319
22. भौतिक विज्ञान...आध्यात्मिक 321

नारायण जी कच्छारा वैज्ञानिक

VANDAMI

Above named is follower of Kanaknandi Ji Gurudeo and he has asked me talk to him on his behalf saying that Kanaknandi Ji Gurudeo will attend daily session of this conference and He should be mentioned at the start of congress his blessings for the conference. As you know he is also scientist and written number of books on Science & Jainism.

He can speak fluent English and can understand English.

I have asked his secretary to registir fir this conference and he will attend full three days in the night of India. If possible, you can suggest my name to de this job and put my name on 19th March 2021 on the first day of conference.

Regards.

VANDAMI.

भगवान् केवली की स्तुति
(केवलज्ञान के अतिशय व देवकृत अतिशय युक्त)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- बंगला-उड़िया...)

हे! परमसत्य व आत्मतत्व को जानने/(बताने) वाले तुम्हें प्रणाम[2]।
हे! अनन्तज्ञानदर्शन सुखवीर्य वाले तुम्हें प्रणाम[2]।।
हे! घातीकर्म को नाशने वाले तुम्हें प्रणाम।
हे! मोक्षमार्ग के विश्वनेता तुम्हें प्रणाम।। (1)
हे! समवसरण के अधिपति तुम्हें प्रणाम।
हे! शतेन्द्र पूजित गणधर सेवित तुम्हें प्रणाम।।
हे! चौंतीस अतिशय सहित तुम्हें प्रणाम।
हे! शतयोजन में सुभिक्षकारक तुम्हें प्रणाम।। (2)
हे! गगनविहारी, अहिंसा संचारी तुम्हें प्रणाम।
हे! आहार परिहारी, उपसर्ग अभावी तुम्हें प्रणाम।।
हे! चतुरानयन, अच्छायत्ववान् तुम्हें प्रणाम।
हे! निर्निमेषदृष्टि, केवलज्ञानी तुम्हें प्रणाम।। (3)
हे! सम नख केशधारी, दिव्यध्वनि स्वामी तुम्हें प्रणाम।
हे! देवकृत त्रयोदश अतिशयधारी तुम्हें प्रणाम।।
तव पुण्य से देव रचित होते अतिशय त्रयोदश।
सभी ऋतुओं के फूल-फल आते हैं सभी एक साथ।। (4)
निष्कंटक होती पृथ्वी, परस्पर होती मैत्री।
दर्पण सम स्वच्छ होती पृथ्वी शुभ सुगन्धित जलवृष्टि।।
धर्मचक्र चले तव अग्रे, चरण तले तव कमल सृष्टि।
शस्य से पूर्ण होती पृथ्वी, आनन्दित जीव सृष्टि।। (5)
सुगन्धित वायु वहे तत्र, जलाशय में जल स्वच्छ।
आकाश निर्मल होता तत्र, सम्पूर्ण जीव स्वस्थ तत्र।।

ऐसा हो आप जगदीश, विश्वहितङ्कर जगन्नाथ।
तव गुण प्राप्ति हेतु तव स्तुति 'कनक' न चाहे क्षुद्र उपलब्धि।।

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-23-12-2020

णिस्सेदत्तं णिम्मलगत्तंतं दुद्धवलरुहिरत्तं।
आदिमसंहणत्तं समचउरस्संगसंठाणं।। (896)
अणुवमरूवत्तं णवपंचयवरसुरहिगंधधारित्तं।
अट्ठुत्तरवरलक्खणसहस्सधरणं अणंतबलविरियं।। (897)
मिदहिदमधुरालाओ साभावियअदिसयं च दसभेदं।
एदं तित्थरायणं जम्मग्गहणादिउप्पण्णं।। (898)

स्वेदरहितता, निर्मलशरीरता, दूध के समान धवल रुधिर, आदि का वज्रर्षभनाराचसंहनन समुचतुरस्त्ररूप शरीरसंस्थान, अनुपमरूप, नवचम्पक की उत्तम गन्ध का धारण करना, एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना, अनन्त बल-वीर्य, और हित मित एवं मधुर भाषण, ये स्वाभाविक अतिशय के दश भेद हैं। यह दशभेदरूप अतिशय तीर्थंकरों के जन्मग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं।

जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियराणा।
णहगमणाणमहिंसा भोयणउवसग्गपरिहीणा।। (899)
सव्वाहिमुहट्ठियत्तं अच्छायत्तं अपम्हफंदित्तं।
विज्जाणं ईसत्तं समणहरोमत्तणं सजीवम्हि।। (900)
अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा सयाइं सत्त तहा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सलयभासाओ।। (901)
एदासु भासासुं तालुवंदतोट्ठकंठवावारे।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणे दिव्वभासित्तं।। (902)
पगदीए अक्खलिओ संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि।
णिस्सरदि णिरुवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं।। (903)
सेसेसु समएसुं गणहरदेविंदचक्कवट्टीणं।
पण्हाणुरूवमत्थं दिव्वझुणी अ सत्तभंगीहि।। (904)

छद्दव्वणवपयत्थे पंचट्ठीकायसत्ततच्चाणि।
णाणविहदहेदूहिं दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं।। (905)
घादिक्खएण जादा एक्कारस अदिसया महच्छरिया एदे।
तित्थयराणं केवलणाणम्मि उप्पण्णे।। (906)

अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तक सुभिक्षता, आकाशगमन, हिंसा का अभाव, भोजन का अभाव, उपसर्ग का अभाव, सबकी ओर मुखकर के स्थित होना, छायारहितता, निर्निमेष दृष्टि, विद्याओं की ईशता, सजीव होते हुए भी नख और रोमों का समान रहना, अठारह महाभाषा, सातसौ क्षुद्रभाषा, तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षरानक्षरात्मक भाषायें हैं उनमें तालु, दांत, ओष्ट और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्य जनों को दिव्य उपदेश देना। भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्य ध्वनि तीनों संध्याकालों में नव मुहूर्तोंतक निकलती है और एक योजनपर्यन्त जाती है। इसके अतिरिक्त गणधरदेव, इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्य ध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। यह दिव्यध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वों को नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है। इस प्रकार घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं।

माहप्पेण जिणाणं संखेज्जेसुं च जोयणेसु वणं।
पल्लवकुसुमफलद्धीभरिदं जायदि अकालम्मि।। (907)
कंटयसक्करपहुदिं अवणेंतो वादि सुक्खदो वाऊ।
मोत्तूण पुव्ववेरं जीवा वट्टंति मेत्तीसु।। (908)
दप्पणतलसारिच्छा रयणमई होदि तेत्तिया भूमी।
गंधोदकाइ वरिसइ मेघकुमारो य सक्कआणाए।। (909)
फलभारणमिदसालीजवादिसस्सं सुरा विकुव्वंति।
सव्वाणं जीवाणं उप्पज्जदि णिच्चमाणंदं।। (910)
वायदि विक्किरियाए वाउकुमारो य सीयलो पवणो।

कूवतडायादीणिं णिम्मलसलिलेण पुण्णाणि।। (911)
धूमुक्कपडणपुहदीहिं विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं।
रोगादीणं बाधा ण होंति सयलाणं जीवाणं।। (912)
जक्खिंदमत्थएसुं किरणुज्जलदिव्वधम्मचक्काणि।
दट्ठूण संठियाइं चत्तारि जणस्स अच्छरिया।। (913)
छप्पण चउद्दिसासुं कंचणकमलाणि तित्थकत्ताणं।
एक्कं च पायपीढं अच्चणदव्वाणि दिव्वविविधाणि।। (914)

तीर्थंकरों के माहात्म्य से संख्यात योजनों तक वन असमय में ही पत्र, फूल और फलों की वृद्धि से संयुक्त हो जाता हैः कंटक और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदायक वायु चलने लगती है, जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्रीभाव से रहने लगते हैं, उतनी भूमि दर्पणतल के सदृश स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है, सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करता है, देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्य को रचते हैं, सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है, वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है, कूप और तालाब आदिक निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं, आकाश धुआँ और उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है, सम्पूर्ण जीवों को रोगादि की बाधायें नहीं होती हैं, यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है तीर्थंकरों के चारों दिशाओं में (विदिशाओंसहित) छप्पन सुवर्णकमल, एक पादपीठ और दिव्य एवं विविध प्रकार के पूजनद्रव्य होते हैं।

सत्य V/S असत्य

(सत्य! तेरे अनन्त रूप)

(परम सत्य से ले वाचनिक सत्य का विश्व स्वरूप)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1. गंगा तेरा पानी अमृत... 2. देहाची तिजोरी... 3. भातुकली....)

सत्य! तेरे अनन्त रूप...लोकालोक में व्याप्त।
द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ रूप में, तेरा है विश्व स्वरूप।। (ध्रुव)

शुद्ध द्रव्य तेरा परम रूप, 'सद्द्रव्यलक्षणं'।
आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, पुण्य-पाप, मोक्ष में तू ही व्याप्त।।
शुद्ध जीव है परम सत्य जो आध्यात्मिक गुण युक्त।
इस हेतु ही जो भाव-व्यवहार वे भी आध्यात्मिक सत्य।। (1)
इन सब युक्त होते तव रूप जो नवकोटि से युक्त।
मन वचन काय कृत कारित अनुमत, ये सब जीवाश्रित सत्य।।
अन्यथा सब होते तुझसे रहित, जो असत्य या विकृत।
द्रव्यक्षेत्र काल भाव से रहित, जो रागद्वेष मोहादि सहित।। (2)
धीवर को यदि कोई कहता सही स्थान, जहाँ रहते हैं मछलियाँ।
यह नहीं भावात्मक तव रूप, क्योंकि धीवर मारेगा मछलियाँ।।
ऐसा ही जो पंचपाप, सप्त व्यसन, कलह, विसंवाद परक वचन।
पर निन्दा, अपमान, वैर-विरोध कारक, वचन नहीं है तव रूप।। (3)
क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, घृणा, मात्सर्य सहित वचन।
वे भी सभी हैं असत्य वचन, भले शाब्दिक हो तव (सत्य) वचन।।
ठग, चोर, वेश्या, धूर्त, पाखण्डी (मायाचारी) क्रूरादि के वचन।
नहीं है तव स्वरूप यथा मंथरा, शकुनी आदि सम वचन।। (4)
स्व पर विश्व हितकारी कथन ही होता आपका शाब्दिक रूप।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, समता शान्ति भावना रूप।।
तव परम स्वरूप को केवल सर्वज्ञ ही जानते पूर्णतः।
अन्य कोई भी न जान सकते, किन्तु जान सकते है अंशतः।। (5)
तेरे अनुकूल जो धर्म, कर्म, नीति, नियम, कानून से संविधान।
वे सब ग्रहणीय अन्यथा सभी मिथ्या नहीं है कभी ग्रहणीय।।
''सचवं भगवं'' ''सत्य परमेश्वर'' ''सत्यमेव जयते'' आदि तव महिमा।
तेरे उपासक ''सूरी कनकनन्दी'' तव प्राप्ति हेतु करे साधना।। (6)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-20/12/2020, रात्रि-7.48

संदर्भ-

वैश्विक-सार्वभौम-परम सत्य का लक्षण

द्रव्य का लक्षण

सद्द्रव्य लक्षणम्। (29) तत्त्वार्थ सूत्र

The differention of a Substance or reality is Sat, isness or being.

द्रव्य का लक्षण सत् है।

यह विश्व शाश्वतिक है, क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक हैं। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है, परन्तु परिवर्तित होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be created nor be destroyed, each can be completely change into another from or into one another.

विज्ञान का मूलभूत सिद्धांत है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियादि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।। (9)

What flows or maintains its indentity through its several qualities and modifications, and what is not different from Satta or Substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं-जो कि सत्ता अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लक्खणं य उप्पादव्यय धुवत्त संजुत्तं।
गुणंपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality, has the dialectical triad or birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes is Dravya, so say the all-knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पादव्यय ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुणपर्यायों का आश्रय आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सग्गपज्जएहिं चित्तेहिं।

दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं।। (96) (प्रवचनसार)

अनेक प्रकार के गुण तथा अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों से और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से सर्वकाल में द्रव्य का जो अस्तित्व है वह वास्तव में स्वभाव है।

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है और वह (अस्तित्व)

(1) अन्य साधन से निरपेक्ष होने के कारण से,

(2) अनादि-अनन्त, अहेतुक, एकरूप वृत्ति से सदा ही प्रवृत्त होने के कारण से,

(3) विभाव धर्म से विलक्षण होने से,

(4) भाव और भाववानता के भाव से अनेकत्व होने पर भी प्रदेश-भेद न होने से, द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ द्रव्य का समभाव ही क्यों न हों? (अवश्य होवे) वह अस्तित्व, जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय एक-दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं-यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते, (इसीलिये) उनका अस्तित्व एक ही है।

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।

उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं।। (97)

धर्म का उपदेश करने वाले जिनवर वृषभ के द्वारा इस विश्व में विविध लक्षण वाले द्रव्यों का वास्तव में 'सत्' ऐसा सर्वगत (सबमें व्यापने वाले) एक लक्षण कहा गया है। वास्तव में इस विश्व में विचित्रता को विस्तारित करते हुए (विविधता अनेकत्व को दिखाते हुए) अन्य द्रव्यों से व्यावृत्त (भिन्न) रहकर वर्तमान और प्रत्येक द्रव्य की सीमा को बाँधते हुए ऐसे विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्व से लक्षित भी सर्व द्रव्यों की विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ सर्व द्रव्यों में प्रवृत्त होकर रहने वाला और प्रत्येक द्रव्य की बँधी हुई सीमा को भेदता (तोड़ता) हुआ 'सत्' ऐसा जो सर्वगत सामान्य लक्षणभूत एक सादृश्यास्तित्व है, वह ही वास्तव में एक ही जानने योग्य है। इस प्रकार 'सत्' ऐसा कथन और 'सत्' ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थों का परामर्श (स्पर्श ग्रहण) करनेवाला है। यदि वह ऐसा (सर्व पदार्थ परामर्शी) न हो तो कोई पदार्थ सत्, कोई असत् और कोई अवाच्य होना

चाहिए, किन्तु वह तो निषिद्ध ही है और यह (सत् ऐसा कथन और ज्ञान के सर्व पदार्थ परामर्शी होने की बात) तो सिद्ध हो सकती है।

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।। (98)

द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध और स्वभाव से ही सत् है-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने यथार्थतः कहा है, इस प्रकार आगम से सिद्ध है।

वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्यों के स्वभावसिद्धपना है (सर्व द्रव्य पर द्रव्य की अपेक्षा बिना अपने स्वभाव से ही सिद्ध है) उनकी स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनता है, क्योंकि अनादिनिधन अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता। वह (द्रव्य) गुण-पर्यायात्मक अपने स्वभाव को ही जो कि मूल साधन है, धारण करके स्वयमेव सिद्ध और सिद्धि वाला हुआ वर्तता है। जो द्रव्यों में उत्पन्न होता है वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, (किन्तु) कदाचित् अर्थात् कथंचित् (अनित्यता) के होने से वह पर्याय है। जैसे-द्वि-अणुक आदि तथा मनुष्य इत्यादि द्रव्य तो अनविध (मर्यादारहित) त्रिसमय-अवस्थायी (त्रिकाल-स्थायी) है, (इसीलिये) वैसा (कादाचित्क-क्षणिक-अनित्य) नहीं है।

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुव्वं हवदि तं कहं दव्वं।
हवदि गुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता।। (105)

यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् न हो तो निश्चित असत् होगा। जो असत् होगा वह द्रव्य कैसे हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता) अथवा यदि असत् न हो तो वह सत्ता से अन्य पृथक् होगा? सो भी कैसे हो सकता है? इसीलिये द्रव्य स्वयं ही सत्ता रूप है। यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् न हो तो उसकी दो गति यह होगी कि वह (1) असत् होगा अथवा (2) सत्ता से पृथक् होगा। उनमें से यदि असत् होगा तो ध्रौव्य के असम्भव होने से स्वयं को स्थिर न रखता हुआ द्रव्य ही लोप हो जाएगा और यदि सत्ता से पृथक् होगा तो सत्ता के बिना भी अपनी सत्ता रखता हुआ इतने द्रव्य की सत्ता रखने मात्र प्रयोजन वाली सत्ता का लोप कर देगा।

स्वरूप से ही सत् होता हुआ (1) ध्रौव्य के सद्भाव के कारण स्वयं को स्थिर रखता हुआ द्रव्य उदित होता है (अर्थात् सिद्ध होता है) और (2) सत्ता से पृथक् रहकर (द्रव्य) स्वयं को स्थिर (विद्यमान) रखता हुआ इतने ही मात्र प्रयोजन

वाली सत्ता को उदित (सिद्ध) करता है। इसीलिये द्रव्य स्वयं ही सत्व (सत्ता) रूप से स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि भाव और भाववान् (द्रव्य) का अपृथक्त्व द्वारा अन्यत्व है प्रदेश भेद न होते हुए संज्ञा-संख्या लक्षण आदि द्वारा अन्यत्व है।

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स।

अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं होदि कधमेगं।। (106)

जिसमें प्रदेशों की अपेक्षा अत्यन्त भिन्नता हो वह पृथक्त्व है। ऐसे श्री महावीर भगवान् की आज्ञा है। स्वरूप की एकता का न होना अन्यत्व है। ये सत्ता और द्रव्य एक स्वरूप नहीं है तब किस तरह दोनों एक हो सकते हैं? जहाँ प्रदेशों की अपेक्षा एक-दूसरे से अत्यन्त पृथक्पना हो अर्थात् प्रदेश भिन्न-भिन्न हो जैसे दण्ड और दण्डी में भिन्नता है। इसको पृथक्त्व नाम का भेद कहते हैं। इस तरह पृथक्त्व या भिन्नपना शुद्ध आत्मद्रव्य की शुद्ध-सत्ता गुण के साथ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि इनके परस्पर प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं है।

जो द्रव्य के प्रदेश हैं वे ही सत्ता के प्रदेश हैं। जैसे-शुक्ल वस्त्र और शुक्ल गुण का स्वरूप भेद है, परन्तु प्रदेश भेद नहीं है-ऐसे गुणी और गुण के प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं होते। ऐसे श्री वीर नाम के अन्तिम तीर्थंकर परमदेव की आज्ञा है। जहाँ संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि से परस्पर स्वरूप की एकता नहीं है वहाँ अन्यत्व नाम का भेद है ऐसा अन्यत्व या भिन्नपना मुक्तात्मा द्रव्य और उसके शुद्ध सत्ता गुण में है। यदि कोई कहे कि जैसे सत्ता और द्रव्य में प्रदेशों की अपेक्षा अभेद है वैसे संज्ञादि लक्षण रूप से भी अभेद हो ऐसा मानने से क्या दोष होगा? इसका समाधान करते हैं कि ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है।

वह मुक्तात्मा द्रव्य शुद्ध अपने सत्ता गुण के साथ प्रदेशों की अपेक्षा अभेद होते हुए भी संज्ञा आदि के द्वारा सत्ता और द्रव्य तन्मयी नहीं है। तन्मय होना ही निश्चय से एकता का लक्षण है, किन्तु संज्ञादि रूप से एकता का अभाव है। सत्ता और द्रव्य में नानापना है। जैसे यहाँ मुक्तात्मा द्रव्य में प्रदेश के अभेद होने पर भी संज्ञादिरूप से नानापना कहा गया है, तैसे ही सर्व द्रव्यों का अपने-अपने स्वरूप सत्ता गुण के साथ नानापना जानना चाहिए, ऐसा अर्थ है।

परम सत्य की परिणमनशीलता

सत् का लक्षण

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।। (30)

Sat (is a) simultanoues possession (of) (उत्पाद) Coming into existence birth.

व्यय Going out of existence, decay, and

ध्रौव्य Continous sameness of existence, permanence.

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है।

द्रव्य सत् स्वरूप है। सत् स्वरूप होने के कारण द्रव्य अनादि से है तथा अन्त तक रहेगा। तथापि यह सत् अपरिवर्तन नहीं है, बल्कि नित्य परिवर्तनशील है। नित्य परिवर्तनशील होते हुए भी इनका नाश नहीं होता है, इसीलिये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का सदा सद्भाव होता है, इसीलिये ये सदा सत् स्वरूप ही रहते हैं।

उत्पाद-स्वजाति को न छोड़ते हुए भावान्तर (पर्यायान्तर) की प्राप्ति उत्पाद है। चेतन या अचेतन द्रव्य की स्वजाति को न छोड़ते हुए भी जो पर्यायान्तर की प्राप्ति है वह उत्पाद है। जैसे-मृत्पिण्ड में घट पर्याय अर्थात् मिट्टी जैसे अपने स्वभाव को न छोड़कर घट पर्याय से उत्पन्न होती है। वह घट उसका उत्पाद है। उसी प्रकार जीव या पुद्गलादि अजीव पदार्थ अपने स्वभाव को न छोड़कर पर्यायान्तर से परिणमन करते हैं।

व्यय-उसी प्रकार स्वजाति को न छोड़ते हुए पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं। स्वजाति को न छोड़ते हुए चेतन वा अचेतन पदार्थ की पूर्व पर्याय का जो नाश होता है वह 'व्यय' है। जैसे कि घट की उत्पत्ति होने पर मिट्टी के पिण्डाकार का नाश होता है।

ध्रौव्य-ध्रुव-स्थैर्य कर्म का स्थिर रहना ध्रौव्य है। अनादि पारिणामिक स्वभाव से व्यय और उत्पाद का अभाव है। अर्थात् अनादि पारिणामिक स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य का उत्पाद-व्यय नहीं होता है, द्रव्य ध्रुव रूप से रहता है अर्थात् स्थिर रहता है, उसको ध्रुव कहते हैं और ध्रुव का जो भी भाव या कर्म है, वह ध्रौव्य कहलाता है। जैसे कि पिण्ड और घट दोनों अवस्थाओं में मृदुपना का अन्वय रहता है।

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।

दव्वगुण पज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वतो।। (10) (प्रवचनसार)

लोक में परिणाम के बिना पदार्थ नहीं है और पदार्थ के बिना परिणाम नहीं है। द्रव्य, गुण व पर्याय में रहने वाला पदार्थ अस्तित्व से बना हुआ है।

उत्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।

पज्जाएण दु कणेवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो।। (18)

जैसे इस लोक में शुद्ध स्वर्ण के बाजूबन्द (रूप) पर्याय से उत्पाद देखा जाता है, पूर्व अवस्था रूप से वर्तने वाली अँगूठी इत्यादि पर्याय से विनाश देखा जाता है और पीलापन आदि पर्याय से तो दोनों में (बाजूबन्द और अँगूठी में) उत्पत्ति विनाश को प्राप्त न होने वाले (सुवर्ण) ध्रौव्यत्व दिखाई देता है, इसी प्रकार सर्व द्रव्यों के किसी (पर्याय) से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्य होता है। ऐसा जानना चाहिए।

अपरिच्चत्त सहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।

गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति।। (95)

स्वभाव को छोड़े बिना जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है तथा गुणयुक्त और पर्याय सहित है 'द्रव्य' ऐसा कहते हैं।

यहाँ (इस विश्व में) वास्तव में जो स्वभाव भेद किये बिना उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य त्रय से और गुण, पर्याय से लक्षित होता है। इनमें से (स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय में से) वास्तव में द्रव्य स्वभाव अस्तित्व सामान्य रूप अन्वय है, अस्तित्व को तो दो प्रकार का आगे कहेंगे-(1) स्वरूप अस्तित्व, (2) सादृश्य अस्तित्व। उत्पाद, प्रादुर्भाव (प्रगट होना-उत्पाद होना) है, व्यय प्रच्युति (नष्ट होना) है, ध्रौव्य अवस्थिति (टिकना) है। गुण, विस्तार विशेष हैं। वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं। इनमें अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व भोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सामान्य गुण हैं। अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण हैं। पर्याय आयत विशेष हैं। द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ अथवा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य लक्षण भेद होने पर भी स्वरूप भेद नहीं है (सत्ता भेद नहीं है) स्वरूप

से ही द्रव्य वैसा होने से (अर्थात् द्रव्य ही स्वयं उत्पादादि रूप तथा गुण पर्याय रूप परिणमन करता है, इस कारण स्वरूप भेद नहीं है।)

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।

अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।। (99)

स्वभाव में अवस्थित सत् द्रव्य है, द्रव्य का गुण-पर्यायों में जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित परिणाम है वह उसका स्वभाव है।

ण भवो भंगविहीणो ण णत्थि संभवविहीणो।

उत्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।। (100)

वास्तव में उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता है और व्यय, उत्पाद के बिना नहीं होता तथा उत्पाद और व्यय स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते और ध्रौव्य उत्पाद तथा व्यय के बिना नहीं होता।

अविनश्वरत्व का सिद्धान्त

नित्य का नियम

तद्भावाव्ययं नित्यम्।। (31)

Parmanence means indestructibility of the essence or the quality of the substance.

उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है।

जो प्रत्यभिज्ञान का कारण है वह तद्भाव है, 'वही यह है' इस प्रकार के स्मरण को 'प्रत्यभिज्ञान' कहते हैं। वह अकस्मात् तो होता नहीं, इसीलिये जो इसका कारण है वही तद्भाव है। इसकी निरुक्ति 'भवनं भावः, तस्य भावः तद्भावः' इस प्रकार होती है। तात्पर्य यह है कि पहले वस्तु को जिस रूप देखा है उसी रूप उसके पुनः होने से 'वही यह है' इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान होता है। यदि पूर्व वस्तु का सर्वथा नाश हो जाये या सर्वथा नई वस्तु का उत्पाद माना जाये तो इससे स्मरण की उत्पत्ति नहीं हो सकती और स्मरण की उत्पत्ति न हो सकने से स्मरण के आधीन जितना लोक-संव्यवहार चालू है वह सब विरोध को प्राप्त होता है, इसीलिये जिस वस्तु का जो भाव है उस रूप से च्युत न होना तद्भावाव्यय अर्थात् नित्य है ऐसा निश्चित होता है, परन्तु इसे कथंचित् जानना चाहिए। यदि सर्वथा नित्यता मान ली

जाये तो परिणमन का सर्वथा अभाव प्राप्त होता है और ऐसा होने पर संसार और इसकी निवृत्ति के कारण रूप प्रक्रिया का निषेध (अभाव) प्राप्त होता है।

द्रव्याण्येतानि नित्यानि तद्भावान्न व्ययन्ति यत्।
प्रत्यभिज्ञानहेतुत्वं तद्भावस्तु निगद्यते।। (14) त.सा.

ये द्रव्य नित्य हैं, क्योंकि अपने स्वभाव से नष्ट नहीं होते। अपना स्वभाव ही प्रत्यभिज्ञान का कारण कहा जाता है।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।। (15) (पंचास्तिकाय)

सत् द्रव्य का द्रव्यरूप से विनाश नहीं है, अभाव का असत् अन्य द्रव्य का द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है, परन्तु भाव सत् द्रव्ये, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का-सत्-का-विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का-असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस को ही सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही पूर्व अवस्था से विनाश को प्राप्त होने वाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होने वाले स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खन पर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है, सर्वभावों का भी उसी प्रकार वैसा ही है (अर्थात् समस्त द्रव्यों का नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होने वाले और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होने वाले परिणामी गुणों में पहले की पर्याय का विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है।)

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो।। (581)

अवस्थान-स्थिति छहों द्रव्यों की समान है। क्योंकि त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय वा व्यंजनपर्याय के मिलने से ही उनकी स्थिति होती है।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं।। (582)

एक द्रव्य में जितनी त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय और व्यञ्जन पर्याय हैं उतना ही द्रव्य है। (गोम्मट्टसार जीवकाण्ड, पृ.265)

विश्वगुरु सापेक्ष (अनेकान्त) सिद्धान्त

वस्तु स्वरूप की सिद्धि

अर्पितानर्पितसिद्धेः।। (32)

The contradictory characteristics are established from differents points of view.

मुख्यतया और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है।

द्रव्य में अनन्त गुण एवं पर्याय होती हैं। उन अनन्त गुणों एवं पर्यायों का कथन एक साथ नहीं हो सकता है, परन्तु उस द्रव्य को जानना अनिवार्य है, क्योंकि द्रव्य के यथार्थ ज्ञान बिना रत्नत्रय की उपलब्धि नहीं हो सकती एवं रत्नत्रय के बिना मोक्षमार्ग नहीं हो सकता, मोक्षमार्ग के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और मोक्ष के बिना शाश्वतिक सुख नहीं मिल सकता है। इसीलिये यहाँ पर वस्तु स्वरूप के यथार्थ परिज्ञान की सर्वश्रेष्ठ व्यावहारिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है।

धर्मान्तर को विवक्षा से प्राप्त प्राधान्य अर्पित कहलाता है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के प्रयोजन वश जिस धर्म की विवक्षा की जाती है या विवक्षित जिस धर्म को प्रधानता मिलती है, उसे-अर्थरूप को अर्पित (मुख्य) कहते हैं।

अर्पित से विपरीत अनर्पित (गौण) है। प्रयोजक के प्रयोजन का (वक्ता की इच्छा का) अभाव होने से सत् (विद्यमान) पदार्थ की भी अविवक्षा हो जाती है। अतः उपसर्जनीभूत (गौण) पदार्थ अनर्पित (अविवक्षित) कहलाता है। वस्तु स्वरूप को जानने की जो गौण-मुख्य व्यवस्था है उसका व्यावहारिक सटीक वर्णन अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थसिद्धि ग्रंथ में किया है। यथा-

एकेनाकर्षती श्लथयंती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मथाननेत्रमिव गोपी।। (225)

जिस प्रकार ग्वालिन दही को बिलोती हुई एक रस्सी को अपनी ओर खींचती

है, दूसरी रस्सी को ढीली करती है। यद्यपि रस्सी एक होने पर भी रई में लिपटी हुई रहने के कारण दो भागों में बँट जाती है, उसे गोपिका दोनों हाथों में पकड़कर दही बिलोती है। जिस समय वह एक हाथ से एक ओर की रस्सी को अपनी ओर खींचती है, उसी समय दूसरे हाथ की रस्सी को ढीली कर देती है अर्थात् उसे आगे बढ़ा देती है, इस प्रकार परस्पर एक को खींचने से दूसरी को ढीली करने से वह मक्खन (लोणी) निकाल देती है। यदि ग्वालिनी एक साथ दोनों छोर को समान बल से खींचती एवं छोड़ती तो मथनी गतिशील नहीं बनती और मक्खन भी नहीं निकलता। इसी प्रकार वस्तु स्वरूप के परिज्ञान के लिए विवक्षित विषय को मुख्य कर दिया जाता है एवं अविवक्षित विषय को गौण किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि विवक्षित गुण, धर्म वस्तु में है एवं अविवक्षित गुण, धर्म वस्तु से पृथक् होकर लोप हो गये हो। इसको ही जैन धर्म में नयवाद या स्याद्वाद कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग के महामेधावी वैज्ञानिक आईंस्टीन ने भी इस अनेकान्त सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वे भी मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कथन सापेक्ष दृष्टि से होना चाहिए। आईंस्टीन यहाँ तक मानते हैं कि जब तक जीव असर्वज्ञ रहेगा तब तक वह सम्पूर्ण सत्य को नहीं जान सकता, केवल आंशिक सत्य को जान सकता है। इस आंशिक सत्य को आंशिक सत्य मानना सम्यक् है एवं आंशिक सत्य को ही पूर्ण सत्य मान लेना मिथ्या है। यथा-

Einstain says, we can only know the relative truth the real truth is know only to the universal observer.

आईंस्टीन के सापेक्षवाद के अनुसार हम सब जो जानते हैं, वह सम्पूर्ण सत्य (Absolute truth) नहीं है, किन्तु सापेक्षिक सत्य है। (Relative truth) है, सम्पूर्ण सत्य सर्वदर्शी सर्वज्ञ के द्वारा ही जाना जा सकता है।

सन्मति सूत्र में सिद्धसेन दिवाकर ने बताया कि अनेकान्त केवल वस्तु स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली दार्शनिक प्रणाली नहीं है, परन्तु लोक व्यवहार को सुचारू रूप से व्यवस्थित करने के लिए लौकिक प्रणाली भी है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडई।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।। (69)

जिस अनेकान्तवाद के बिना लोकव्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार हो।

जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव, कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुए भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुए भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने-अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त है। विशेष ज्ञान के लिए मेरा 'अनेकान्त दर्शन' का अध्ययन करें।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे-सेवफल नारियल से छोटा होते हुए भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आँवला सेवफल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। घी निरोगी के लिए शक्तिदायक होते हुए भी ज्वर रोगी के लिए हानिकारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है, परन्तु पेट्रोल-टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशत्व आदि गुणों के कारण अनेक भी हैं।

यह अनेकान्त मानसिक अहिंसा है, क्योंकि इसमें एकान्तवाद, हठाग्रह, पूर्वाग्रह नहीं है। अनेकान्त सिद्धान्त दूसरों के सत्यांश को भी स्वीकार करता है। अनेकान्त का सिद्धान्त है Right is Mine अर्थात् जो सत्य है मेरा है। उसका दावा यह नहीं कि Mine is Right अर्थात् मेरा जो है वह सत्य है। अनेकान्त वस्तु स्वरूप तथा भावात्मक अहिंसा है तथा स्याद्वाद कथन प्रणाली या वचनात्मक अहिंसा है। इस अनेकान्त का स्पष्टीकरण करने के लिए और कुछ सरल उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैसे-दो इंच लंबी वाली रेखा एक इंच वाली रेखा से लंबी है तथा तीन इंच लंबी रेखा से छोटी भी है। अनामिका अंगुली कनिष्ठा से बड़ी है, परन्तु मध्यमा से छोटी भी है। इसी प्रकार दिशा आदि में भी जान लेना चाहिए। जैसे एक व्यक्ति के लिए दूसरा व्यक्ति पूर्व में है तो पहला व्यक्ति उसके लिए पश्चिम में होगा।

Master Theory
Unified theory of universe (Theory of everything)
''अनेकान्त वन्दन (स्याद्वाद का स्वरूप)''

(Thoery of relativity-सापेक्ष सिद्धान्त, एकीकृत सिद्धात)

(चाल: 1.बिन गुरु ज्ञान नहीं... 2.चालीसा.... 3.मन तड़पत हरि दर्शन को)

दोहा–विश्व गुरु अनेकान्त से, हो व्यापक विचार,
लोकालोक में व्याप्त है, जिसकी महिमा अपार।
एकान्तवादी तुम जगो, करलो अपना सुधार,
सापेक्षवाद सतवाद से, हो जाओ भव पार।।

चौपाई–हे अनेकान्त सत्य स्वरूप, हे सनातन विश्व स्वरूप,
जीव-अजीव में व्याप्त स्वरूप, समस्त नय प्रमाण स्वरूप।
लोकालोक में व्याप्त रूप, मूर्तिक अमूर्तिक तेरा स्वरूप।
एकानेक व अनन्त रूप, सर्वव्यापी है शिव स्वरूप।।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप, खण्ड विखण्डित एक स्वरूप,
अस्ति-नास्ति अव्यक्त रूप, सप्तभंग मय तेरा रूप।
सर्वत्र व्याप्त है तेरा रूप, सार्वभौम है नित्य स्वरूप,
बन्ध मोक्ष भी तेरा रूप, सापेक्षवाद है तेरा स्वरूप।।

निरापेक्ष है मिथ्या रूप, सापेक्ष दृष्टि सत्य स्वरूप,
तेरी कृपा से होता सम्यक्, मिथ्यात्व है तुमसे पृथक्।
तेरे वियोगे अनन्त भव, जन्म-मरणे दुःख ही भोग,
कुवाद समस्त नाशन कर्त्ता, समाधान के तुम हो भर्त्ता।।

तुम बिन है न लौकिकाचार, तुम बिन है न सदाचार,
तुम बिन है सब तर्क-कुतर्क, तुम बिन है स्वर्ग भी नर्क।
तुम बिन है न न्याय प्रणाली, तुम बिन है न कार्य प्रणाली,
तुम बिन है न सम्यक् मार्ग, तुम बिन है न मोक्षमार्ग।।

तुम तो आदि अन्त रहित, सर्व सत्य में सर्वत्र व्याप्त,
चेतन में तुम चेतन रूप, अचेतन में उसी ही रूप।

सर्वज्ञ द्वारा तुम सुज्ञात, सुदृष्टि द्वारा तुम पूजित,
तुम्हें न जाने मिथ्यादृष्टि, तुम बिन न चलती है सृष्टि।।

सूर्य न देखे जन्मान्ध व्यक्ति, अज्ञानी न जाने तुम्हारी शक्ति,
'कनकनन्दी' के साध्य-साधन, तुमसे ही मैं होता हूँ धन्य।
त्रैलोक्यनाथ के शासन तन्त्र, तुम्हें नमूँ मैं हे विश्वतन्त्र।।

द्वितीय सत्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भयेण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण-वि-कारणेण जादेण वा, सव्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (1) (गौतम गणधर)

अन्वयार्थ-(आहावरे) जब अन्य (दुव्वे) दूसरे (महव्वदे) महाव्रत में (मुसावादादो वेरमणं) मृषावाद/असत्य भाषण का त्याग करता हूँ (से) वह असत्यभाषण (कोहेण वा) क्रोध से अथवा (माणेण वा) मान से अथवा (राएण वा) राग से अथवा (दोसेण वा) द्वेष से अथवा (मोहेण वा) मोह से अथवा (हस्सेण वा) हास्य से अथवा (भएेण वा) भय से या (पदोसेण वा) प्रदोष से या (पमादेण वा) प्रमाद से या (पेम्मेण वा) प्रेम/स्नेह से या (पिवासेण वा) पिपासा से या (लज्जेण वा) लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से (अणादरेण वा) अनादर से या (महत्वाकांक्षा) से या (केण वि कारणेण) किसी भी कारण से (जादेण वा) उत्पन्न होने पर अथवा (मुसावादादो) असत्य भाषण (भासिओ) बोला हो (भासाविओ) बुलवाया हो (भासिज्जंजतो वि समणुमण्णिदो) असत्य भाषण बोलने वालों की अनुमोदना भी की हो (तस्स) तो तत्संबन्धी (मे सव्वो) मेरे सभी (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों।

अहिंसा व्रत की पाँच भावनाएँ

वाङ्मनोगुप्तिर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान भोजनानि पञ्च। (4) त.सू.

वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपानभोजन ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

वचनगुप्ति–वचन को वश में करना।

मनोगुप्ति–मन को वश में करना।

ईर्यासमिति–चार हाथ जमीन देखकर चलना।

आदाननिक्षपेणसमिति–भली प्रकार स्थान को देखकर पुस्तक आदि रखना।

आलोकितपानभोजनसमिति–सूर्य के प्रकाश में अवलोकन करके अन्न-पानी ग्रहण करना।

सत्यव्रत की भावनाएँ

क्रोधलोभभीरूत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीची भाषणं च पञ्च। (5)

And five (contemplation or observance for the vow aganist falsehood):

क्रोध प्रत्याख्यान Giving up anger;

लोभ Giving up greed;

भीरूत्व Giving up cowardice or fear;

हास्य प्रत्याख्यान Giving up of frivolity;

अनुवीची भाषण Speaking in accordance with scriptural injuctions.

क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरूत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचि भाषण ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ है।

क्रोध त्याग, लोभ का त्याग, भीरूत्व का त्याग, हास्य का त्याग और अनुवीची भाषण से पाँच सत्यव्रत की भावनाएँ जाननी चाहिए। अनुवीची भाषण, अनुलोभ भाषण एकार्थवाची अर्थात् विचारपूर्वक बोलना अनुवीची भाषण है। यहाँ पुण्यास्रव का प्रकरण होने से अप्रशस्त क्रिया करने वाले पापी के भाषण को अनुवीची भाषण नहीं कह सकते। क्योंकि विचारपूर्वक भाषण को अनुवीची भाषण कहते हैं।

असत्य का लक्षण

असदभिधानमनृतम्। (14)

Falsehood (is) to speak harmful words (through प्रमत्त योग Pramattyoga, passional vibrations).

असत् बोलना अनृत है।

इस सूत्र में 'सत्' का प्रतिषेधक 'असत्' शब्द नहीं है अपितु 'सत्' शब्द प्रशंसावाची है, अतः 'न सत्-असत्' का अप्रशस्त अर्थ होता है, शून्य वा तुच्छाभाव नहीं।

असत्-अप्रशस्त अर्थ का अभिधान-कथन, अप्रशस्त अर्थ को कहने वाला वचन असत् अभिधान है।

'ऋत' शब्द सत्यार्थ में है। 'ऋत' यह पद सत्यार्थ में जानना चाहिए अर्थात् ऋतं सत्य और अनृत-असत्य है। विद्यमान पदार्थों के अस्तित्व में कोई विघ्न उत्पन्न न करने के कारण 'सत्सु साधु सत्यम्' यह व्युत्पत्ति भी सत्य की हो सकती है (यानी समीचीन श्रेष्ठ पुरुषों में जो साधु वचन बोला जाता है, वह सत्य कहा जाता है)। 'न ऋत अनृतं' जो ऋत वचन नहीं है, वह अनृत वचन-असत्य वचन कहा जाता है।

अतः मिथ्या शब्द से विद्यमान का लोप तथा अविद्यमान के उद्भावन करने वाले जो अभिधान (कथन) हैं वे ही अनृत (असत्य) होंगे। जैसे-आत्मा नामक पदार्थ नहीं है, परलोक नहीं है, श्यामतण्डुल बराबर आत्मा है, अँगूठे की पौर बराबर आत्मा है; आत्मा सर्वगत और निष्क्रिय है; इत्यादि वचन ही मिथ्या (विपरीत) होने से अनृत कहे जायेंगे, किन्तु जो विद्यमान (सत्) अर्थ को भी कहकर परप्राणी की पीड़ा करने वाले अप्रशस्त वचन हैं वे अनृत नहीं होंगे। क्योंकि मिथ्यानृत में मिथ्या का अर्थ विपरीत है और परप्राणी-पीड़ाकारी वचन विपरीत नहीं है। अतः परपीड़ाकारी अप्रशस्त वचन हैं, वे असत्य कोटि में नहीं आयेंगे। 'असत्' कहने से जितने अप्रशस्त अर्थवाची वचन हैं, वे असत्य कोटि में नहीं आयेंगे। 'असत्' कहने से जितने अप्रशस्त अर्थवाची वचन हैं, वे सभी

अनृत (असत्य) कोटि में आ जायेंगे। इससे जो विपरीतार्थ वचन प्राणी पीड़ाकारी हैं वे सभी अनृत (असत्य) ही है; ऐसा जाना जाता है।

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि।

तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः।। (91) पु.सि.

जो कुछ प्रमाद कषाय के योग से स्व को हानिकारक अथवा अन्यथा रूप वचन कहने में आता है उसे निश्चय से असत्य जानना चाहिये उसके भेद चार हैं।

स्वक्षेत्रकालभावैः सदपि हि यस्मिन्निषिद्धयते वस्तु।

तत्प्रथममसत्यं स्यान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र।। (92)

जिस वचन में अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से विद्यमान होने पर भी वस्तु का निषेध करने में आता है वह प्रथम असत्य है जैसे 'यहाँ देवदत्त नहीं है।'

असदपि हि वस्तुरूपं यत्र परक्षेत्रकालभावैस्तैः।

उद्भाव्यते द्वितीयं तदनृतमस्मिन् यथास्ति घटः।। (93)

निश्चय से जिस वचन में उन परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से अविद्यमान होने पर भी वस्तु का स्वरूप प्रगट करने में आवे वह दूसरा असत्य है। जैसे यहाँ घड़ा है।

वस्तु सदपि स्वरूपात पररूपेणाभिधीयते यस्मिन्।

अनृतमिदं च तृतीयं विज्ञेयं गौरितियथाऽश्वः।। (94)

और जिस वचन में अपने चतुष्टय से विद्यमान होने पर भी पदार्थ अन्य स्वरूप से कहने में आता है उसे यह तीसरा असत्य जानो। जैसे बैल को घोड़ा है ऐसा कहना।

गर्हितमवद्यसंयुतमप्रियमपि भवति वचनरूपयत्।

सामान्येन त्रेधा ममिदमनृतं तुरीयं तु।। (95)

और यह चौथा असत्य सामान्य रूप से गर्हित, पाप सहित और अप्रिय इस तरह तीन प्रकार माना गया है।

पैशून्यहासगर्भं कर्कशमसमञ्जसं प्रलपितं च।

अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम्।। (96)

दुष्टता अथवा निन्दारूप हास्यवाला कठोर मिथ्या-श्रद्धानवाला और प्रलापरूप तथा और भी शास्त्रविरुद्ध वचन है वह सभी निन्द्यवचन कहा गया है।

अवद्यसंयुक्त असत्य का स्वरूप

छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि।

तत्सावद्यं यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्तन्ते।। (97)

जो छेदना, भेदना, मारण, शोषण, व्यापार या चोरी आदि के वचन हैं वे सब पाप युक्त वचन हैं क्योंकि यह प्राणी-हिंसा आदि पापरूप प्रवर्तन करते हैं।

अप्रिय असत्य का स्वरूप

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम्।

यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम्।। (98)

जो वचन दूसरे जीव को अप्रीतिकारक भयकारक खेदकारक वैर शोक तथा कलहकारक हो और जो अन्य जो भी सन्तापकारक हो वह सर्व ही अप्रिय जानना चाहिये।

असत्य वचन में हिंसा का सद्भाव

सर्वस्मिन्नप्यस्मिन्प्रमत्तयोगैकहेतुकथनं यत्।

अनृतवचनेपि तस्मान्नियतं हिंसा समवतरति।। (99)

चूँकि इन सभी वचनों में प्रमाद सहित योग ही एक हेतु कहने में आया है इसलिये असत्य वचन में भी हिंसा निश्चित रूप से आती है।

प्रमादसहित योग हिंसा का कारण

हेतौ प्रमत्तयोगे निर्दिष्टे सकलवितथवचनानाम्।

हेयानुष्ठानादेरनुवदनं भवति नासत्यम्।। (100)

समस्त झूठ वचनों का प्रमाद सहित योग हेतु निर्दिष्ट करने में आया होने से हेय-उपादेय आदि अनुष्ठानों का कहना झूठ नहीं है।

इसके त्याग का प्रकार

भोगोपभोगसाधनमात्रं सावद्यमक्षमा मोक्तुम्।

ये तेपि शेषमनृतं समस्तमपि नित्यमेव मुञ्चन्तु।। (101)

जो जीव भोग-उपभोग के साधन मात्र सावद्यवचन छोड़ने में असमर्थ हैं वे भी बाकी के सभी असत्य भाषण का निरंतर त्याग करें।

पुनर्वास कॉलोनी के जैन मंदिर में देश-विदेश के वैज्ञानिक शिष्यों को संबोधित किया

वेबिनार में आचार्य ने कर्म और धर्म की व्याख्या की

पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी गुरुदेव ने वेबिनार के माध्यम से देश विदेश के वैज्ञानिक शिष्यों को संबोधित किया। आचार्य ने कर्म और धर्म की व्याख्या करते हुए बताया कि हमारे कर्म के परिणाम निर्मल, शांत, पवित्र है तो समझना चाहिए कि तुम धर्म मार्ग पर चल रहे हो। कोई प्रमादी आलसी होगा तो घाती कर्म बंधेगा।

तीर्थंकर सतत स्वाध्याय करते है। जिनका भाव सरल, सहज रोग से रहित हो तथा जिनका ब्लड सर्कुलेशन सही हो उसके सपने सही होते हैं। आचार्य ने कहा कि सबसे अधिक स्वप्न तीर्थंकर भगवन् की मा देखती है। माता के सोलह सपने पूर्वाभास है। जिस प्रकार सूर्योदय से पहले लालिमा दिखती है उसी प्रकार भगवान् के जन्म का पूर्वाभास स्वप्न से होता है। जो सम्यक् ज्ञानी है आत्म ज्ञानी है उसको ब्रह्मांड की किसी भी क्रिया का आश्चर्य नहीं लगता है। क्योंकि कि मनुष्य की क्षमता से परे भगवान् की शक्ति होती है।

आचार्य ने बताया कि जो भाव पहले नहीं हुए थे ऐसे नवीन ज्ञान को अपूर्वार्थ ज्ञान कहते हैं। अपूर्वार्थ ज्ञान से सम्यक् ज्ञान में वृद्धि होती हैं। जो पहले परिणाम नहीं हुए ऐसे श्रेष्ठ परिणाम करना यही धर्म का उपदेश हैं। परिणाम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

आचार्य ने बताया कि सभी महापुरुष पुण्यशाली होने के कारण सात्विक और कम आहार करते हैं। शरीर धर्म साधन का उपकरण है अतः साधु-महात्मा सात्विक-सम्यक् आहार लेते हैं। इस अवसर पर मुनि सुविज्ञसागर जी, मुनि आध्यात्मनंदी, आर्यिका सुवत्सलमती माताजी, सुनिधिमती, क्षुल्लिका सुवीक्षमती, परागश्री, ब्रह्मचारी सोहनलाल, खुशपाल, आशा, नंदादेवी, सुशीला, हंसा, संध्या, विजयलक्ष्मी, दीपिका आदि ने वेबिनार का लाभ लिया।

भाषा समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ भासासमिदी कक्कसा, कडुवा, परुसा, णिट्ठुरा, परकोहिणी, मज्झंकिसा, अइ-माणिणी, अणयंकरा, छेयंकरा, भूयाण-वहंकरा चेदि। दसविहा भासा, भासिया, भासाविया, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (8)

अन्वयार्थ-(तत्थ भासासमिदी) उनमें भाषा समिति दस प्रकार की है। उन्हीं दस भेदों को कर्कश आदि रूप में आगे कहा जाता है-

(कक्कस्सा) कर्कश-सन्ताप उत्पन्न करने वाली भाषा कर्कशा/कक्कसा कहलाती है जैसे-तू मूर्ख है, कुछ नहीं जानता है इस प्रकार बोलना। (कडुया) कटुक-दूसरों के मन में उद्वेग करने वाली भाषा है, जैसे-तू जातिहीन है, तू अधर्मी, धर्महीन, पापी है इत्यादि वचन कहना। (परुसा) परुषा अर्थात कठोर वाणी, मर्मभेदी वचन, जैसे-तू अनेक दोषों से दूषित है इत्यादि। (णिट्ठुरा) निष्ठुर भाषा। जैसे-तुझे मारूँगा, तेरा शिर काट लूँगा इत्यादि वचन। (परकोहिणी) परकोपिनी-दूसरों को रोष उत्पन्न करने वाली परकोपिनी भाषा है, जैसे-तेरा तप किसी काम का नहीं है, तू हँसी का पात्र है, निर्लज्ज है, इत्यादि वचन। (मज्झंकिसा) मध्यंकृशा भाषा-इतनी निष्ठुर, कठोर भाषा जो हड्डियों का मध्यभाग भी छेद दे (अईमाणिणी) अतिमानिनी भाषा-स्वप्रशंसा और परनिंदा कर अपने महत्त्व को प्रसिद्ध करने वाली भाषा (अणयंकरा) अनयंकरी भाषा समान स्वभाव वालों में विच्छेद कराने वाली या परस्पर मित्रों में द्वेष, विरोध उत्पन्न करने वाली भाषा (छेयंकरा) छेदंकरी भाषा-वीर्य, शील आदि गुणों को जड़ से नाश करने वाली अथवा असद्भूतदोष अर्थात् जो दोष नहीं है उन्हें प्रकट करने वाली भाषा (च) और (भूयाणवहंकरा) जीवों की वधकारी भाषा-जीवों के प्राणों का वियोग करने वाली भाषा (इदि) इस प्रकार (दसविहाभासा) दस प्रकार की भाषाएँ (भासिया) स्वयं बोली हों (भासाविया) दूसरों से बुलाई हों (भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो) बोलते हुए दूसरों की मैंने अनुमोदना भी की हो (तस्स) उस भाषा समिति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों। हे भगवन्, भाषा समिति संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

मन गुप्ति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तिण्णि-गुत्तीओ, मण-गुत्तीओ, वचि-गुत्तीओ, काय-गुत्तीओ चेदि। तत्थ मण-गुत्ती, अट्टे झाणे, रुद्दे, इह-लोय-सण्णाए, पर-लोएसण्णाए, आहारसण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए, एवमाइयासु जा मण-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (12)

अन्वयार्थ-(तिण्णि-गुत्तीओ) गुप्तियाँ तीन हैं-(मणगुत्तीओ, वचिगुत्तिओ, कायगुत्तीओ च इदि) मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इस प्रकार। मन, वचन, काय इन योगों को सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है (तत्थ मणगुत्ती) उन तीन गुप्तियों को प्रथम मनगुप्ति (आर्त्तध्यान आदि रूप अशुभ परिणामों से मन को रोकना मनगुप्ति है) का (अट्टेझाणे) आर्त्तध्यान में (रुद्देझाणे) रौद्र ध्यान में (इहलोयसण्णाए) इस लोक संबंधी आहार आदि संज्ञा में (परलोयसण्णाए) परलोक संबंधी सुखादि की अभिलाषा में (आहार सण्णाए) आहार की वाञ्छा में (भयसण्णाए) भय संज्ञा में (मेहुण सण्णाए) मैथुन संज्ञा में (परिग्गहसण्णाए) परिग्रह संज्ञा में (एव) इस प्रकार इहलोक संज्ञा, परलोक संज्ञा आदि के विषयों में (जा) जो (मणगुत्ती) मनगुप्ति का मैंने (ण रक्खिया) रक्षण नहीं किया हो (अपि) और (ण रक्खिजंतं वि समणुमण्णिदो) रक्षण नहीं करने वालों की अनुमोदना भी की हो तो (तस्स) मनगुप्ति सम्बन्धी मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों।

वचन गुप्ति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ वचि-गुत्ती इत्थि-कहाए, अत्थ-कहाए, भत्त-कहाए, राय-कहाए, चोर-कहाए, वेर-कहाए, परपासंड-कहाए, एवमाइयासु जा वचि-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रखिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (13)

अन्वयार्थ-(तत्थ) उन तीन गुप्तियों में (वचिगुत्ती) विकथा के विषय में वचनों का गोपन/रक्षण करना वचनगुप्ति है तथा उत्सूत्र अर्थात् आगमविरुद्ध भाषा का रोकना तथा गृहस्थों जैसी व्यर्थ भाषा का रोकना या मौन रहना वचन गुप्ति है।

किन-किन विकथाओं में वचन का रक्षण करना चाहिये उसी को आगे कहते हैं (इत्थिकहाए) स्त्री कथा में-उन स्त्रियों के नयन, नाभि, नितम्ब आदि के वर्णन रूप कथा में (अत्थकहाए) धन के उपार्जन, रक्षण आदि के कथन रूप अर्थकथा में (भत्तकहाए) भोजन का वर्णन करने रूप भक्त कथा में (रायकहाए) राजा की कथा रूप राजकथा में (चोरकहाए वेरकहाए) चोरों का वर्णन करने वाली चोर कथा में और विद्वेष या वैर बढ़ाने वाली वैर कथा में (परपासंडकहाए) दूसरे कुलिंगी, मिथ्यादृष्टियों की चर्चा या कथन करने रूप परपाखंड कथा में (एवमादियासु) इस प्रकार की कथाओं में (जा वचिगुत्ती) जो वचनों का गोपन (ण रक्खिया) वचनों का रक्षण स्वयं मैंने नहीं किया हो (ण रक्खाविया) दूसरों से रक्षण नहीं कराया हो (ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो) वचन गुप्ति का रक्षण नहीं करने वालों की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस वचन गुप्ति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों।

मम परम सकारात्मक भावना-

मेरी सर्वोच्च पावन भावना=आत्मा से बनूँ परमात्मा

(मैं ही मेरा निर्वाण व निर्वाण कर्त्ता-भोक्ता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1. इह विधि... 2. रे पारस तेरी.... 3. गरजत बरसत... 4. देहाची तिजोरी)

करूँ भावना मैं स्व आत्म तत्त्व की, आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रवीर्य की।
मुझमें है अनन्तगुण सदा ही; प्रगट करना ही अभी शेष भी।।
मेरे द्वारा मुझमें प्राप्त करना ही/भी, सुयोग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावयोग।
मम उपादान प्रमुख सदा ही; निमित्त सहयोग विरोध अभाव भी।। (1)
मेरी भावना हेतु प्रमुख मैं ही, भले गौण में निमित्त सहयोग आदि।
भावना अभाव से सभी व्यर्थ ही, भावना भव नाशिनी भावना भववर्द्धनी।।
अशुभ भावना परे शुभभावना भाऊँ, शुभ को बढ़ाता शुद्ध को पाऊँ।
रागद्वेषमोह कामक्रोधादि अशुभ, ईर्ष्यातृष्णा घृणा वैरत्व अशुभ।। (2)
अशुभ से बन्धते कर्म पापमय, जिससे आत्मगुण मम होते क्षीण।

तन मन आत्मा होते अस्वस्थ दुर्बल, समता शान्ति आत्मा विशुद्धि निर्बल।।
अशुभ त्यागूँ मैं नवकोटि से, शुभभाव करूँ मैं नवकोटि से।
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्म अपरिग्रह, उत्तमक्षमादि दशधा धर्म निर्मल।। (3)
इससे बढ़ेंगे आत्मगुण प्रबल, समता शान्ति आत्मविशुद्धि प्रखर।
इससे बन्धेंगे सातिशय पुण्य प्रचुर; जिससे मिलेंगे सुद्रव्य क्षेत्रकाल।।
जिससे आत्मविकास होयेगा प्रबल, होयेंगे पाप ताप विरोध दूर।
सरल सहज होंगे उत्तम कार्य प्रचुर, निर्मिल निर्विकार निर्द्वन्द्व निश्चल।। (4)
ध्यान अध्ययन शोध-बोध लेखन, आत्मविशुद्धि हेतु एकान्तवास मौन।
इससे आत्मशक्ति बढ़ती जायेगी, श्रद्धाप्रज्ञा चर्या एकमेक होगी।।
निर्विकल्प निष्काम वीतरागी बनूँ, अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य बनूँ।
यह ही मेरी परम उत्कृष्ट भावना, जिससे 'कनक' बनूँ शुद्ध बुद्ध परमात्मा।। (5)
मुझमें है परमात्मा बनने की शक्ति; मुझमें में नहीं दीन हीन अहं वृत्ति।
यह मेरी परम सकारात्मक भावना, इससे भिन्न सभी नकारात्मक भावना।।
आगम अनुभव विज्ञान से जाना; मैं ही मेरा कर्त्ता-भोक्ता मैं ही माना।
मेरा विकास मुझसे ही माना, निःशंक, निकांक्ष, निर्भय बना।। (6)
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ, निश्चिंत होकर स्व आत्मा को ध्याऊँ।
स्वध्यान से सर्वार्थसिद्धि पाऊँ, उत्तम आत्मचिन्ता से मोक्ष मैं पाऊँ।।
अन्त्योदय से सर्वोदय करूँ, ख्याति पूजा लाभ निदान त्यागूँ।
परचिन्ता अधमाधमा (मैं) त्यागूँ, मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाऊँ।।

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-11/12/2020, रात्रि-8.26 व प्रातः 7.12

संदर्भ-

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं।। (177) नियमसार

अविचलितमखण्डज्ञानमद्वन्द्वमिष्टं
निखिलदुरितदुर्गव्रातदावाग्निरूपम्।
भज भजसि निजोत्थं दिव्यशर्मामृतं
त्वं सकलविमलबोधस्ते भवत्येव तस्मात्।। (296)

गाथार्थ–''जो जन्म, जरा, मरण से रहित है, उत्कृष्ट है, अष्ट कर्मों से रहित है, शुद्ध है, ज्ञानादि चतुर्गुणरूप स्वभाव से युक्त है, अक्षय है, अविनाशी है और अच्छेद्य है वह कारण परमतत्त्व है।''

टीकार्थ–वह कारण परमतत्त्व स्वभाव से ही संसार का अभाव होने के कारण जन्म, जरा और मरण से रहित है, परम पारिणामिक भाव से उत्कृष्ट स्वभाव रूप होने के कारण परम है, तीनों काल में उपाधि रहित स्वरूप होने के कारण आठ कर्मों से रहित है, द्रव्यकर्म और भावकर्म से रहित होने के कारण शुद्ध है, सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र और सहजचैतन्य शक्ति से तन्मय होने के कारण ज्ञानादि चतुःस्वभाव है। सादिसान्त मूर्तेन्द्रियात्मक विजातीय विभावव्यंजनपर्याय से रहित होने के कारण अक्षय है, शुभ-अशुभ गति के कारणभूत पुण्य-पाप कर्मों के द्वन्द्व-युगल का अभाव होने से अविनाश है और वध, बन्धन तथा छेदन के योग्य मूर्ति-शरीर से रहित होने के कारण अच्छेद्य है।

''हे आत्मन्! तू उस दिव्य सुख-मोक्षसुखरूपी अमृत का सेवन कर जो कि चञ्चलतारहित है, अखण्ड ज्ञान से युक्त है, द्वन्द्व रहित है, इष्ट है, समस्त पापरूपी वन के समूह को जलाने के लिए दावानल है और अपने ही आत्मा से उत्पन्न है। उस दिव्यसुखरूप अमृत से ही तुझे सम्पूर्ण निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होगी।''

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं।
पुणरागमणविरहियं णिच्चं अचलं अणालंबं।। (178)

गाथार्थ–''वह परमात्मतत्त्व अव्याबाध है, अतीन्द्रिय है, अनुपम है, पुण्य-पाप से निर्मुक्त है, पुनरागमन से रहित है, नित्य है, अविचल है और अनालम्ब है-परद्रव्य के आलम्बन से रहित है।''

टीकार्थ–वह परमात्मतत्त्व समस्त दुष्ट पापरूपी वीर शत्रुओं की सेना के क्षोभ से रहित, सहजज्ञान रूप दुर्ग में अवस्थित होने से अव्याबाध है-बाधारहित है, समस्त आत्मप्रदेशों में भरे हुए चिदानन्दमय होने से अतीन्द्रिय है, बहिरात्मादि तीन तत्त्वों में श्रेष्ठ होने से अनुपम है, संसाररूपी स्त्री के संभोग से समुद्भूत सुख-दुःख का अभाव होने के कारण पुण्य-पाप से निर्मुक्त है, पुनरागमन में कारणभूत शुभ-अशुभ मोह, राग तथा द्वेष का अभाव होने के कारण पुनरागमन से रहित है,

नित्यमरण और तद्भवमरण का कारणभूत शरीर सम्बन्ध का अभाव होने से नित्य है, अपने गुण और पर्यायों से च्युत न होने के कारण अचल है एवं परद्रव्य के आलम्बन का अभाव होने से अनालम्ब है।

''आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरितः स्थायिभावत्मेति।।''

''अनादिसंसार से पद-पद पर निरन्तर मत्त रहने वाले ये रागी पुरुष जहाँ शयन कर रहे हैं वह अपद है-अपना स्थान नहीं है, हे अन्धे प्राणियों! जागो, और इधर आओ, यह तुम्हारा पद है, जिसमें कि अत्यन्त शुद्ध तथा स्वरस से भरा हुआ चैतन्य रूप धातु स्थायीभाव को प्राप्त हो रहा है-निरन्तर रह रहा है।''

भावाः पञ्च भवन्ति येषु सततं भावः परः पञ्चमः
स्थायी संसृतिनाशकारणमयः सम्यग्दृशां गोचरः।
तं मुक्त्वाखिलरागरोषनिकरं बुद्ध्वा पुनर्बुद्धिमान्
एको भाति कलौ युगे मुनिपतिः पापाटवीपावकः।। (297)

''कुल भाव पाँच है, उनमें पञ्चम पारिणामिक भाव श्रेष्ठ है, क्योंकि वही सदा स्थायी रहता है, संसार के नाश का कारण है और सम्यग्दृष्टि जीवों का विषय हैं। जो बुद्धिमान् समस्त रागद्वेष के समूह को छोड़कर उसी पारिणामिक भाव को जानता है वही एक, पाप रूप अटवी को जलाने के लिए अग्नि तुल्य यतीश्वर इस कलियुग में शोभा पाता है।''

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (271)

गाथार्थ-''जहाँ न दुःख है, न सुख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न मरण है और न जन्म है, वहीं निर्वाण होता है।''

टीकार्थ-जो निरन्तर अन्तर्मुखाकार परम अध्यात्म स्वरूप में लीन हैं ऐसे निरुपराग शुद्ध रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा के अशुभ परिणति का अभाव होने से

अशुभकर्म नहीं होते और अशुभकर्मों का अभाव होने से दुःख भी नहीं होता, इसी प्रकार शुभ परिणति का अभाव होने से शुभ कर्म नहीं होते ओर शुभकर्मों का अभाव होने से संसार सुख भी नहीं होता, पीड़ा का योग्य आयतन-स्थान जो शरीर उसका अभाव होने से पीड़ा नहीं होती, असातावेदनीय कर्म का अभाव होने से बाधा नहीं होती, पञ्च प्रकार के नोकर्म-शरीर का अभाव होने से मरण नहीं होता और पञ्च प्रकार के नोकर्मों के कारणभूत कर्मरूप पुद्गल का ग्रहण न होने से जन्म नहीं होता, इस प्रकार इन लक्षणों से सहित अखण्ड एवं विक्षेप रहित जो परमात्मतत्त्व है उसी का निर्वाण होता है।

भवभवसुखदुःखं विद्यते नैव बाधा।
जननमरणपीडा नास्ति यस्येह नित्यम्।
तमहमभिनमामि स्तौम संभावयामि।
स्मरसुखविमुखस्सन् मुक्तिसौख्याय नित्यम्।। (298)

''जिसके भव-भव के दुःख नहीं है, बाधा नहीं है और जन्म-मरण की पीड़ा भी नहीं है, मैं कामसुख से पराङ्मुख होता हुआ मुक्ति जनित सुख की प्राप्ति के लिए निरन्तर उसी को नमस्कार करता हूँ, उसी की स्तुति करता हूँ और उसी की भावना-चिन्तन करता हूँ।''

आत्मराधनया हीनः सापराध इति स्मृतः।
अहमात्मानमानन्दमन्दिरं नौमि नित्यशः।। (299)

''आत्मा की आराधना से हीन मनुष्य चूँकि सापराध माना गया है अतः मैं आनन्द के मन्दिर स्वरूप आत्मा की ही निरन्तर स्तुति करता हूँ-आत्मा की ही आराधना करता हूँ।''

णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहो विम्हिओ ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (180)

गाथार्थ-''जहाँ न इन्द्रिय हैं, न उपसर्ग हैं, न मोह है, न विस्मय है, न निद्रा है, न प्यास है और न क्षुधा है वहीं निर्वाण होता है।''

टीकार्थ-उस परम ब्रह्म रूप परम तत्त्व में अखण्डैक प्रदेशी ज्ञानस्वरूप होने से स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण नामक पञ्च इन्द्रियों के व्यापार नहीं है, देव,

मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत उपसर्ग नहीं है, क्षायिक सम्यग्दर्शन और यथाख्यात चारित्र से तन्मय होने के कारण दर्शन और चारित्र के भेद से विभक्त दोनों प्रकार का मोह नहीं है, बाह्य प्रपञ्च से विमुख रहने के कारण विस्मय-आश्चर्य नहीं है, निरन्तर प्रकट रहने वाले शुद्ध ज्ञान स्वरूप होने से निद्रा नहीं है और असातावेदनीय कर्म का क्षय हो जाने से क्षुधा-तृषा भी नहीं है।

''ज्वरजननजराणां वेदना यत्र नास्ति
परिभवति न मृत्युर्नागतिर्नो गतिर्वा।
तदतिविशदचित्तैर्लभ्यतेऽङ्गेपि तत्त्वं
गुणगुरुगुरुपादाम्भोजसेवाप्रसादात्।।''

''जिसमें ज्वर-जन्म और जरा की पीड़ा नहीं है, जिसका मृत्यु पराभव नहीं कर सकती एवं जो गति-आगति से रहित है, वह परमतत्त्व, गुणों से श्रेष्ठ गुरुओं के चरण कमलों की सेवा के प्रसाद से हम लोगों के भी अतिशय निर्मल चित्त में प्राप्त किया जा सकता है।''

यस्मिन् ब्रह्मण्यनुपमगुणालंकृते निर्विकल्पेऽ-
क्षाणामुच्चैर्विविधविषमं वर्तनं नैव किंचित्।
नैवान्ये वा भविगुणगणाः संसृतेर्मूलभूताः
तस्मिन्नित्यं निजसुखमयं भाति निर्वाणमेकम्।। (300)

''अनुपम गुणों से सुशोभित विकल्पातीत जिस परब्रह्मा में इन्द्रियों की कुछ भी विविध एवं विषय प्रवृत्ति नहीं है और न संसार के मूलभूत संसारी जनोचित अन्य गुणों के समूह ही विद्यमान हैं उसी परब्रह्मा-परमात्मतत्त्व में निरन्तर आत्मसुख से तन्मय निर्वाण सुशोभित होता है।''

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
णवि धम्मसुक्क झाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (181)

''जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है, न चिन्ता है, न आर्त्तरौद्र ध्यान हैं और न धर्म-शुक्लध्यान हैं वहीं निर्वाण होता है।''

टीकार्थ-जहाँ सदा निरञ्जन होने से आठ द्रव्यकर्म नहीं है, तीनों काल में

उपाधि रहित होने से पाँच नोकर्म नहीं है, मन रहित होने से चिन्ता नहीं है, औदायिक आदि विभाव भावों का अभाव होने से आर्त्तरौद्रध्यान नहीं है तथा धर्म-शुक्लध्यान के योग्य चरम शरीर का अभाव होने से धर्म-शुक्लध्यान भी नहीं है वहाँ महान् आनन्दरूप निर्वाण होता है।

निर्वाणस्थे प्रहतदुरितध्वान्तसंघे विशुद्धे
कर्माशेषं न च न पुनर्ध्यानकं तच्चतुष्कम्।
तस्मिन्सिद्धे भगवति परंब्रह्माणि ज्ञानपुंजे
काचिन्मुक्तिर्भवति वचसां मानसानां च दूरम्।। (301)

''जो निर्वाण में स्थित है, जिन्होंने पापरूपी अन्धकार के समूह को नष्ट कर दिया है, जो अतिशय विशुद्ध है और ज्ञान के पुञ्ज स्वरूप हैं उन परं ब्रह्म सिद्ध भगवान् में न कोई कर्म ही शेष रह जाते हैं और न चार ध्यान ही रहते हैं उनके तो एक वह अनिर्वचनीय मुक्ति होती है जो कि वचन और मन दोनों से दूर रहती है।''

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं।
केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं।। (182)

गाथार्थ-''उन सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान है, केवलसौख्य है, केवलवीर्य है, अमूर्तत्व है, अस्तित्व है और सप्रदेशत्व है।''

टीकार्थ-सम्पूर्ण रूप से अन्तर्मुखाकार स्वात्मा के आश्रय से होने वाले निश्चय परम शुक्लध्यान के बल से ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों का विनाश हो चुकने पर भगवान् सिद्ध परमेष्ठी के केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य, केवलसुख, अमूर्तत्व, अस्तित्व तथा सप्रदेशत्व आदि स्वाभाविक गुण प्रकट हो जाते हैं।

बन्धच्छेदाद्भगवति पुनर्नित्यशुद्धे प्रसिद्धे
तस्मिन्सिद्धे भवति नितरां केवलज्ञानमेतत्।
दृष्टिः साक्षादखिलविषया सौख्यमात्यन्तिकं च
शक्त्याद्यन्यद्गुणमणिगणः शुद्धशुद्धश्च नित्यम्।। (302)

''कर्मबन्ध का छेद हो जाने से निरन्तर शुद्ध रहने वाले अतिशय प्रसिद्ध सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान, समस्त पदार्थों को विषय करने वाला केवलदर्शन,

आत्यन्तिक-अविनाशी सुख और निरन्तर शुद्ध रहने वाले वीर्य आदि अन्य गुण रूप मणियों का समूह प्रकट हो जाता है।''

णिव्वाणमेव सिद्धा सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्दिट्ठा।

कम्मविमुक्को अप्पा गच्छइ लोयग्गपज्जंतं।। (183)

गाथार्थ-''निर्वाण ही सिद्ध हैं और सिद्ध ही निर्वाण हैं ऐसा कहा गया है-मुक्त और मुक्ति प्राप्त जीवों में अभेद है। जो आत्मा कर्म से मुक्त होता है वह लोक के अग्रभाग तक जाता है।''

टीकार्थ-यहाँ निर्वाण शब्द दो अर्थों में स्थित है। किस प्रकार? ''निर्वाण ही सिद्ध है'' मुक्ति ही मुक्त है-ऐसा आगम का वचन होने से। सिद्ध सिद्धक्षेत्र में रहते हैं...यह व्यवहारनय की अपेक्षा कथन है परन्तु निश्चयनय से स्व-स्वरूप में ही स्थित रहते हैं इसलिए निर्वाण ही सिद्ध हैं और सिद्ध ही निर्वाण है...इस क्रम से निर्वाण शब्द और सिद्ध शब्द में एकत्व सिद्ध हो जाता है।

जो अतिशय निकट भव्य जीव है वह परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त हुई परम पारिणामिक भाव की भावना के द्वारा समस्त कर्मरूपी कलंक पंक से मुक्त होता हुआ परमात्मा होकर लोक के अग्रभाग तक जाता है।

अथ जिनमतमुक्तेर्मुक्तजीवस्य भेदं

क्वचिदपि न च विद्मो युक्तितश्चागमाच्च।

यदि पुनरहि भव्यः कर्म निर्मूल्य सर्वं

स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। (303)

''हमें जैनधर्म में कही हुई मुक्ति तथा मुक्त जीव के बीच युक्ति तथा आगम से कहीं भी भेद नहीं मालूम होता। जो निकट भव्य है समस्त कर्मों का निर्मूलन कर मुक्ति लक्ष्मीरूपी स्त्री का प्रियवल्लभ होता है।''

जीवाण पुग्गलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी।

धम्मत्थिकायऽभावे तत्तो परदो ण गच्छंति।। (184)

सर्वोत्तम जीवन का निर्माण करें

संयत और धीमी सफलता के अतिरिक्त, मैं अन्य मूल मंत्रों, उनके विषय को

बार-बार लुइस की आध्यात्मिक यात्रा का वृत्तांत सुनते हुए दोहराने पर भी ध्यान दे रही थी-

सरलता–चीजों को जटिल बनाने की बजाय छोटे, सरल और नियंत्रित कदम उठाने पर ध्यान केंद्रित करना।

आशावादी–समस्या पर ध्यान देने की बजाय समाधान पर अपना ध्यान व ऊर्जा केंद्रित करना।

सहनशीलता–किसी विशेष परिणाम प्राप्त करने की शीघ्रता की बजाय अपनी पूरी यात्रा को पूरे धैर्य के साथ अनुभव करना।

विश्वास–अपने सभी अनुभवों में विकास के लिए औचित्य व अवसर की तलाश से जीवन पर विश्वास करने की कला सीखना।

विकास–जीवन के प्रति एक कक्षा की भाँति दृष्टिकोण बनाए रखना, जहाँ पर हमारे अपने अनुभव बदलाव लाने और आत्मबोध के लिए उत्प्रेरक की भाँति प्रयोग होते हैं।

सेवा–अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण व सफलता की तलाश में खोने के बजाय इस पर ध्यान केंद्रित करना कि आवश्यकता के समय किस प्रकार सभी के लिए सबसे बेहतर ढंग से प्रोत्साहन व सहायता प्रदान की जाए।

क्रिया–अपनी यात्रा पर जीवन द्वारा हमारे लिए जिन द्वारों को खोला जाता है, उनपर ध्यान देने व उनसे गुजरने हेतु प्रतिबद्धता दिखाना।

भरोसा–मौके का लाभ उठाने के लिए तत्पर रहना और परिणाम की परवाह किए बिना आगे बढ़ते रहना।

चुंबकीय आकर्षण–अपने आपको सही मानसिक स्थिति में रखकर, अपने भीतर क्षमता विकसित करना व उसका दोहन कर अपनी आवश्यकता को अपनी ओर आकर्षित करना। **(लुइस एल.हे)**

एक अनूठे जीवन के रचयिता बनें!

हम सभी सशक्त, सृजनात्मक प्राणी हैं, जो अपने विचारों तथा कहे गए शब्दों से अपना भविष्य बनाते हैं। जब मैंने अगले सत्र के दौरान उनसे हुई मुलाकात के दौरान अपना रिकॉर्डर चालू किया था, तब लुइस ने यही वाक्य कहे थे।

उस दिन मेरे होटल के कमरे की खिड़की के पासवाली सीट पर एक-दूसरे के आमने-सामने बैठकर हम ऊपर से नीचे की ओर टोरंटो शहर का नजारा देख रहे थे। यह बहुत ही सुंदर और गुनगुनी धूप की दोपहर थी-जैसे ही मेरा ध्यान लुइस के शब्दों पर गया, मैंने महसूस किया कि इस संदेश का मूलभाव बहुत ही महत्त्वपूर्ण है-अपनी सबसे पवित्र, सबसे सकारात्मक मानसिक अवस्था में हम इतने शक्तिशाली होते हैं कि अपने लिए सबसे बेहतर जीवन का निर्माण स्वयं कर सकते हैं। जब हमारे मन में श्रेष्ठ विचारों का आगमन होता है, हम अच्छा महसूस करने लगते हैं। जब हम अच्छा महसूस करते हैं तो हम अपने लिए शुभ, श्रेष्ठ विचारों, कार्यों का चुनाव करते हैं। जब हम अच्छा महसूस करते हैं और अच्छा चुनाव करते हैं, तो हम अपने जीवन में अच्छे अनुभव प्राप्त करते हैं। वास्तव में यह कितना साधारण, सहज और सत्य है।

विज्ञान हमें बताता है कि ब्रह्मांड, सृष्टि के कण-कण प्रवाहित होती रहती हैं और जो भी साँस हम लेते हैं व जो भी विचार हमारे मन में आते हैं, उनका इन पर अथवा किसी वस्तु पर प्रत्यक्ष तौर से प्रभाव अवश्य पड़ता है। जिस कुरसी पर मैं बैठी हूँ , जिस कीबोर्ड का प्रयोग में काम करने के लिए कर रही हूँ और मेरी खिड़की के बाहर सामने खड़ा मैग्नोलिया पेड़, जो अपनी अनुपम छटा बिखेर रहा है, इन सभी का सृजन ऊर्जा से हुआ है। जिस तीव्रता के साथ कोई वस्तु स्पंदित होती है, वह उस वस्तु के रूप की सघनता को निर्धारित करती है। यह ऊर्जा प्रत्यक्ष तौर पर उन विचारों, शब्दों व क्रियाओं से प्रभावित होती है, जिन्हें हम सोचते, बोलते और करते हैं। विचार, शब्द और कर्म से भावनाओं की उत्पत्ति होती है, और यह भावनाएँ ही वह मुद्रा बनती हैं , जिनके द्वारा हम अपने जीवन के अनुभव प्राप्त करते हैं।

जब लुइस और मैं इस पक्ष पर बातचीत करने लगे कि कैसे हमारे विचार हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, मैं और भी ज्यादा जान गई कि यह विचार (आइडिया) वास्तव में कितना महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त है। हम दोनों का विश्वास, शिक्षा तथा जीवन पद्धति इस संकल्पना पर आधारित है, जो अभी तक अनेक लोगों की नजर में अस्वाभाविक, नया युग या एकतरफा है।

एक क्षण के लिए, मैंने यह कल्पना की कि जैसे मैं अपने विचारों को मजबूती देने के लिए साक्ष्यों की तलाश वेब पर सर्च कर, अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय

में खोजबीनकर अथवा वैज्ञानिक समुदाय में अपने सहकर्मियों के मन के विचारों को पढ़ने की चेष्टा से कर रही हूँ। लेकिन तभी मुझे याद आया कि मुझे अधिक समय तक ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। मुझे उन आध्यात्मिक सिद्धांतों का पक्ष लेकर उन्हें सही सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने मेरे जीवन को दिशा प्रदान की और उसको एक आकार दिया। वे कारगर हैं और मैं यह भलीभाँति जानती हूँ । लुइस और मैं दोनों ही इसे भलीभाँति जानते थे।

उस दोपहर को जब तक हमने अपना वार्त्तालाप जारी रखा, तब तक यह साफ हो गया कि मैं और लुइस दोनों ही नए विचारों को प्रस्तुत करनेवाले लेखकों जैसे एम्मेट फॉक्स और फ्लोरेंस स्कोवेल शिन्न से प्रेरित हैं, जो पाठकों को प्रोत्साहित करते हैं कि वे जीवन को बदलने और उसे सुधारने के लिए विचारों की शक्ति का प्रयोग करें। इन सिद्धांतों को स्वयं अपने जीवन में उतारकर लुइस और मैं अवसरों व अनुभवों को स्पष्ट करने में सफल हुए, यह विश्वास इस बात का सबूत है कि हमारे विचार कितने शक्तिशाली हैं और साक्ष्य हमारे विश्वास को और अधिक बल देता है।

(संभवतः, विज्ञान उन लोगों के इस किस्सा रूपी साक्ष्य की उपेक्षा करे, जिन्होंने विचारों की उपचारात्मक अथवा रचनात्मक शक्ति का अनुभव किया है, लेकिन यह कहानियाँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। यह बदलाव की सूचक होती हैं, उस बदलाव के लिए उत्प्रेरक होती हैं, जो अंततः हमारे जीवन को जीने के तरीके को साकार करता है। चमत्कारपूर्ण कहानियाँ और अद्भुत अनुभव प्रायः समझा को बढ़ाते हैं। वे हमें अपने मन और मस्तिष्क के द्वार खोलने के लिए आमंत्रित करते हैं, ऐसी वस्तु पर हमारे विश्वास को बढ़ाते हैं, जिसकी उपस्थिति हमारी सीमित सोच से परे होती है, और यही विचार का क्रेंद है।)

विचारों से ही चेतना का विस्तार या वृद्धि होती है। जरा सोचें कि पहले-पहल मानव सभ्यता के लिए यह सोच कितनी पागलपन भरी होगी कि वह अपने घर में बैठकर एक बक्से पर उभरनेवाली चलती-फिरती तसवीरों को देख सकता हैं, जी हाँ! यहाँ पर टेलीविजन की ही बात हो रही है। एक बेतरतीब, नामुमकिन प्रतीत होने वाले विचार से मानव जाति का चेहरा ही बदल दिया।

हमारे तन और मन की दुनिया की पायनियर लुइस ने अपने पाठकों व दर्शकों के समक्ष यह चुनौती रखी कि वे अपने सोच को बढ़ाएँ, इसके लिए उन्होंने उनको यह सुझाव भी दिया कि वे अपनी शारीरिक बीमारी का उपचार आध्यात्मिक तरीके से करें। बीमारियों का उपचार केवल व्यावहारिक तरीकों से करने पर अपना ध्यान केंद्रित करने के बजाय, वे लोगों को इस बात पर भी ध्यान देने के लिए कहती हैं कि अपनी बीमारी के दौरान वे किस तरह की सोच रखते हैं । मन और मस्तिष्क के बीच संबंध स्थापित कर, वे अन्य लोगों की उसी खोज को पूरा करने के लिए कहती थी, जिसे उन्होंने स्वयं अपने जीवन में प्राप्त किया था-हमारे विचारों की हमारे शारीरिक उपचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लुइस ने कई बार इस तथ्य के साक्ष्य को उन पुरुषों व महिलाओं के मुसकराते हुए चेहरों पर देखा, जिन्होंने अपने शरीर और जीवन का उपचार किया था। यह साक्ष्य उनके और उन अनेक लोगों के लिए पर्याप्त था, जिनका उन्होंने उपचार किया था।

जब बात विचारों की शक्ति को व्यवहार में लाने की होती है, तो हमें सामान्य रूप से नए तरीके से कार्य करने और इस बात पर विश्वास करने की आवश्यकता होती है कि जीवन हमारे सामने अपने साक्ष्य ही प्रस्तुत करता है। अतः इसको ध्यान में रखते हुए, मैंने अपने वास्तविक जीवन के किस्सापरक साक्ष्यों पर निर्भर होने के बजाय अपनी खोज को यह सिद्ध करने के लिए समर्पित कर दिया कि विचार हमारी शारीरिक क्षमता की वास्तविकता को प्रभावित करते हैं। एक बार जब मैंने यह निर्णय ले लिया तो कुछ बहुत रोचक घटित हुआ। **(सर्वोत्तम जीवन का निर्माण करें)**

कमी को समझे, खूबी को निखारे

तुलना, अफसोस और मलाल किसकी ज़िंदगी में नहीं है। लेकिन असल अफसोस की बात यह है कि बहुत-से लोग बस अपनी कमियों को लेकर अफसोस करते रह जाते हैं और जीवन की नेमतों को देख ही नहीं पाते।

दुनिया में जितने लोग हैं, शायद उससे ज्यादा अफसोस हैं। मैं उतनी गोरी नहीं, मेरा कद उतना नहीं है, मेरी शिक्षा उतनी नहीं है, मुझमें उतना आत्मविश्वास नहीं है, मुझे उतनी आजादी नहीं है, मेरा अनुभव उतना नहीं है, मेरे पास उतने अवसर नहीं है, मेरी आवाज़ उतनी अच्छी नहीं है, मेरा जीवनसाथी उतना सहयोगी

नहीं है, मेरे बच्चे उतने प्रतिभाशाली नहीं है, मेरा वतन उतनी नहीं...इस तरह के असंख्य अफसोस हो सकते हैं। मुमकिन है, आपके पास भी कुछ हों।

स्वाभाविक है कि इंसान होने के नाते हम इस भावना से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकते, परंतु इसकी तीव्रता को न्यूनतम अवश्य रख सकते हैं। जीवन में किसी बात को लेकर अफसोस जितना गहरा होता है, जीवन को लेकर असंतुष्टि का भाव उतना ही गहराता जाता है। यही वजह है कि जब अच्छे-खासे सफल और साधनसंपन्न लोग कभी गलत कदम उठा लेते हैं, तो बाकियों को आश्चर्य होता है कि अरे! इतनी नेमतों के बावजूद उसने ऐसा क्यों किया! बहरहाल, यह सच है कि किसी अफसोस या कसक के चलते चरम कदम कम ही लोग उठाते हैं, परंतु यह भी सच है कि इस भीतरी मानसिक ग्रंथि की वजह से बहुत-से लोग ज़िंदगी में कुछ नहीं कर पाते और कुंठा व हताशा में डूबे रहे जाते हैं या अपनी खुशियों को खुद बर्बाद कर लेते हैं। दरअसल, उतना-उतनी की यह मानसिकता हमें आगे बढ़कर कुछ करने से रोकती है और तमाम योग्यताओं के बावजूद हम पीछे रह जाते हैं यानी जीवन में एक अफसोस बढ़ जाता है।

यदि आपको भी अपने रंग-रूप, धन-दौलत, परिवार-रिश्ते, शिक्षा-कॅरियर, स्वास्थ्य-फिटनेस, लोकप्रियता-सफलता आदि किसी भी मामले में 'उतना नहीं है' के ख्याल आते हों, तो पहले यह जान-समझ लीजिए-

आपके जैसे आठ अरब लोग हैं

दुनिया में ऐसा कोई नहीं होगा, जिसे अपने से जुड़ी किसी बात का अफसोस न हो। फ़िल्म उद्योग में ही दसियों उदाहरण हैं, जब अभिनेत्रियों ने कामयाब होने के बाद भी अपनी नाक, होंठ आदि में बदलाव करवाए हैं। सोना यदि कह सकता, तो शायद वह भी खुद में खुशबू न होने का मलाल करता। मतलब यह कि यदि आपको इस तरह का कोई मलाल हो या किसी मामले में आप स्वयं को कमतर समझती हों, तो यह बहुत सामान्य बात है। इस मामले में दुनिया के आठ अरब लोग आपकी तरह हैं। सबको कोई कमी महसूस होती ही है। अंतर इस बात से पड़ता है कि उस तथाकथित कमी को लेकर आप क्या करती हैं।

फिर भी आप सबसे अलहदा हैं

खुद के अंदर झांकना और अपनी कमियों को जानना अच्छी बात है। लेकिन समझदार लोग यह काम स्वयं को बेहतर बनाने के लिए करते हैं। वे अपनी कमियों और कमज़ोरियों को लेकर अफसोस नहीं करते रहते। जिन कमियों को दूर किया जा सकता है, वे उन्हें हटाने की ईमानदारी से कोशिश करते हैं और जिन्हें दूर नहीं किया जा सकता उन्हें सहज भाव से स्वीकार कर लेते हैं। इसके साथ ही वे अपनी नेमतों पर फोकस करते हैं। कहा जाता है कि ईश्वर किसी के साथ अन्याय नहीं करता। वह हर किसी को कोई न कोई विशेष प्रतिभा/प्रतिभाएं देता ही है। ज़रूरत केवल उसे पहचानने और निखारने की होती है। इसका फायदा यह भी होता है कि जब जीवन के किसी पक्ष में जगमगाहट होती है, तो उसके प्रभाव से कुछ अंधेरे पक्ष भी रोशन हो जाते हैं। इस सरल-सी बात के बावजूद हमारा व्यवहार होता उल्टा है। हम अपनी कथित कमज़ोरियों को ही खोजते रह जाते हैं और हमारी खूबियां ऐसे ही रह जाती हैं।

आपको सबकुछ नहीं मिलेगा

इस सच को जान लीजिए कि ईश्वर को छोड़कर कोई भी परिपूर्ण नहीं है। हर कोई बहुत सारे मामलों में औरों से कमतर है। ज़ाहिर है, आप एक साथ सुंदर, फैशनेबल, अक़्लमंद, मज़ाकिया, गम्भीर आदि नहीं हो सकतीं। न ही आपको चेहरे की सुंदरता के साथ अच्छी आवाज़, रंग, क़द, बाल, फिगर और चाल का वरदान मिल सकता है। इसलिए अपनी नेमतों को देखें और उनमें खुश रहें। और हां, केवल सुंदरता नहीं, हर मामले में ऐसा करें।

सोच बदलें तो सब बदल जाएगा

अगर आप पूरे समय नाकामियों और ग़लतियों के बीच झूलती रहेंगी, तो योग्यताएं और विशेषताएं धरी रह जाएंगी। यदि आप अपनी कमियां ही खोजती रहेंगी, तो खूबियां प्रत्यक्ष होने के बावजूद नज़र नहीं आएंगी। इसलिए, कोई व्यक्ति कितना ख़ुश और सफल होगा, यह उसके सोचने के तरीक़े पर निर्भर करता है। और हां, खुशी वर्तमान में होती है। भविष्य में ख़ुशियों की कल्पना करना वास्तव में अपने वर्तमान पर अफसोस करना ही होता है।

'मैं कड़ी मेहनत करके वज़न कम करूंगी और वह दिन मेरे लिए बहुत खुशी का दिन होगा'-यह कहने का मतलब है कि अभी मेरा वज़न अधिक है इसलिए मैं खुश नहीं हूं। जब मेरा वज़न कम हो जाएगा, तब मैं खुश होऊंगी और तभी खुद को पसंद करूंगी। इस नज़रिए को ज़रा-सा बदलेंगी, तो सोच पर बड़ा सकारात्मक बदलाव दिखेगा। अपने वर्तमान को स्वीकार करते हुए भविष्य की ओर बढ़ें। अपने वर्तमान स्वरूप में सहज रहें, फिर भले ही आप उसे बदलने की कोशिश क्यों न कर रही हों।

दुनिया आपको बाद में स्वीकार या पसंद करेगी, पहले खुद को पसंद करें और अपनी खूबियों, गुणों और उपलब्धियों पर गर्व करें। (मालिनी विश्वकर्मा)

मम शुद्धात्म स्वरूप अष्टक-ध्यान

(मम शुद्धात्मा ही मम सर्वस्व, अन्य सभी मम विभाव व परतत्व)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.वह शक्ति हमें दो... 2.भातुकली...)

ज्ञान ध्यान व तप-त्याग मम आत्मविशुद्धि हेतु कारक हो।
इस के अतिरिक्त कषायवर्द्धक, ख्याति पूजा लाभ के नाशक हो।।
आत्मविशुद्धि आत्म उन्नति व आत्मउपलब्धि हेतु साधना हो।
आत्मा द्वारा आत्मा हेतु आत्मा में ही, मम सभी परिणमन हो।। (1)
स्व आत्मवैभव ही मम सर्वस्व, जो अनन्त ज्ञान दर्शसुखवीर्यादि।
इसके अतिरिक्त तन मन अक्ष व सत्ता सम्पत्ति भोग उपभोगादि त्याज्य।।
''वस्तु स्वभाव धर्मः'' होने से मम शुद्ध स्वभाव ही परम धर्म।
इस के अतिरिक्त आत्मविभाव कारक, समस्त भाव-व्यवहार अधर्म।। (2)
''सत् द्रव्य लक्षणं'' से मम शुद्धात्मा ही, मेरे हेतु परम सत्य है।
इस हेतु मेरे सभी भाव-व्यवहार सत्य है अन्यथा सभी मोह-मिथ्या है।
मम शुद्धात्मा से तरूँगा संसार सागर, अतः निश्चय से मैं ही ममतीर्थ हूँ
इस हेतु बाह्य निमित्त व्यवहार तीर्थ, आत्मपतनकारी न ममतीर्थ है।। (3)

ज्ञानावरणादि अष्टकर्म से ले चौबीस परिग्रह शून्य मैं आकिंचन्य हूँ।
इस से ही बनूँगा शुद्ध बुद्ध आनन्द व प्रभु-विभु अन्यथा दीन दंभी।।
''उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्'' मैं ही मम स्वयंभू-परिणामी-शाश्वत।
अतः मैं हूँ स्वतंत्र, मौलिक स्वस्वरूप में, परिणमन चाहे 'सूरी कनक'।। (4)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-22-12-2020 प्रातः 7.51

संदर्भ-

अपरिग्रह महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं सो वि परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं दंसणावरणीयं, वेयणीयं, मोहणीयं, आउग्गं, णाम गोदं, अंतरायं चेदि अट्ठविहो। तत्थ बाहिरो परिग्गहो-उवयरण-भंड-फलह-पीढ-कमण्डलु-संथार-सेज्ज-उवसेज्ज, भत्तपाणादि-भेदेण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धावियं, बज्झन्तं समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।। (5) (गौतम गणधर कृत प्रतिक्रमण)

अन्वयार्थ-(अहावरे) अब अन्य (पंचमे महव्वदे) पाँचवें परिग्रह त्याग महाव्रत में (परिग्गहादो) परिग्रह से (वेरमणं) विरक्त, विरमण करना चाहिये। (सो) वह (परिग्गहो) परिग्रह (वि) भी (दुविहो) दो प्रकार का है (अब्भंतरो) आभ्यंतर (च) और (बाहिरो) बाह्य (इदि) इस प्रकार। (तत्थ) उस दो प्रकार के परिग्रह के मध्य (अब्भंतरो परिग्गहो) आभ्यंतर परिग्रह (णाणवरणीयं) ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणी (दंसणावरणीयं) दर्शन का आवरण करने वाला दर्शनावरणीय है (वेयणीयं) सुख-दुख का वेदन कराने वाला वेदनीय है, (मोहणीयं) मोहित करने वाला कर्म मोहनीय है, (आउग्गं) नरक-तिर्यंच आदि भवों को प्राप्त कराने वाला आयु कर्म (णामं) जो आत्मा को नमाता है वह नाम कर्म है (गोदं) उच्च-नीच-कुल में उत्पन्न कराने वाला गोत्र कर्म है (च) और (अंतरायं) दाता और पात्र के बीच में आ जाता है वह अन्तराय कर्म है (इदि) इस प्रकार (अट्ठविहो) आठ प्रकार (तत्थ) उन दोनों परिग्रहों के मध्य में (बाहिरो परिग्गहो) बाह्य परिग्रह (उवयरण) उपकरण दो प्रकार के हैं-ज्ञानोपकरण और संयमोपकरण। ज्ञानोपकरण

पुस्तकादि और संयमोपकरण पिच्छिका आदि। (भंड) भोजन-औषध, तैल आदि द्रव्य के भाजन, (फलह) फलह-सोने के लिये पाय रहित फड काष्ठ, आदि (पीढ) बैठने का पाटा, चौकी आदि (कमण्डलु) कमण्डलु (संथार) काष्ठ तृण आदि का संस्तर (सेज्ज उवसेज्ज) शय्या वसतिका, उपशय्या देवकुलिका आदि (भत्तपाणादि) चावल आदि भोजन तथा दूध, छाछ आदि पेय पदार्थ (भेदेण) भेद से (अणेयविहो) परिग्रह अनेक प्रकार का है (एदेण परिग्गहेण) इस प्रकार पूर्व में कथित प्रकार से परिग्रह (अट्ठविह कम्मरयं) आठ प्रकार का कर्म है वह कर्म ही शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति में मलीनता का हेतु होने से वह रज है, उस कर्म रज को प्रकृति, प्रदेश आदि रूप (बद्धं) मैंने स्वयं बाँधा हो (बद्धावियं) अन्य से बँधवाया हो (बज्झन्तं वि समणुमण्णिदो) और बाँधते हुए अन्य की अनुमोदना की हो (तस्स) उस बाह्य अभ्यंतर परिग्रह से उपार्जित (मे) मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत पाप (मिच्छा) मिथ्या हो।

दिध्यासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितम्।
विहायाऽन्यदनर्थित्वात् स्वमैवाऽवैतु पश्यतु।। (143)

'जो स्वालंबी निश्चयध्यान करने का इच्छुक है वह स्वको और परको यथावस्थित रूप में जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर परको निरर्थक होने से छोड़कर स्वको (अपने आत्मा को) **ही जानो और देखो।'**

व्याख्या – यहाँ स्व के साथ परके यथार्थज्ञान- श्रद्धान की जो बात कही गयी है वह अपना खास महत्त्व रखती है। जब तक परका यथार्थ बोधादिक नहीं होता तब तक उसको स्वसे भिन्न एवं अनर्थक समझकर छोड़ा नहीं जाता और जब तक परसे छुटकारा नहीं मिलता तब तक स्वात्मालंबनरूप निश्चयध्यान में यथार्थ प्रवृत्ति नहीं बनती।

पूर्व श्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः।
तत्रैकाग्रयं समासाद्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। (144)

'अतः पहले श्रुत (आगम) **के द्वारा अपने आत्मा में आत्मसंस्कारको आरोपित करे –** आगम में आत्मा को जिस यथार्थ रूप में वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओं द्वारा उसे संस्कारित करे- **तदन्तर उस संस्कारित स्वात्मा में एकाग्रता** (तल्लीनता) **प्राप्त करके और कुछ भी चिंतन न करे।**

व्याख्या–यहाँ निश्चयध्यान की यथार्थ सिद्धि के लिए पहले आत्मा को श्रुत की भावनाओं से संस्कारित करने की बात कही गयी है, जिससे आत्मा को अपने स्वरूप के विषय में सुदृढ़ता की प्राप्ति हो और वह अन्य चिंता छोड़कर अपने में ही लीन हो सके। और यह बात बड़े ही महत्त्व की है, जिसे अगले दो पद्यों में स्पष्ट किया गया है।

श्रोती भावनाका अवलंबन न लेने से हानि

यस्तु नालम्बते श्रौती भावनां कल्पनाभयात्।
सोऽवश्यं मुह्यति स्वस्मिन्बहिश्चिन्तां बिभर्ति च।। (145)

'जो ध्याता कल्पना के भय से श्रौती (श्रुतात्मक) **भावना का आलंबन नहीं लेता वह अवश्य अपने आत्म-विषय में मोह को प्राप्त होता है और बाह्य चिंता को धारण करता है।'**

व्याख्या–जो ध्याता निर्विकल्प ध्यान न बन सकने के भय से पूर्वावस्था में भी श्रौती भावना को, जो कि सविकल्प होती हैं, नहीं अपनाता वह मोह से अभिभूत अथवा दृष्टिविकार को प्राप्त होता है और बाह्य पदार्थों की चिंता में भी पड़ता है। उससे उसे सबसे पहले श्रौती भावना के संस्कार द्वारा अपने आत्मा को उसके स्वरूप-विषय में सुनिश्चित और सुदृढ़ बनना चाहिए, तभी निर्विकल्प ध्यान अथवा समाधि की बात बन सकेगी।

श्रौती भावना की दृष्टि

तस्मान्मोह-प्रहाणाय बहिश्चिन्ता-निवृत्तये।
स्वात्मानं भावयेत् पूर्वमेकाग्रस्य च सिद्धये।। (146)

'अतः मोहका विनाश करने, बाह्य चिंता से निवृत्त होने और एकाग्रता की सिद्धि के लिए ध्याता पहले स्वात्मा को श्रौती भावना से भावे संस्कारित करे।'

व्याख्या–जब श्रौती भावना का आलंबन न लेने से मोह को प्राप्त होना तथा बाह्य चिंता में पड़ना अवश्यभावी है तब मोह के विनाश तथा बाह्य चिंता की निवृत्ति के लिए और एकाग्रता की सिद्धि के लिए अपने आत्मा को पहले श्रौती भावना से

भावित अथवा संस्कारित करना चाहिए। ऐसी यहाँ सातिशय प्रेरणा की गयी है और इससे श्रोती भावना की दृष्टि तथा उसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

श्रौती-भावना का रूप

तथा हि चेतनोऽसंख्य-प्रदेशो मूर्तिवर्जितः।

शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञान-दर्शन-लक्षणः।। (147)

'मैं चेतन हूँ, असंख्यप्रदेशी हूँ, मूर्तिरहित-अमूर्तिक हूँ, सिद्धसदृश शुद्धात्मा हूँ और ज्ञान-दर्शन लक्षण से युक्त हूँ।'

व्याख्या-यहाँ आत्मा अपने वास्तविक रूप की भावना कर रहा है, जो कि चेतनामय है, असंख्यात प्रदेशी है, स्पर्श-रस-गंध-वर्णरूप मूर्ति से रहित अमूर्तिक है, सिद्धों के समान शुद्ध है और ज्ञान-दर्शन-लक्षण से लक्षित है। ज्ञान और दर्शन गुणों को जो लक्षण कहा गया है वह इसलिए कि ये उसके व्यावर्तक गुण हैं- अन्य सब पदार्थों से आत्मा का स्पष्ट भिन्न बोध कराने वाले हैं। तत्त्वार्थसूत्र में उपयोगो लक्षणम् सूत्र के द्वारा जीवात्मा का जो उपयोग लक्षण दिया है वह भी इन दोनों का सूचक है। क्योंकि उपयोग के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ऐसे दो मूलभेद किये गये हैंः जिनमें ज्ञानोपयोग के आठ और दर्शनोपयोग के चार उत्तरभेद हैं; जैसा कि तत्त्वार्थ सूत्र के सद्विविधोऽष्टचतुर्भेदः इत्यादि अगले सूत्रों से जाना जाता है।

'नान्योऽस्मि नाऽहमस्त्यन्यो नाऽन्यस्याऽहं न मे परः।

अन्यस्त्वन्योऽहमेवाऽहमन्योऽन्यस्याऽमेव च।। (148)

मैं अन्य नहीं हूँ, अन्य मैं (आत्मा) नहीं है। मैं अन्यका नहीं, न अन्य मेरा है। वस्तुतः अन्य अन्य ही है, मैं मैं ही हूँ, अन्य अन्य का है और मैं ही मेरा हूँ।''

व्याख्या - यहाँ स्व-पर के भेद भाव को दृढ़ करते हुए हुए आत्मा भावना करता है। मैं किसी भी पर-पदार्थरूप नहीं हूँ; कोई परपदार्थ मुझ रूप नहीं है; मैं पर-पदार्थ कोई संबंधी नहीं हूँ, न पर-पदार्थ मेरा कोई संबंधी है। वस्तुतः पर-पदार्थ पर ही है, मैं मैं ही हूँ; पर पदार्थ परका संबंधी है, मैं ही मेरा संबंधी हूँ।

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनम्।

अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः।। (149)

'शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ; (क्योंकि) **मैं चेतन हूँ शरीर अचेतन है, यह शरीर अनेकरूप है, मैं एकरूप हूँ, यह क्षयी (नाशवान्) है, मैं अक्षय (अविनाशी) हूँ।**

व्याख्या – यहाँ शरीर से आत्मा के भिन्नत्व की भावना की गयी है और उसके मुख्य तीन रूपों को लिया गया है 1. चेतन-अचेतन का भेद, 2. एक अनेकका भेद और 3 क्षयी-अक्षयीका भेद। इन तीनों भेदों को अनेक प्रकार से अनुभव में लाया जाता है। आत्मा चेतन है-ज्ञान-स्वरूप है, शरीर अचेतन है-ज्ञान-रहित जड़रूप है; शरीर अनेकरूप है- अनेक ऐसे पदार्थों तथा अंगों के संयोग से बना है, जिन्हें भिन्न किया जा सकता है, आत्मा वस्तुतः अपने व्यक्ति की दृष्टि से एक है, जिसमें किसी पदार्थ का मिश्रण नहीं है और न जिसका कोई भेद अथवा खंड किया जा सकता है; शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता रहता है- यदि एक दो दिन भी भोजनादिक न मिले तो स्पष्ट क्षीण दिखायी पड़ता है, जबकि आत्मा क्षयरहित है- अविनाशी है, कोई भी प्रदेश कभी उससे जुदा नहीं होता, भले ही भवांतर-ग्रहणादिके समय उसमें संकोच-विस्तार होता रहे और ज्ञानादिक गुणों पर आवरण आता रहे; परंतु वे गुण कभी आत्मा भिन्न नहीं होते।

अचेतन भवेन्नाऽहं नाऽहमप्यस्म्यचेतनम्।

ज्ञानात्माऽहं न मे कश्चिन्नाऽहमन्यस्य कस्यचित्।। (150)

'अचेतन मैं (आत्मा) नहीं होता : न मैं अचेतन होता हूँ; मैं ज्ञानस्वरूप हूँ; मेरा कोई नही हैं, न मैं किसी दूसरे का हूँ।''

व्याख्या – यहाँ आत्मा यह भावना करता है कि कोई भी अचेतन पदार्थ कभी आत्मा (मैं) नहीं बनता और न आत्मा (मैं) कभी किसी अचेतन पदार्थ के रूप में परिणमन करता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, दूसरा कोई भी पदार्थ उसका अपना नहीं और न वह किसी दूसरे पदार्थ का कोई अंग अथवा संबंधी है।

यहाँ तथा आगे पीछे जहाँ भी अहं (मैं) शब्द का प्रयोग हुआ है वह सब आत्मा का वाचक है।

योऽत्र स्व-स्वामि-सम्बन्धी ममाऽभूद्वपुषा सह।
यस्त्वेकत्व-भ्रमः सोऽपि परस्मान्न स्वरूपतः।। (151)

इस संसार में मेरा शरीर के साथ जो स्व-स्वामि-संबंध हुआ है शरीर मेरा स्व और मैं उसका स्वामी बना हूँ **तथा दोनों में एकत्व का जो भ्रम है वह सब भी परके निमित्त से है, स्वरूप से नहीं।'**

व्याख्या - यहाँ परस्मात् पद के द्वारा जिस पर निमित्त का उल्लेख है वह नामकर्मादिक के रूप में अवस्थित है, जिसने शरीर तथा उसके अंगोपांगादि की रचना होकर आत्मा के साथ उसका संबंध जुड़ता है और जिससे शरीर तथा आत्मा में एकत्व का भ्रम होता है वह दृष्टि-विकारोत्पादक दर्शनमोहनीय कर्म है।

इस पर निमित्त की दृष्टि से ही व्यवहारनय द्वारा यह कहने में आता है कि शरीर मेरा है। अन्यथा आत्मा के स्वरूप की दृष्टि से शरीर आत्मा का कोई नहीं और न वस्तुतः उसके साथ एकमेकरूप तादात्म्य-संबंध को ही प्राप्त है-मात्र कर्मों के निमित्त से संयोग-संबंध को लिए हुए है, जिसका वियोग अवश्यभावी है। यह सब इस श्रौती भावना में आत्मा चिंतन करता है और इसके द्वारा शरीर के साथ स्व-स्वामि संबंध तथा एकत्व के भ्रम को दूर भगाता है।

जीवादि-द्रव्य-यथात्म्य ज्ञानात्मकमिहाऽऽमना।
पश्यन्नात्मन्यथाऽऽमानमुदासीनोऽस्मि वस्तुषु।। (152)

मैं इस संसार में जीवादि-द्रव्यों की यथार्थताके ज्ञानस्वरूप आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में देखता हुआ (अन्य) वस्तुओं में उदासीन रहता हूँ- उनमें मेरा कोई प्रकार का रागादिक भाव नहीं है।''

व्याख्या- इस श्रौती भावना में आत्मा अपने में स्थित हुआ अपने द्वारा अपने आपको इस रूप में देखता है कि वह जीवादि द्रव्यों के यथार्थ ज्ञान को लिये हुए है और इस प्रकार देखता हुआ वह अन्य पदार्थों से स्वतः विरक्तिको प्राप्त होता है- उनमें उसकी रुचि नहीं रहती है।

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाऽप्युदासीनः।
स्वोपात्त-देहमात्रस्ततः परं गगनवदमूर्तः।। (153)

'मैं सदा सत् द्रव्य हूँ, चिद्रूप हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, उदासीन हूँ, स्वगृहीत देहपरिणाम हूँ और शरीर त्याग के पश्चात् आकाश के समान अमूर्तिक हूँ।'

व्याख्या - इस श्रौती भावना में आत्मा अपने को सद्द्रव्य, चिद् द्रव्य और उदासीन रूप कैसे अनुभव करता है, इसका स्पष्टीकरण अगले पद्यों में किया गया है। ज्ञाता-दृष्टा पदों का वाच्य स्पष्ट है। **स्वोपात्तदेहमात्रः** इस पद के द्वारा आत्मा के आकार की सूचना की गयी है। संसार-अवस्था में आत्मा जिस शरीर को ग्रहण करता है उस शरीर के आकार-प्रमाण आत्मा का आकार रहता है। शरीर का संबंध सर्वथा छूट जाने पर मुक्ति-अवस्था में यद्यपि आत्मा आकाश के समान अमूर्तिक हो जाता है, परंतु आकाश के समान अनंतप्रदेशी नहीं हो जाता, उसके प्रदेशों की संख्या असंख्यात ही रहती है और वे असंख्यात प्रदेश भी सारे लोकाकाश में व्याप्त होकर लोकाकाशरूप आकार नहीं बनाते। किंतु आकार आत्मा का प्रायः अंतिम शरीर के आकार-जितना ही रहता है; क्योंकि आत्मप्रदेशों में संकोच और विस्तार कर्म के निमित्त से होता था, जब कर्मों का अस्तित्व नहीं रहता, तब आत्मा के प्रदेशों का संकोच और विस्तार सदा के लिए रुक जाता है।

सन्नेवाऽहं सदाऽप्यस्मि स्वरूपादि-चतुष्टयात्।
असन्नेवाऽस्मि चात्यन्तं पररूपाद्यपेक्षया।। (154)

स्वरूपादि चतुष्टयकी दृष्टि से-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से **मैं सदा सत्रूप ही हूँ और पर-स्वरूपादिकी दृष्टि से**-पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से **अत्यंत असत्रूप ही हूँ।**

व्याख्या-पिछले पद्य में **सद्द्रव्यमस्मि** यह जो भावनावाक्य दिया है उसी के स्पष्टीकरण रूप में पद्य का अवतार हुआ है। यहाँ आत्मद्रव्य सत्रूप ही नही, किंतु असत्रूप भी है, इसका सहेतुक प्रतिपादन किया है। लिखा है कि -आत्मा स्वद्रव्य क्षेत्र-काल भाव की अपेक्षा सत्रूप ही है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा असत्रूप ही है। इस कथन का पूर्व कथन के साथ कोई विरोध नहीं है; क्योंकि आत्मा को सत् और असत् दोनों रूप बतलाना अपेक्षा भेद को लिये हुए है- एक ही अपेक्षा से सत् तथा असत् रूप नहीं कहा गया है। वास्तव में इस सत्

(अस्ति) और असत् (नास्ति) का परस्पर अविनाभाव संबंध है- एक के विना दूसरे का अस्तित्व बनता नहीं। इसी से सत् के स्पष्टीकरण में उसके सत्-असत् दोनों रूपों को दिखाया गया है।

यहाँ सत् के विषय में स्वामी समंतभद्र की **प्रतिक्षण-ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मक-दृष्टि से** भिन्न उन्हीं की स्वद्रव्यादि-चतुष्टय की दृष्टि को अपनाया गया है; जैसा कि उनके देवागमगत निम्न वाक्य से स्पष्ट जाना जाता है-

सदेव सर्व को नेच्छेत्स्वरूपादि-चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।। (15)

इसमें बतलाया है कि सर्वद्रव्य स्वरूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से-स्वद्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से-सत्रूप ही हैं और पररूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से परद्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की विवक्षा से-असत्रूप ही हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो सत्-असत् दोनों में किसी की भी व्यवस्था नहीं बन सकेगी; क्योंकि दोनों परस्पर अविनाभाव-संबंध को लिये हुए हैं- एकके बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं बनता। स्वरूपादि-चतुष्टरूप सत्द्रव्य यदि परद्रव्यादि-चतुष्टय के अभाव को अपने में लिये हुए नहीं है तो उसके स्वरूप की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं बनती और न तब संसार में किसी वस्तु की व्यवस्था ही बन सकती है।

यन्न चेतयते किञ्चिन्नाऽचेतयेत् किञ्चन।
यच्चेतयिष्यते नैव तच्छरीरादि नाऽस्म्यहम्।। (155)

जो कुछ चेतता-जानता नहीं, जिसने कुछ चेता-जाना नहीं और जो कुछ चेतेगा- जानेगा नहीं वह शरीरादिक मैं नहीं हूँ।'

व्याख्या-पिछले पद्य (153) में चिदहं और उससे कुछ पूर्ववर्ती पद्य (159) में चिदहं तदचेतनम् इन पदों का जो प्रयोग हुआ है, उन्हीं के स्पष्टीकरण को लिये हुए यह पद्य है। इसमें शरीर को लक्ष्य करके कहा गया है कि वर्तमान में वह कुछ जानता नहीं, भूतकाल में उसने कभी कुछ जाना नहीं और भविष्य में वह कभी कुछ जानेगा नहीं, ऐसी जिसकी वस्तुस्थिति है वह शरीर मैं (आत्मा) नहीं हूँ। आदि शब्द से तत्सादृश और भी जितने अचेतन (जड़) पदार्थ हैं उनरूप भी मैं (आत्मा) नहीं हूँ।

यदचेतत्तथा पूर्वं चेतिष्यति यदन्यथा।

चेततीत्थं यदत्राऽद्य तच्चिद्द्रव्यं समस्म्यहम्।। (156)

'जिसने पहले उस प्रकार से चेता-जाना है, जो (भविष्य में) अन्य प्रकार से चेतेगा-जानेगा और जो आज यहाँ इस प्रकार से चेतता-जानता है वह सम्यक् चेतनात्मक द्रव्य मैं हूँ।

व्याख्या- यहाँ चिद्द्रव्य की सत्दृष्टि को प्रधान कर कहा गया है कि जिसने भूतकाल में उस प्रकार जाना, जो भविष्य में अन्य प्रकार जानेगा और जो वर्तमान में इस प्रकार जान रहा है वह चेतनद्रव्य मैं (आत्मा) हूँ। चेतना की धारा आत्मा में शाश्वत चलती है, भले ही आवरणों के कारण वह कहीं और कभी अल्पाधिक रूप में दब जाय; परंतु उसका अभाव किसी समय भी नहीं होता। कुछ प्रदेश तो उसमें ऐसे हैं जो सदा अनावरण ही बने रहते हैं और इसीलिए आत्मा चित्स्वरूप की दृष्टि से सदा चित्रूप ही है, इसी आशय को लेकर यहाँ उक्त प्रकार की भावना की गयी है।

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत्।

नाऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता।। (157)

'यह दृश्य जगत् न तो स्वयं- स्वभाव से इष्ट है- इच्छा तथा राग का विषय है, **न द्विष्ट है** अनिष्ट अथवा द्वेष का विषय है, **किंतु उपेक्ष्य है** उपेक्षा का विषय है। **मैं स्वयं-स्वभाव से एष्टा-** इच्छा तथा राग करने वाला **नहीं हूँ; न द्वेष्टा-** द्वेष तथा अप्रीति करने वाला नहीं- **हूँ; किंतु उपेक्षित हूँ-** उपेक्षा करने वाला समवृत्ति हूँ।'

व्याख्या- पिछले एक पद्य (152) में आत्माने अपने ज्ञानात्मक स्वरूप को देखते हुए जो परद्रव्यों से उदासीन होने की भावना की है उसी के स्पष्टीकरण को लिये हुए यह भावना-पद्य है। इसमें वस्तु-स्वभाव की दृष्टि को लेकर यह भावना की गयी है कि यह दृश्य जगत्- जगत् का प्रत्येक पदार्थ-न तो स्वयं स्वभाव से इष्ट है और न अनिष्ट। यदि कोई भी पदार्थ स्वभाव से सर्वथा इष्ट या अनिष्ट हो तो वह सबके लिए और सदा के लिए इष्ट या अनिष्ट होना चाहिए; परंतु ऐसा नहीं है। एक ही पदार्थ जो एक प्राणी

के लिए इष्ट है वह दूसरे के लिए अनिष्ट है; एक रूप में जो इष्ट है दूसरे रूप में वह अनिष्ट है; एक काल में जो इष्ट होता है दूसरे काल में वही अनिष्ट हो जाता है; एक क्षेत्र में जिसे अच्छा समझा जाता है दूसरे क्षेत्र में वही बुरा माना जाता है; एक भाव से जिसे इष्ट किया जाता है दूसरे भाव से उसी को अनिष्ट कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में कोई भी वस्तु स्वरूप से इष्ट या अनिष्ट नहीं ठहरती। इष्टता और अनिष्टता की यह सब कल्पना प्राणियों के अपने-अपने तात्कालिक राग-द्वेष अथवा लौकिक प्रयोजनादि के अधीन है। यदि ये जगत् के क्षणभंगुर पदार्थ किसी के राग-द्वेष के विषय न बनें तो स्वयं उपेक्षा के विषय ही रह जाते हैं।

इसी तरह आत्मा भी स्वभाव से राग करने वाला (एष्टा) अथवा द्वेष करने वाला (द्वेष्टा) नहीं है। उसमें राग-द्वेष की यह कल्पना तथा विभाव-परिणति परके निमित्त से अथवा कर्माश्रित है। उसके दूर होते ही आत्मा स्वयं उपेक्षित अथवा वीतरागी के रूप में स्थित होता है। उसी रूप में स्थित होने की यहाँ भावना की गयी है।

मत्तः कायादयो भिन्नास्तेभ्योऽहमपि तत्त्वतः।
नऽहमेषां किमप्यस्मि ममाऽप्येते न किश्चन।। (158)

वस्तुतः ये शरीरादिक मुझसे भिन्न हैं, मैं भी इनसे भिन्न हूँ। मैं इन शरीरादिक का कुछ भी (संबंधी) नहीं हूँ और न ये मेरे कुछ होते हैं।

व्याख्या-यहाँ कायादयः पद में प्रयुक्त आदि शब्द शरीर से संबंधित तथा असंबंधित सभी बाह्य पदार्थों का वाचक हैं और इसलिए उसमें माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, दूसरे सगे संबंधी, जमीन, मकान, दुकान, घर-गृहस्थी आदि का सामान, बाग-बगीचे, धन-धान्य, वस्त्र-आभूषण, बर्तन-भांडे, पालतू-अपालतू जंतु और जगत् के दूसरे सभी पदार्थ शामिल हैं।

सभी पर-पदार्थों से ममत्व को हटाने की इस भावना में यह कहकर व्यवस्था की गयी है कि यथार्थता अथवा वस्तु-स्वरूप की दृष्टि से शरीर सहित ये सब पदार्थ मुझसे भिन्न हैं, मैं इनसे भिन्न हूँ, मैं इनका कुछ नहीं लगता और न ये मेरे कुछ लगते हैं।

श्रौती भावना का उपसंहार

एवं सम्यग्विनिश्चत्य स्वात्मानं भिन्नमन्यतः।
विधाय तन्मयं भावं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। (159)

इस प्रकार (भावनाकार) अपने आत्मा को अन्य शरीरादिक से वस्तुतः भिन्न निश्चित करके और उसमें तन्मय होकर अन्य कुछ भी चिंतन नहीं करे।

इस प्रकार भावना द्वारा स्वात्मा को अन्य सब पदार्थों से वस्तुतः भिन्न निश्चित करके और उसी में लीन होकर दूसरे किसी भी पदार्थ की चिंता न करके चिंता के अभाव को प्राप्त होवें।

चिंता का अभाव तुच्छ न होकर स्वसंवेदनरूप है

चिन्ताऽभावो न जैनानां तुच्छो मिथ्यादृशामिव।
दृग्बोध-साम्य-रूपस्य स्वस्य संवेदनं हि सः।। (160)

(यह) चिंता का अभाव जैनियों के (मत में) मिथ्यादृष्टियों के समान तुच्छ अभाव नहीं है; क्योंकि वह चिंता का अभाव वस्तुतः दर्शन, ज्ञान और समतारूप आत्मा के संवेदनरूप है।'

व्याख्या-जैन दर्शन में अभावकों भी वस्तु धर्म माना है, जो कि वस्तुव्यवस्था के अंगरूप है। एक वस्तु में यदि दूसरी वस्तु का अभाव स्वीकार न किया जाय तो किसी भी वस्तु की कोई व्यवस्था नहीं बनती। इस दृष्टि से अभाव सर्वथा असत्रूप तुच्छ नहीं है, जिससे चिंता के अभावरूप होने से ध्यान को ही असत् कह दिया जाय। वह अन्य चिंताओं के अभाव की दृष्टि से असत् होते हुए स्वात्मचिंतात्मक-स्वसंवेदन की दृष्टि से असत् नहीं है और इसलिए तुच्छ नहीं है। ध्यान के लक्षण में प्रयुक्त निरोध अथवा रोध शब्द का अभाव अर्थ करने पर उसका यही आशय लिया जाना चाहिए, न कि सर्वथा चिंता के अभावरूप, जिससे ध्यान का ही अभाव ठहरे। अन्य सब चिंताओं के अभाव के बिना एकचिंतात्मक जो आत्मध्यान है वह नहीं बनता।

स्वसंवेदन का लक्षण

वेद्यत्व वेदकत्वं च यस्त्वस्य स्वेन योगिनः।
तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम्।। (161)

'योगी के अपने आत्मा का जो अपने द्वारा वेद्यपना और वेदकपना है उसको स्वसंवेदन कहते हैं; जो कि आत्मा का दर्शनरूप अनुभव है।'

व्याख्या–स्वसंवेदन आत्मा के उस साक्षात् दर्शनरूप अनुभव का नाम है जिसमें योगी आत्मा स्वयं ही ज्ञेय तथा ज्ञायकभाव को प्राप्त होता है अपने को स्वयं ही जानता, देखता अथवा अनुभव करता है। इससे स्वसंवेदन, आत्मानुभवन और आत्मदर्शन ये तीनों वस्तुतः एक ही अर्थ के वाचक हैं, जिनका यहाँ स्पष्टीकरण की दृष्टि से एकत्र संग्रह किया गया है।

स्वसंवेदन कोई करणांतर नहीं होता

स्व–पर–ज्ञाप्तिरूपत्वान्न तस्य करणान्तरम्।

ततश्चिन्तां परित्यज्य स्वसंवित्यैव वेद्यताम्।। (162)

'स्व-परकी जानकारी रूप होने से उस स्वसंवेदन अथवा स्वानुभव का आत्मा से भिन्न कोई दूसरा करण-ज्ञप्तिक्रिया की निष्पत्ति में साधकतम-नहीं होता। अतः चिंता का परित्याग कर स्वसंवित्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिए।'

व्याख्या–यहाँ यह बतलाया है कि स्वसंवेदन में ज्ञप्ति क्रिया की निष्पत्ति के लिए दूसरा कोई करण अथवा साधकतम नहीं होता। क्योंकि वह स्वयं स्व-पर-ज्ञप्तिरूप है। अतः करणांतर की चिंता को छोड़कर स्वज्ञप्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिए।

स्वात्मा के द्वारा संवेद्य आत्मस्वरूप

दृग्बोध–साम्यरूपत्वाज्जानन्पश्यन्नुदासिता।

चित्सामान्य–विशेषात्मा–स्वात्मनैवाऽनुभूयताम्।। (163)

'दर्शन, ज्ञान और समतारूप होने से देखता, जानता और वीतरागता को धारण करता हुआ जो सामान्य विशेष ज्ञानरूप अथवा ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोगरूप आत्मा है उसे स्वात्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए।'

व्याख्या–यहाँ जिस आत्मा को अपने आत्मा के द्वारा ही अनुभव करने की बात कही गयी है उसके स्वरूप-विषय में यह सूचना की गयी है कि वह दर्शन, ज्ञान और समतारूप होने से ज्ञाता, दृष्टा तथा उपेक्षिता (वीतराग) के रूप में स्थित है और चैतन्य के सामान्य तथा विशेष दोनों रूपों को दर्शन ज्ञान को लिये हुए है।

कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहम्।

ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना।। (164)

'समस्त कर्मज भावों से सदा भिन्न ऐसे ज्ञानस्वभाव एवं उदासीन (वीतराग) आपको आत्मा के द्वारा देखना चाहिए।'

व्याख्या-यहाँ भी स्वसंवेदन के विषयभूत आत्मा के स्वरूप की कुछ सूचना करते हुए उसे जिस रूप में देखने की प्रेरणा की गयी है वह स्वरूप यह है कि आत्मा सदा कर्मजनित समस्त विभाव भावों से भिन्न है-कभी उनसे तादात्म्य को प्राप्त नहीं होता है-ज्ञानस्वभाव है और उदासीन है-वीतरागतामय उपेक्षा भाव को लिये हुए हैं।

यस्मिन्मिथ्याभिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन चोज्झितम्।

तन्मध्यस्थं निजं रूपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयम्।। (165)

'जो मिथ्याश्रद्धान तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और राग-द्वेष से रहित मध्यस्थ है उस निजस्वरूप को स्वयं अपने आत्मा में अनुभव करना चाहिए।'

व्याख्या-यहाँ भी स्वसंवेद्य आत्मा के स्वरूप की कुछ सूचना की गयी है और यह बतलाया गया है कि वह मिथ्यादर्शन तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और अपने मध्यस्थ रूप को लिये हुए है, जो कि समता, उपेक्षा अथवा वीतरागतामय है। साथ ही इस रूप आत्मा को स्वयं स्वात्मा में देखने-जानने की प्रेरणा की गयी है।

इंद्रियज्ञान तथा मन के द्वारा आत्मा दृश्य नहीं

न हीन्दियाधिया दृश्यं रूपादिरहितत्वतः।

वितर्कास्तन्न पश्यन्ति ते ह्यविस्पष्ट-तर्कणाः।। (166)

'रूपादिसे रहित होने के कारण वह आत्मरूप इंदियज्ञान से दिखायी देने वाला नहीं है, तर्क करने वाले उसे देखते नहीं। वे अपनी तर्कणा में विशेषरूप से स्पष्ट नहीं हो पाते-उनके तर्क अस्पष्ट बने रहते हैं।'

व्याख्या-पिछले पद्य (164) में आत्मा को आत्मा के द्वारा देखने की जो प्रेरणा की गयी है, उसे यहाँ स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि वह इंद्रियज्ञान के द्वारा दृश्य नहीं है, क्योंकि इंद्रियाँ वर्ण, रस, गंध और स्पर्शविशिष्ट पदार्थ को ही देखती है और आत्मा इन वर्णादिगुणों से रहित है।

अनुमानादि द्वारा तर्क करने वाले भी उसे देख नहीं पाते; (पराश्रित होने से) अपनी तर्कणा में वे सदा अस्पष्ट बने रहते हैं। वितर्क श्रुत को कहते हैं और श्रुत अनिंद्रिय (मन) का विषय है। इससे मन भी आत्मा को देख नहीं पाता, यह यहाँ फलितार्थ हुआ।

इंद्रिय-मन का व्यापार रुकने पर स्वसंवित्ति द्वारा आत्मदर्शन

उभयस्मिन्निरुद्धे तु स्याद्विस्पष्टमतीन्द्रियम्।
स्वसंवेद्यं ही तद्रूपं स्वसंवित्यैव दृश्यताम्।। (167)

'इंद्रिय और मन दोनों के निरुद्ध होने पर अतीन्द्रिय ज्ञान विशेष रूप स्पष्ट होता है (अतः) अपना वह रूप जो स्वसंवेदन के गोचर है उसे स्वसंवेदन के द्वारा ही देखना चाहिए।'

व्याख्या-जब इंद्रिय और मन दोनों के द्वारा आत्मा दृश्य नहीं है तब उसे किसके द्वारा देखा जाय? इस प्रश्न को लक्ष्य में लेकर ही प्रस्तुत पद्य का अवतर हुआ जान पड़ता है। इसमें बतलाया है कि जब इंद्रिय और मन दोनों का व्यापार निरुद्ध होता है-रोक लिया जाता है-तब अतीन्द्रिय ज्ञान प्रकट होता है, जो कि अपने में विशेषतः स्पष्टता अथवा विशदता को लिये रहता है। उस ज्ञानरूप स्वसंवित्तिके द्वारा ही उस आत्मस्वरूप को देखना चाहिए जो कि स्वसंवेद्य है-अन्य किसी के द्वारा वह जाना नहीं जाता। इससे आत्मदर्शन के लिए इंद्रिय और मन के व्यापार को रोकने की बड़ी जरूरत है और वह तभी रुक सकता है जबकि इंद्रियाँ तथा मन को जीतकर उन्हें अपने अधीन किया जाय।

स्वसंवित्ति का स्पष्टीकरण

वपुषोऽप्रतिभासेऽपि स्वातन्त्र्येन चकासती।
चेतना ज्ञानरूपेय स्वयं दृश्यत एवं हि।। (168)

'स्वतंत्रता से चमकती हुई यह ज्ञानरूपा चेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वयं ही दिखायी पड़ती है।'

व्याख्या-यहाँ, पूर्वपद्य में उल्लिखित स्वसंवित्ति को स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि यह संवित्ति ज्ञानरूप चेतना है जो कि परकी अपेक्षा न रखते हुए स्वतंत्रता के साथ चमकती हुई स्वयं ही दिखाई पड़ती है; शरीर रूप से उसका कोई प्रतिभास नहीं होता।

समाधि में आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव न करने वाला योगी आत्मध्यानी नहीं

समाधिस्थेन यद्यात्मा बोधात्मा नाऽनुभूयते।

तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्च्छावन्मोह एव सः।। (169)

'समाधि में स्थित योगी यदि आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव नहीं करता तो समझना चाहिए उस समय उसके आत्मध्यान नहीं, किंतु मूर्च्छावाला मोह ही है।'

व्याख्या–यहाँ उस योगी के ध्यान को आत्मध्यान न बतलाकर मूर्च्छारूप मोह बतलाया है जो समाधि में स्थित होकर भी आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव नहीं करता। और इससे यह साफ फलित होता है कि जो योगी वस्तुतः समाधि में स्थित होगा वह आत्मा को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव करेगा, जिसे ऐसा अनुभव नहीं होगा उसकी समाधि को समाधि न समझकर मूर्च्छावान् मोह समझना होगा।

आत्मानुभव का फल

तमेवानुभवंश्चायमेकग्यं परमृच्छति।

तथाऽऽत्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम्।। (170)

'उस ज्ञानस्वरूप आत्मा को अनुभव में लाता हुआ यह समाधिस्थ योगी परम-एकाग्रता को प्राप्त होता है तथा उस स्वाधीन आनंद का अनुभव करता है जो कि वचन के अगोचर है।'

व्याख्या–यहाँ, आत्मानुभव के फल को बतलाते हुए लिखा है कि जो समाधिस्थ योगी उस ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करता है वह परम एकाग्रता को और उस स्वाधीन सुख को प्राप्त होता है जिसे वाणी के द्वारा नहीं कह सकते। इससे स्पष्ट है कि आत्म दर्शन होने पर ध्यान की एकाग्रता बढ़ जाती है और उससे जिस स्वभाविक आत्मीय आनंद की प्राप्ति होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

स्वरूपनिष्ठ योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकम्पते।

तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्रयमुज्झति।। (171)

'जिस प्रकार पवनरहित स्थान में स्थित दीपक नहीं काँपता, उसी प्रकार अपने स्वरूप में स्थित योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता।'

स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों का कुछ भी प्रतिभास नहीं होता

तदा च परमैकाग्रयाद बहिरर्थेषु सत्स्वपि।

अन्यन्न किञ्चनाऽऽभाति स्वमेवात्मनि पश्चतः।। (172)

'उस समाधिकाल में स्वात्मा में देखने वाले योगी की परम एकाग्रता के कारण बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी उसे आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता।'

अन्यशून्य भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता

अत एवाऽन्य-शून्योऽपि नाऽऽत्मा शून्यः स्वरूपतः।

शून्याऽशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवोपलभ्यते।। (173)

'इसलिए अन्य बाह्य पदार्थों से शून्य हुआ भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता-अपने निजरूप को साथ में लिये रहता है। **आत्मा का यह शून्यता और अशून्यतामय स्वभाव आत्मा के द्वारा ही उपलब्ध होता है**-दूसरे किसी बाह्य पदार्थ के द्वारा नहीं।'

व्याख्या-पिछले पद्य में जो यह बात कही गयी है कि स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी अन्य कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता उसका फलितार्थ इतना ही है कि वह उस समय अन्य से-दूसरे किसी भी पदार्थ के संपर्क से -शून्य होता है; परन्तु अन्य से शून्य होता हुआ भी वह स्वरूप से शून्य नहीं होता-स्वरूप को तो वह तल्लीनता के साथ देख ही रहा है। इस तरह आत्मा उस समय शून्याशून्य स्वभाव को प्राप्त होता है-परद्रव्यादि चतुष्टय के अभाव की अपेक्षा शून्य और स्वद्रव्यादि चतुष्टय के सद्भाव की अपेक्षा अशून्य होता है, और यह शून्याशून्य स्वभाव भी आत्मा के द्वारा ही उपलक्षित होता है-स्वसंवेद्य है।

आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय: गुणस्थान

(भव्यात्मा ही आध्यात्मिक क्रमविकास से बनते हैं अन्तरात्मा से परमात्मा)

(चाल: 1.आत्मशक्ति... 2.क्या मिलिए...)

आत्मा से परमात्मा बनने हेतु, गुणस्थान आरोहण है प्रकृष्ट सेतु।
निकट भव्य जीव जब बनते सुदृष्टि, आत्मा से परमात्मा बनने की होती प्रवृत्ति।।
पंचलब्धियों को पाकर निकट भव्य, अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व को करते दूर।
जिससे भव्य बनते सुदृष्टि, सत्यासत्य को पाते आध्यात्मिक दृष्टि।।
तत्वार्थश्रद्धान से होता आत्मश्रद्धान, बहिरात्मा से बनते अन्तरात्मा महान्।
कर्मफलचेतना व कर्मचेतना परे, ज्ञानचेतना प्रारंभ करे अन्तरात्मा।। (1)
उत्तरोत्तर आत्मविशुद्धि द्वारा, अप्रत्याख्यान क्रोधादि होते उपशमादि।
जिससे बनते व्रती पंचमगुणस्थान में, प्रथम प्रतिमा से ले ऐल्लक तक।।
श्रावक अनन्तर बनते वे श्रमण, प्रत्याख्यान के उपशमादि के कारण।
ध्यान-अध्ययन व समता-शान्ति से, आत्मशक्ति बढ़ाते आत्मशुद्धि से।। (2)
संज्वलन व नो कषाय करते क्षीण; शुभध्यान से शुक्लध्यान होता प्रारंभ।
छट्टा से सप्तम व अष्टम गुणस्थान, अष्टम से श्रेणीआरोहण प्रारंभ।।
श्रेणी आरोहण से शुक्लध्यान में वृद्धि, जिससे बढ़ती जाती आत्मविशुद्धि।
जिससे आत्मशक्ति से कर्म नाशते, क्षपक श्रेणी आरोहण से घाती नाशते।। (3)
जिससे अनन्त चतुष्टय प्राप्त करते; सयोग केवली परमात्मा बनते।
योगनिरोध से अयोगी-शैलेश बनते, अघातीनाश से निकल परमात्मा बनते।।
जिससे वे शुद्ध-बुद्ध-आनन्द होते, अष्टगुण प्रमुख अनन्त गुणी होते।
अक्षय अनन्त काल तक परमात्मा रहते, कर्मक्षय से पुनः अशुद्ध न होते।। (4)
आत्मा से परमात्मा बनने के ये उपाय, बीज से यथा बने वृक्ष विशाल।
धर्म पालने का यह प्रमुख ध्येय, परमात्मा बनना 'कनक' का परम ध्येय।।
परमात्मा द्वारा उपदिष्ट ये सत्य; सुदृष्टि भव्य ये मानते तथ्य।
कुज्ञानी मोही द्वारा अज्ञात सत्य, आगम-अनुभव से लिखा ये तथ्य।। (5)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-25/12/2020, प्रात: 7.34

(यह कविता आर्यिका सुनिधिमती के कारण भी बनी)

संदर्भ-

मिथ्यादृष्टि 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हंत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते है तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्‌भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

परमात्मादेव अपने देह में भी

एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कल देउ।
देहहँ मज्झहिं सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ।। (106) योग.
उक्त लक्षणों से लक्षित जो निर्मल परमात्मा देव।
देहों के मध्य में वही निवास करे उन में होता भेद।।

बहिरात्मपना त्याग से अन्तरात्मा बनो

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त-र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः।। (15) स.तं.

संसार दुःख का मूल कारण, देह को ही आत्मा मानना।
ऐसी बुद्धि को त्याग करके, इन्द्रिय संयम से बनो अन्तरात्मा।।
देह सहित होने से ही जीव, करता है अहंकार-ममकार।
उसके कारण बाह्य वस्तु में, करता है राग-द्वेष-विकार।। (1)
शरीराश्रित ही है जन्म-मरण, भूख-प्यास व जरा-रोग।
काम-भोग, आकर्षण-विकर्षण, जिससे बन्धते नाना कर्म।।
इससे होता है संसार भ्रमण, जिससे भोगता दुःख-दैन्य।
अतएव देहात्मबुद्धि त्यागकर, इन्द्रिय संयम से भोगो आत्म वैभव।। (2)

आत्मा ही परमात्मा बनता

(स्व-आत्मा की उपासना से आत्मा बनता है परमात्मा)

निर्ममः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।। (6, समाधितंत्र)

निर्मल है केवल शुद्ध पृथक् है प्रभु व अव्यय।
परमेष्ठी व पर-आत्मा है, परमात्मा व ईश्वर जिन।।

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।। (31)

जो परमात्मा है वह ही मैं हूँ, जो मैं हूँ वह ही परम तत्त्व।
मेरे द्वारा ही मेरी उपासना, नहीं अन्य है कुछ भी स्थिति।।

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वात्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरूः।। (98)

आत्मा के द्वारा आत्मा (की) उपासना से, होता है आत्मा परमात्मा।
अग्नि उत्पन्न यथा वृक्ष मन्थन से, आत्म मन्थन से तथा परमात्मा।।

बीज से वृक्ष यथा बनता है, अथवा भ्रूण से बने मानव।
पानी से यथा बनता है बर्फ, तथाहि आत्मा से परमात्मा।। (1)

अशुद्ध सोना ही बनता है शुद्ध, यथा ताप-ताड़न से।
तथाहि आत्मा ही परमात्मा बनता, आध्यात्मिक शुद्धि प्रक्रिया से।। (2)

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वारा, आत्मा बनता है परमात्मा।
पंच-महाव्रत समिति-पंच व, उत्तम दशविध धर्म द्वारा।। (3)

ध्यान-अध्ययन अनुप्रेक्षा द्वारा, आत्मा ही करता स्व-उपासना।
समता सहिष्णुता वीरागता द्वारा, आत्मा ही करता है आत्म-पूजन।। (4)

आत्मविशुद्धि से गुणस्थान चढ़ता, उत्तरोत्तर से बने परमात्मा।
बहिरात्मा से बने अंतर आत्मा, कर्मनाश से बने परमात्मा।। (5)

ऐसा आत्मा ही बनता परमात्मा, जिसे कहते मोक्षावस्था।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' सतत करता (है) स्वात्म-उपासना/(पूजा)।। (6)

शरीर आदि भौतिकता से परे है जीवों का स्वरूप

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किंचित्, सौऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। (50, इष्टोपदेश)

जीव अन्य है पुद्गल भी अन्य, यह है तत्त्व संग्रह।
जो कुछ अन्य कथन होता वह है इसका विस्तार।।

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। (13, द्रव्यसंग्रह)

मार्गणा चौदह गुणस्थान चौदह, सहित है संसारी जीव।
यह वर्णन है अशुद्धनय से, शुद्धनय से सभी (होते) शुद्ध जीव।। (1)

जीव है चेतन अमूर्तिकमय जो है सच्चिदानन्द।
स्वयंभू सनातन स्वंयपूर्ण जो, अनादि-अनंत।। (2)

अनादिकाल से जीव बंधे हैं, पुद्गल कर्मों के साथ।
जिससे जीव अशुद्ध होकर, बने है भौतिक सम।। (3)

राग-द्वेष-मोह बंध के कारण, पुद्गल बने द्रव्यकर्म।
द्रव्यकर्म के उदय से जीव, बने हैं संसारी जीव।। (4)

कर्म उदय से संसारी जीवों के होते (है), चौदह मार्गणा-गुणस्थान।
तन-मन-इन्द्रिय आदि बनते, पाते हैं जन्म व मरण।। (5)

क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-काम (आदि), उत्पन्न होते भाव कर्म।
भाव कर्म भी शुद्धनय से, न होते हैं जीव-स्वभाव।। (6)

भाव कर्म के क्षीण होने से, होते हैं गुणस्थान क्रमशः।
तेरहवें गुणस्थान में नाश होते, घातीकर्म अंत में सम्पूर्ण कर्म।। (7)

सम्पूर्ण कर्म क्षय से होते है, जीव हैं सम्पूर्ण शुद्ध।
शुद्ध अवस्था ही हैं जीवों के, स्वरूप जो सिद्ध व बुद्ध।। (8)

शुद्ध अवस्था में नहीं होते हैं, मार्गणा व गुणस्थान।
तन-मन इन्द्रियादि न होते, न होते जन्म-मरण।। (9)

पाँचों इन्द्रियों के विषय भोग, तथाहि सत्ता-संपत्ति।

इसी से परे हैं जीवों का स्वरूप, जो है चिन्मयमूर्ति।। (10)

'सत्यशिवसुंदर' या 'सच्चिदानंद', यह है जीवों का स्वरूप।

स्वरूप प्राप्ति ही मोक्षावस्था, जो है 'कनक' की निज (शुद्ध) अवस्था।। (11)

वीतराग रत्नत्रय मोक्ष का ही कारण होता अन्य देवायु आदि का कारण नहीं होता है। जहाँ पर रत्नत्रय से देवायु आदि पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध होता है वहाँ शुभोपयोग का मिश्रण होना इसका कारण है अन्यथा रत्नत्रय मोक्ष के लिये ही कारण बनता है।

समीक्षाः-घी जले हुए घाव को सही करता है, भरता है, परन्तु वही घी जब अग्नि के सम्पर्क से गरम हो जाता है तो वह गरम घी जलाने लगता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि गरम घी में जो **अग्नि के सम्पर्क से उष्णता का मिश्रण हुआ है वही उष्णता जलाती है न कि घी जलाता है।** उसी प्रकार जिस अंश में रत्नत्रय में शुभोपयोग है उस अंश से पुण्य बन्ध होता है और जिस अंश में रत्नत्रय है उससे अबन्ध, अनास्रव, निर्जरा, मोक्ष होता है। इसका ही ग्रन्थकर्ता आगे वर्णन कर रहे हैं।

भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न कार्य होते

एकस्मिन् समवाय दत्यन्त-विरुद्ध कार्ययोरपि हि।

इह ददाति घृतमिति, यथा व्यवहारस्तादृशोऽपि रूढिमितः।। (221) पु.सि.

In one (thought activity), distinctly contradictory effects may exist simultaneously. Ordinarliy it is said that "Ghee burns' (although it is the heat transmitted in the Ghee which burns and not the Gheee itself). Similarly, it is so here, from the practical point of view.

उपर्युक्त (श्लोक-220) विषय को यहाँ पर दृष्टान्त के माध्यम से कथन कर रहे हैं। **एक वस्तु में समवाय से मिश्रण होने से अत्यन्त विरूद्ध शुभ-अशुभ रूप जो कार्य है वह भी एक साथ समवाय हो जाते है।** इस का उदाहरण यह है कि जिस प्रकार लोक में ''घी जलता है'' ऐसा व्यवहार होता है, उसी प्रकार यहाँ भी (कर्म बन्ध में) रूढ़ि को मानना चाहिए।

रत्नत्रयधारी मोक्षलाभ करता

सम्यक्त्व चारित्र, बोध लक्षणो मोक्षमार्ग इत्येषः।

मुख्योपचार रूपः प्रापयति परं पदं पुरुषम्।। (222)

This path of salvation, known as Right belief, knowledge and conduct combined, has a real and a practical aspect, it leads the soul to the highest stage.

मुख्य/निश्चय और उपचार/व्यवहार रूप से यह सम्यक्त्व चारित्र ज्ञान लक्षण मोक्षमार्ग से परमोत्कृष्ट स्थान स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

समीक्षाः-उपरोक्त नानाविध उदाहरण एवं कथन प्रणालियों से यह सिद्ध होता है कि रत्नत्रय परस्पर विरोधी या घातक नहीं है परन्तु परस्पर अनुपूरक परिपूरक तथा सहकारी हैं। क्योंकि सम्यक् दर्शन से ज्ञान में सम्यक्पना आता है सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान से चारित्र में सम्यक्त्वपना आता है तथा चारित्र दृढ़ एवं उत्तरोत्तर विशुद्ध होता है। सम्यक् दर्शन तो प्रासाद (भवन) के लिए नींव के समान आधारशिला है। बिना सम्यग्दर्शन के रत्नत्रय रूप प्रासाद नहीं टिक सकता है। नींव के बिना प्रासाद नहीं टिकने पर भी नींव ही प्रासाद नहीं है इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना रत्नत्रय रूप महल नहीं टिकने पर भी सम्यग्दर्शन ही रत्नत्रय नहीं है। सम्यग्ज्ञान दो कमरे के बीच स्थित देहली के ऊपर रखे हुए दीपक के सदृश है। जैसे वह दीपक दोनों कमरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र को प्रकाशित करता है। प्रकाश से हिताहित का परिज्ञान होते हुए भी प्रकाश स्वयं हित वस्तु को ग्रहण कर अहित वस्तु का परिहार नहीं कर सकता है। श्रद्धा से मानकर ज्ञान से जानकर एवं आचरण से माने हुए जाने हुए कार्य का सम्पादन होता है। अर्थात् विश्वसनीय एवं ज्ञात लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ के माध्यम से लक्ष्य बिन्दु तक पहुंचकर लक्ष्य की पूर्ति कर लेते हैं। कुन्द-कुन्द स्वामी ने अष्ट पाहुड़ में कहा भी है-

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।

णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चरित्रं।। (3)

जो जानता है वह ज्ञान जो देखता है वह दर्शन है, ज्ञान एवं दर्शन समापन्न या समायोग में चारित्र होता है।

एएतिण्णि विभावा हवंति जीवस्य अक्खयामेया।

तिण्हि वि सोहणत्थे जिण भणियं दुवियं चारित्तं।। (4)

यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप तीन भाव जीव के अक्षय अनन्त, स्वभाव स्वरूप है। इन तीनों की विशुद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान् ने व्यवहार एवं निश्चय दो प्रकार चारित्र कहे हैं।

सम्मत्त चरण शुद्धा संजम चरणस्स जइ व सुप्रसिद्धा।

णाणी अमूढ़ दिठ्ठी अचिरे पावंति निव्वाणं।। (3)

सम्यक्त्व सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों से रहित सम्यक्त्व गुण से अलंकृत जो होता है वह सम्यक् चारित्र से विशुद्ध होता है। वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान में होता है। चरणानुयोग के अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र नहीं होने पर भी अष्ट-मद, शंकादि अष्ट दोष, षट् अनायतन आदि का त्याग एवं निशंक आदि अष्ट अंग, संवेगादि अष्ट गुणादि सहित होना ही इस गुणस्थान सम्बन्धी चारित्र है। इसको ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्वाचरण सहित जो महामुनिश्वरों का महाव्रतादि रूप संयमाचरण से अत्यन्त प्रकृष्ट रूप से सर्वलोक सुप्रसिद्ध है। ऐसे महान् चारित्र साधक निर्वाण को स्वल्प काल में ही प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर चारित्र मुख्य होने पर भी सम्यग्दर्शन की समग्रता को कहा गया है।

सीलं रक्खताणं दंसण-सुद्धाण दिढ चरित्ताणं।

अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्त चित्ताणं।। (12)

जो शील के संरक्षक है दर्शन से विशुद्ध हैं दृढ़ चारित्र निष्ट हैं विषय वासना से विरक्त चित्त वाला है उसके लिये निर्वाण ध्रुव सुनिश्चित है।

सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं।। (20)

शील, विषय कषाय का परम शत्रु है अर्थात् शील पालने से शील के प्रभाव से विषय कषाय रूप शत्रु विध्वंस हो जाते हैं। शील मोक्ष महल के लिये सोपान स्वरूप है।

निश्चय व्यवहार मोक्ष मार्गः-मोक्ष कार्य एक होने के कारण उसके कारण

भी रत्नत्रयात्मक एक ही है। परन्तु पात्र की अपेक्षा रत्नत्रय व्यवहार और निश्चय भेद से दो प्रकार के हैं। एक निचली भूमिका में स्थित साधक अपेक्षा भेदात्मक रत्नत्रय, व्यवहार रत्नत्रय या व्यवहार मोक्षमार्ग है। उपरितन भूमिका स्थित साधक अपेक्षा निश्चय रत्नत्रय या अभेद रत्नत्रय या निश्चय मोक्षमार्ग है। निरतिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरूढ से पहले-पहले गुणस्थान तक भेदात्मक या व्यवहार रत्नत्रय है। सातिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरोहण के समय महामुनियों को निश्चय रत्नत्रय या अभेद रत्नत्रय होता है। इसी प्रकार मोक्षमार्ग के निश्चय एवं व्यवहार अपेक्षा से दो भेद हैं।

निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गं द्विधा स्थितः।
तत्राद्यं साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनं।। (2) त.सा.

निश्चय एवं व्यवहार रूप से दो प्रकार के मोक्षमार्ग हैं। निश्चय मोक्षमार्ग साध्य स्वरूप है एवं व्यवहार मोक्षमार्ग साधन स्वरूप है। साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती है। समर्थ साधन ही परिवर्तित होकर साध्य रूप हो जाता है। जैसे-बीज साधन तो वृक्ष साध्य है। बिना बीज वृक्ष सम्भव नहीं है उसी प्रकार बिना व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग संभव नहीं है इसलिये व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है और निश्चय मोक्षमार्ग कार्य है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिव मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो।।(1)।।
सम्मदंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तिय मइओ णिओ अप्पा।। (39) (द्रव्यसंग्रह)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निजात्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

श्री वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए जो छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नव पदार्थ हैं इनका भले प्रकार श्रद्धान करना, जानना और व्रत आदि का आचरण करना इत्यादि विकल्प जो हैं सो तो व्यवहार मोक्षमार्ग है। और जो अपने निरंजन शुद्ध आत्म तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण में एकाग्र परिणति

रूप है वह निश्चय मोक्षमार्ग है। अथवा धातु पाषाण के विषय में अग्नि के सदृश जो साधक है तो व्यवहार मोक्षमार्ग है तथा सुवर्ण के स्थानापन्न निर्विकार जो निज आत्मा है उसके स्वरूप की प्राप्ति रूप जो साध्य हैं उस स्वरूप से निश्चय मोक्षमार्ग है।

भेद रत्नत्रयात्मक व्यवहार मोक्षमार्गः साधको भवति अभेदरत्नत्रयात्मकः पुनर्निश्चय मोक्षमार्गः साध्यो भवति, एवं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गयो साध्यसाधक भावो ज्ञातव्यः सुवर्ण, सुवर्ण पाषाणवत् इति। (परमात्म प्रकाश)

भेद रत्नत्रयात्मक व्यवहार मोक्षमार्ग साधक होता है। अभेदरत्नत्रयात्मक निश्चय मोक्षमार्ग साध्य होता है। सुवर्ण और सुवर्ण पाषाण के समान साध्य साधक भाव है। जैसे सुवर्ण पाषाण ही अग्नि आदि से तपते-तपते विशुद्ध होते-होते शुद्ध सुवर्ण रूप से परिणत हो जाता है उसी प्रकार व्यवहार रत्नत्रय ही आध्यात्मिक साधना से शुद्ध होते अभेदरत्नत्रयात्मक रूप परिणत कर लेता है। इससे सिद्ध होता है कि बिना सुवर्ण पाषाण से शुद्ध सुवर्ण की उपलब्धि असम्भव है। व्यवहार रत्नत्रय या शुभोपयोग से पापकर्मों का संवर होता है। सातिशय पुण्यकर्म का आस्रव होता है तथा आस्रव से भी अनंत गुणित कर्म निर्जरा होती है इसलिये शुभ परिणामात्मक भेद रत्नत्रय भी संसार विच्छेद के लिये कारण होता है। जैनागम के प्रसिद्ध सिद्धान्त शास्त्र जय धवला में कलिकाल सर्वज्ञ तार्किक चूड़ामणि आचार्य वीरसेन स्वामी इस सिद्धान्त को सिद्ध करते हुए जय धवला के प्रथम चरण में ही कहते हैं-

''सुह-सुह परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववजीदो''

शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता है।

शंकाः-आध्यात्मिक शास्त्र में तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा गया है इसलिये व्यवहार नयाश्रित व्यवहारचरित्र अभूतार्थ है इसलिए व्यवहार रत्नत्रय भी मोक्षमार्ग के लिये अभूतार्थ हैं क्योंकि कुन्द कुन्द स्वामी ने कहा है-

व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मादिद्ठी हवदि जीवो।। (समयसार)

व्यवहार अभूतार्थ है अर्थात् विशेषता को दृष्टि में रखकर विषमता को पैदा करने वाला है किन्तु शुद्धनय भूतार्थ हैं क्योंकि वह समता को अपनाकर एकत्व

को लाता है। समता को अपनाकर ही सम्यग्दृष्टि अर्थात् समीचीनता को देखने वाला होता है।

समाधानः-ठीक है। आपका कहना भी नय सापेक्ष से यथार्थ है परन्तु व्यवहारनय एवं व्यवहार नयाश्रित व्यवहार रत्नत्रय किसके लिये कब अभूतार्थ है वह भी अनेकांत के प्रकाश से जान लेना चाहिये। इस गाथा की टीका करते हुए आध्यात्मिक ग्रन्थियों को सुलझाने वाले जयसेनाचार्य कहते हैं कि-

''व्यवहारो अभूदत्थो भूदत्थोदेसिदो'' व्यवहार नय अभूतार्थ भी है और भूतार्थ भी है, इसे दो प्रकार का कहा गया है। केवल व्यवहार नय ही दो प्रकार का नहीं, किन्तु सुद्धणओ भी शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय के भेद से दो प्रकार है ऐसा गाथा में आये हुए 'दु' शब्द से प्रकट होता है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जैसे कोई ग्रामीण पुरुष तो कीचड़ सहित तालाब आदि का जल पी लेता है किन्तु नागरिक विवेकी पुरुष तो उसमें कतक फल निर्मली डालकर उसे निर्मल बनाकर पीता है। उसी प्रकार स्वसंवेदन ज्ञान रूप भेद भावना से रहित जो मनुष्य है वह तो मिथ्यात्व और रागादि रूप विभाव परिणाम सहित ही आत्मा का अनुभव करता है। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि (संयत) मनुष्य होता है वह तो अभेद लक्षण निर्विकल्प समाधि के बल से कतक स्थानीय निश्चयरूप का आश्रय लेकर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।

भूतार्थनय का आश्रय करने वाला सामान्य जीव नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि से लेकर निरतिशय सप्तम गुणस्थान तक निश्चयनय को जानते हुए भी मानते हुए भी निश्चयनय से प्रतिपादित भावानुकूल वह परिणमन/आचरण नहीं कर सकता है। निश्चयनय से प्रतिपादित भावानुकूल श्रेणी आरोहण करने वाले महामुनीश्वर ही परिणमन कर सकते हैं। इसीलिये निश्चयनय द्वारा प्रतिपादित अभेदरत्नत्रय प्राथमिक साधकों के लिये श्रद्धान का विषय होने पर भी आचरण का विषय नहीं है। परन्तु व्यवहारनय द्वारा प्रतिपादित व्यवहार रत्नत्रय प्राथमिक साधकों के लिए आचरण करने योग्य है तथा प्रयोजनवान है। परन्तु श्रेणी आरोहण करने वाले मुनिश्वरों के लिए व्यवहार रत्नत्रय प्रयोजनीय नहीं है। समयसार में कहा भी है-

अतः तु न केवलं भूतार्थो निश्चयनयो निर्विकल्प समाधिरतानां प्रयोजवान्

भवति। किन्तु निर्विकल्प समाधि रहितानां पुनः षोडषवार्णिकासुवर्णलाभाभावे अधस्तनवर्णिकासुवर्ण लाभवत्केषाञ्चित्प्राथमिकानां कदाचिन् सविकल्पावस्थायां मिथ्यात्व, विषय-कषाय दुर्ध्यान वञ्चनार्थं व्यवहारनयोऽपिप्रयोजनवान् भवतीति प्रतिपादयति-

किन्तु इस गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं कि निर्विकल्प समाधि में निरत होकर रहने वाले सम्यग्दृष्टियों को भलार्थ स्वरूप निश्चयनय ही प्रयोजनवान् हो ऐसा नहीं हैं। किन्तु उन्हीं निर्विकल्प-समाधिरतों में किन्हीं-किन्हीं को कभी सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय-कषाय दुर्ध्यान को दूर करने के लिए व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् होता है। जैसे किसी को शुद्ध सोलहवानी के सुवर्ण का लाभ न हो तो नीचे के ही अर्थात् पन्द्रह, चौदहवानी का सोना भी ग्राह्य हो जाता है ऐसा कहते हैंः-

सुद्धो सुद्धोदेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। (समयसार)

शुद्ध निश्चयनय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है वह परम शुद्धात्मा की भावना में लगे हुए पुरुषों के द्वारा अङ्गीकार करने योग्य हैं। परन्तु जो पुरुष अशुद्ध व नीचे की अवस्था में स्थिर है उनके लिए व्यवहार नय ही कार्यकारी है।

(सुद्धो सुद्धादेसो) शुद्ध निश्चयनय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है (णादव्वो परम भावदरसीहिं) वह शुद्धता को प्राप्त हुए आत्मदर्शियों के द्वारा जानने भावने अर्थात् अनुभव करने योग्य है। क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ण के समान अभेदरत्नत्रय स्वरूप समाधिकाल में प्रयोजनवान् होता है। (व्यवहार देसिदो) किन्तु व्यवहार अर्थात् विकल्प भेद अथवा पर्याय के द्वारा कहा गया जो व्यवहारनय है वह पुनः पन्द्रह, चौदह आदि वानी के स्वर्ण लाभ के समान उन लोगों के लिए प्रयोजनवान् है। (जे दु) जो लोग अपर में (टिठ्दाभावे) अशुद्ध रूप शुभोपयोग में जो कि असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा श्रावक की अपेक्षा जो सराग सम्यग्दृष्टि लक्षण वाला है और प्रमत्त अप्रमत्त संयत लोगों की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण वाला है ऐसे शुभोपयोग रूप जीव पदार्थ में स्थित हैं।

मोक्षमार्ग में व्यवहारनय तथा व्यवहार रत्नत्रय अभूतार्थ नहीं।

ण च ववहारणओ चप्पलो, तत्तो ववहाराणुसारिसिस्साणां

पउत्तिदंसणादो। जो बहुजीवाणुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वेत्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण....

यदि कहा जाय कि व्यवहारनय असत्य है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उससे व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो **व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय** करना चाहिए ऐसा मन में निश्चय करके गौतम स्थविर ने...

यदि कहा जाय कि पुण्यकर्म के बाँधने के इच्छुक देश-व्रतियों को मंगल करना युक्त है किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्यबन्ध के कारणों के प्रति उन दोनों में कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् पुण्यबन्ध के कारणभूत कामों को जैसे देशव्रती श्रावक करते हैं **वैसे ही मुनि भी करते हैं मुनि के लिए एकान्त से निषेध नहीं है।** यदि ऐसा माना जाय तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिये यह कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके सरागसंयम के भी परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है। क्योंकि देशव्रत के समान सरागसंयम भी पुण्यबंधन का कारण है।

यदि कहा जाय कि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है। क्योंकि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्ति गमन के अभाव का भी प्रसंग प्राप्त होता है।

यदि कहा जाय कि सरागसंयम गुण श्रेणी निर्जरा का कारण है क्योंकि उससे बन्ध की अपेक्षा मोक्ष अर्थात् कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी होती है। अतः सरागसंयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिये क्योंकि अरहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है, इसलिये सरागसंयम के समान उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

सव्वत्थ विसयववहारस्स अप्पमाणपुरस्सरत्तप्पसंगादो। ण च अप्पमाणपुरस्सरो ववहारो सच्चत्तमल्लियइ। ण च एवं, बाहविवज्जियसव्ववहारणं सच्चत्तुवलंभादो।

आदि विषय व्यवहार को अप्रमाणपुरस्सरत्व का प्रसंग प्राप्त होता है और अप्रमाणपूर्वक होने वाला व्यवहार सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि कहा जाय

कि सभी व्यवहार अप्रमाणपूर्वक होने से असत्य मान लिये जाय, सो भी बात नहीं है। क्योंकि जो व्यवहार बाधारहित होते हैं उन सबमें सत्यता पाई जाती है।

यहाँ शिष्य शंका करता है कि आश्चर्य भगवान्! ध्यान तो मोक्ष का मार्गभूत है अर्थात् मोक्ष का कारण है और जो मोक्ष को चाहने वाला पुरुष उसको पुण्यबन्ध के कारण होने से व्रत में त्यागने योग्य अर्थात् व्रतों से पुण्य का बंध होता है, और पुण्यबंध संसार का कारण है इसलिये मोक्षार्थी व्रतों का त्याग करता है और आपने तप श्रुत और व्रतों को ध्यान की पूर्णता के कारण कहे, सो यह आपका कथन कैसे घटता है? (सिद्ध होता है) अब इस शंका का उत्तर दिया जाता है कि केवल व्रत ही त्यागने योग्य है ऐसा नहीं है किन्तु पाप बंध का कारण जो हिंसा आदि भेदों के धारक अव्रत हैं वे भी त्यागने योग्य हैं। सो ही पूज्यपादस्वामी ने कहा है कि हिंसा आदि अव्रतों से पाप का बंध होता है और अहिंसादि व्रतों से पुण्य का बंध होता हैं तथा मोक्ष जो है वह पाप व पुण्य इन दोनों के नाश से होता है, इस कारण मोक्ष को चाहने वाला पुरुष जैसे अव्रतों का त्याग करता है, वैसे ही अहिंसादि व्रतों का भी त्याग करे।

विशेष यह है कि मोक्षार्थी पुरुष पहले अव्रतों का त्याग करके पश्चात् व्रतों का धारक होकर निर्विकल्प-समाधि (ध्यान) रूप आत्मा के परमपद को प्राप्त होकर तदन्तर एक देश व्रतों का भी त्याग कर देता है। यह भी उन्हीं श्री पूज्यपादस्वामी ने समाधिशतक में कहा है कि ''मोक्ष को चाहने वाला पुरुष अव्रतों का त्याग करके व्रतों में स्थित होकर आत्मा के परमपद को पावे और उस आत्मा के परम पद को प्राप्त होकर उन व्रतों को भी त्याग करे।''

इस पूर्वकथन में विशेष यह है कि मन-वचन और काय की गुप्तिरूप और निज शुद्ध आत्मा के ज्ञानस्वरूप जो निर्विकल्प ध्यान है उसमें व्यवहार रूप जो एक देश व्रत है उनका त्याग किया जाता है और जो संपूर्ण शुभ तथा अशुभ की निवृत्ति रूप निश्चय व्रत हैं उनका स्वीकार ही किया गया है और त्याग नहीं किया गया है। प्रसिद्ध जो अहिंसादि महाव्रत हैं वे एकदेश व्रत कैसे हो सकते है? ऐसी शंका करो तो समाधान उत्तर यह है कि अहिंसा महाव्रत में यद्यपि जीवों के घात (मारने) से निवृत्ति (रहितता) है, तथापि जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति है। इसी प्रकार अचौर्य

महाव्रत में यद्यपि नहीं दिये हुए पदार्थ के ग्रहण करने का त्याग है तो भी दिये गये पदार्थों में ग्रहण करने की प्रवृत्ति है, इत्यादि एकदेश प्रवृत्ति की अपेक्षा से ये पाँचों महाव्रत हैं। इन एकदेश रूप व्रतों का मन, वचन और काय की गुप्तिस्वरूप जो विकल्परहित ध्यान है उस समय में त्याग है और समस्त शुभ तथा अशुभ की निवृत्ति रूप जो निश्चयव्रत है उसका त्याग नहीं है।

प्रश्न–त्याग शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर–जैसे हिंसा आदि रूप पाँच अव्रतों में रहितपना है उसी प्रकार जो अहिंसा आदि पंचमहाव्रत रूप एक देशव्रत हैं उनमें रहितपना है। यही त्याग शब्द का अर्थ है।

इन एकदेश व्रतों का त्याग किस कारण से होता है? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है कि मन-वचन और काय इन गुप्त रूप जो अवस्था है उसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप जो विकल्प है उसका स्वयं ही अवकाश नहीं है, अर्थात् मन, वचन और काय की गुप्तिरूप ध्यान में कोई प्रकार का भी विकल्प नहीं होता और अहिंसादिमहाव्रत विकल्परूप हैं इसलिये वे त्रिगुप्तिरूप ध्यान में रह सकते हैं और जो दीक्षा के पश्चात् दो घटिका (घड़ी) प्रमाणकाल में ही भरत चक्रवर्ती मोक्ष पधारे है उन्होंने भी जिनदीक्षा को ग्रहण करके, क्षणमात्र (थोड़े समय तक) विषय और कषायों की रहिततारूप जो व्रत का परिणाम है उसको करके तत्पश्चात् शुद्धोपयोग रूप जो रत्नत्रय उस स्वरूप जो निश्चय नाम का धारक और वीतराग सामायिक नाम का धारक निर्विकल्प ध्यान है उसमें स्थित होकर केवल ज्ञान को प्राप्त हुए हैं। परन्तु श्री भरत जी के थोड़े समय व्रत परिणाम रहा इस कारण लोग भरतजी के व्रत परिणाम को नहीं जानते हैं। अब श्री भरतजी की दीक्षा के विधान का कथन करते है। श्री वीर वर्द्धमान स्वामी तीर्थंकर परमदेव के समवशरण में श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि 'हे भगवन्! श्री भरत चक्रवर्ती के जिन दीक्षा को ग्रहण करने के पीछे कितने काल में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ?' इस पर श्री गौतम स्वामी गणधर देव ने उत्तर दिया कि हे श्रेणिक राजन्! बंध के कारण भूत जो केश (बाल) हैं उनको पाँच मुष्टियों से उखाड़कर तोड़ते हुए अर्थात् पंचमुष्टि लोंच करने के अनन्तर ही श्री भरत चक्रवर्ती केवल ज्ञान को प्राप्त हुए।

परमात्मा की मोक्षावस्था

नित्यमपि निरूपलेप, स्वरूप समवस्थितो निरूपघातः।

गगनमिव परम पुरुषः परम पदे स्फुरति विशदतमः।।(223)

Ever free from (karmic) contact, free from obstruction, fully absorbed in own' s self, the highest supremely pure soul is effulgent, like the sky, in the highest stage.

समस्त पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करने वाला परम पुरुष परम पद रूप सिद्ध पद में स्फुरायमान होता है। वह परम पुरुष सदा कर्मादि लेप से रहित, स्वस्थ्य रूप में स्थित, समस्त घात प्रतिघात बाधाओं से रहित गगन के समान लेप से रहित चिज्जयोति रूप से सिद्ध पद में अतिशय रूप से स्फुरायमान होता है।

परमात्मा का स्वरूप

कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मा सकल-विषय विरतात्मा।

परमानन्द-निमग्नो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव।।(224)

Quite contented, all knowables being reflected in him, immersed in supreme bliss, the emodiment of knowledge, the Paramatma is eternally happy in the highest stage..

अन्वायर्थ-(परमात्मा) कर्मरज से सर्वथा विमुक्त शुद्धात्मा (परमपदे) उत्कृष्ट निज स्वरूप पद में (कृतकृत्यः) कृतकृत्य होकर ठहरता है (सकलविषयात्मा) समस्त पदार्थों को विषय करने वाला बन जाता है (परमानंदनिमग्नः) परमानन्द में निमग्न हो जाता है। (ज्ञानमयः) ज्ञानस्वरूप ही उसका निजरूप है ऐसा वह परमात्मा (सदैव नंदति) सदैव आनन्द रूप से रहता है। अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानधन स्वरूप होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

समीक्षा : कर्मबन्ध से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्त भूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं।

ज्ञानावरणहानाते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।।(37) (त.सार)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।।(38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिन।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।।(39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यामाश्रिताः।।(40) त.सा.

वे सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते है, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शन।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निः क्रियाः।।(43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्यसम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्क्यत्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(45)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा हैं।

शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

स्यादेतशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।

कथं भवति मुक्तस्य सुखम्युतरं शृणु।।(46)

लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते

विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।।(47)

सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।

दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।।(48)

पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।

कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।।(49)

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्त जीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो! इस लोक में **विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थ में सुख शब्द कहा जाता** है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से सुख उत्पन्न हुआ है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुख शब्द का प्रयोग है। और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

सांव्यवहारिक सत्य V/S आध्यात्मिक सत्य

लोकानुगतिक लोकः न लोकः पारमार्थिकः

व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग V/S सांसारिक व्यवहार काम

(जीविका अर्जनादि व्यवहार परे है-व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग)

(चालः1.आत्मशक्ति... 2.क्या मिलिए..)

निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग जानो, व्यवहार कारण निश्चय कार्य मानो।

व्यवहार बिन न निश्चय संभव होता, यथा बीज बिना वृक्ष न बनता।। (1)

चतुर्थ गुणस्थान से व्यवहार मोक्षमार्ग प्रारंभ, श्रेणी आरोहण से निश्चय मोक्षमार्ग प्रारंभ।

भेदरत्नत्रय है व्यवहार मोक्षमार्ग, अभेद रत्नत्रय निश्चय मोक्षमार्ग।। (2)

असिमसिकृषिवाणिज्य सेवा शिल्प, ये नहीं है व्यवहार मय मोक्षमार्ग।
ये है जीविकोपार्जनमय पाप काम, अणु-महाव्रत पालन व्यवहार मोक्षमार्ग।। (3)
जीविका उपार्जन से ले विवाह प्रजनन, राज्यशासन से दण्ड़विधान आक्रमण।
परिग्रह उपार्जन संग्रह संरक्षण, सभी पापकारक नवकोटि से जानो।। (4)
इस पाप के परिमार्जन हेतु पूजा-दान, श्रावक योग्य व्रत-नियम पालन।
प्रथम प्रतिमा से ग्यारह प्रतिमा तक, बढ़ता जाता उत्तरोत्तर व्यवहार मोक्षमार्ग।। (5)
निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति निमित्त, ग्यारह प्रतिमा परे बनते श्रमण।
ध्यान अध्ययन व तप त्याग से, आत्मविशुद्धि से आत्मशक्ति बढ़ाते जाते।। (6)
जिससे ध्यान से श्रेणी आरोहण होता; जिससे निश्चय मोक्षमार्ग प्रारंभ होता।
निश्चय मोक्षमार्ग की वृद्धि क्रम से; घाती कर्म नष्ट होते शुक्लध्यान से।। (7)
योग निरोध से होता परमशुक्ल ध्यान, परमयथाख्यात चारित्र से मिले निर्वाण।
मोक्षमार्ग पूर्णता ही परिनिर्वाण, मोक्षमार्ग व मोक्ष दोनों कार्यकारण।। (8)
रागीद्वेषीमोही से अज्ञात सत्य, सांसारिक व्यवहार में मोहीत चित्त।
हिताहित ग्राह्यअग्राह्य में भ्रमति, आगम-अनुभव 'कनक' बनाया काव्य।। (9)
लोकानुगतिकः लोक न लोकः पारमार्थिक, लोक मूढ़तामय गृहीत मिथ्यात्वग्रसीत।
अष्टमदय लौकिक विनय संयुक्त, न जानते/(करते) पारमार्थिक से युक्त।। (10)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-4/12/2020, रात्रि-9.06

संदर्भ-

अपाय विचय

असुहकम्मस्स णासो सुहस्स वा हवेइ केणुवाएण।
इय चिंततस्स हवे अपाय विचयं परं झाणं।। (368)

अपाय शब्द का अर्थ नाश है। इन अशुभ कर्मों का नाश किस उपाय से होगा अथवा शुभ कर्मों का आस्रव किस उपाय से होगा इस प्रकार जो जीव चिंतवन करता है उसका वह ध्यान अपाय विचय नाम का दूसरा उत्तम धर्मध्यान कहलाता है।

विपाक विचय

असुहसुहस्स विवाओ चिंतइ जीवाण चउगइगयाणं।

विवायविचयं झाणं भणियं तं जिणवरिंदे हिं।।(369)

चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले जीवों के शुभ कर्मों के उदय को तथा अशुभ कर्मों के उदय को जो चिंतवन करता है उसका वह ध्यान विपाकविचय कहलाता है। ये जीव अपने अपने शुभ अशुभ कर्मों के उदय से ही सुख दुःख भोगते है ऐसा चिंतवन करना विपाक विचय नाम का तीसरा धर्मध्यान है।

संस्थान विचय

अह उड्ढतिरियलोए चिंतेइ सपज्जयं संसठाणं।
विचयं संठाणस्स च भणियं झाणं समासेण।।(370)

संस्थान आकार को कहते हैं। लोक के तीन भाग है अधोलोक, मध्यलोक वा तिर्यग्लोक और उर्ध्व लोक इनका चिंतवन करना तथा इनमें भरे हुए पदार्थों का उनकी पर्यायों का उन सबके आकारों का चिंतवन करना अत्यंत संक्षेप से संस्थान विचय नाम का चौथा धर्मध्यान कहलाता है।

धर्मध्यान कहाँ होता

मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।
देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।।(371)

यह धर्मध्यान मुख्यता से प्रमाद रहित सातवें गुणस्थान में होता है तथा देशविरत पाँचवे गुणस्थान में और प्रमत्त संयत छठे गुणस्थान में भी यह धर्मध्यान उपाचार से होता है। ऐसा समझना चाहिये।

दूसरे प्रकार के धर्मध्यान का स्वरूप

दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वण्णिओ सुत्ते।
चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मझाणुत्ति।।(372)

अथवा सिद्धांत सूत्रों में उत्तमक्षमा आदि दश प्रकार का धर्म बतलाया है उन दशों प्रकार के धर्मों का चिंतवन करना भी धर्म्य ध्यान कहलाता है।

अहवा वत्थुसहावो धम्मं वत्थू पुणो व सो अप्पा।
झायंताणं कहियं धम्मझाणं मुणिंदेहिं।। (373)

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं तथा वस्तुओं में वा पदार्थों में मुख्य

वस्तु वा मुख्य पदार्थ आत्मा है। इसलिये उस आत्मा का ध्यान करना और उसके शुद्ध स्वरूप का ध्यान करना धर्मध्यान है। ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

धर्म्यध्यान के दूसरे प्रकार के भेद

तुं फुडु दुविहं भणियं सालंवं तह पुणो अणालंवं।
सालंवं पंचण्हं परमेट्ठीणं सरूवं तु।। (374)

वह धर्म्मध्यान दो प्रकार है एक आलंबन सहित और दूसरा आलंबन रहित। इन दोनों में से पंच परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतवन करना है उसको सालम्ब ध्यान कहते हैं।

प्रकार के बहुत से होते हैं इसलिये वह शुद्ध आत्मा का ध्यान कभी नहीं कर सकता।

धरवावारा केई करणीया अत्थि ते ण ते सव्वे।
झाणट्ठियस्स पुरओ चिट्ठंति णिमीलियच्छिस्स।। (385)

गृहस्थों को घर के कितने ही व्यापार करने पड़ते हैं। जब वह गृहस्थ अपने नेत्रों को बंद कर ध्यान करने बैठता है तब उसके सामने घर के करने योग्य सब व्यापार आ जाते हैं।

अह ढिंकुलिया झाणं झायइ अहवा स सोवए झाणी।
सोवंतो झायव्वं ण ठाइ चित्तम्मि वियलम्मि।। (386)

जो कोई गृहस्थ शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहता है तो उसका वह ध्यान ढेकी के समान होता है। जिस प्रकार ढेकी धान कूटने में लगी रहती है परन्तु उससे उसका कोई लाभ नहीं होता उसको तो परिश्रम मात्र ही होता है इसी प्रकार गृहस्थों का निरालंब ध्यान शुद्ध आत्मा का ध्यान परिश्रम मात्र होता है अथवा शुद्ध आत्मा का ध्यान करने वाला वह गृहस्थ उस ध्यान के बहाने सो जाता है। जब वह सो जाता है तब उसके व्याकुल चित्त में वह ध्यान करने योग्य शुद्ध आत्मा कभी नहीं ठहर सकता। इस प्रकार किसी भी गृहस्थ के शुद्ध आत्मा का निश्चल ध्यान कभी नहीं हो सकता।

झाणाणं संताणं अहवा जाएइ तस्स झाणस्स।
आलंवण रहियस्स य ण ठाइ चित्तं थिरं जम्हा।। (387)

अथवा यदि वह सोता नहीं तो उसके ध्यानों को संतानरूप परंपरा चलती रहती है इसका कारण भी यह है कि निरालंब ध्यान करने वाले गृहस्थ का चित्त भी स्थिर नहीं रह सकता।

गृहस्थ का चित्त स्थिर नहीं रहता इसलिये उसके निरालंब ध्यान कभी नहीं हो सकता। यदि वह गृहस्थ निरालंब ध्यान करने का प्रयत्न करता है तो निरालंब ध्यान तो नहीं होता परन्तु किसी भी ध्यान की संतान परंपरा चलती रहती है।

गृहस्थों के करने योग्य ध्यान

तम्हा सो सालंवं झायउ झाणं पि गिहवई णिच्चं।
पंच परमेट्ठिरूवं अहवा मंतक्खर तेसिं।। (388)

इसलिये गृहस्थों को सदाकाल आलंबन सहित ध्यान धारण करना चाहिए। या तो उसे पंच परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिये अथवा पंच परमेष्ठी के वाचक मंत्रों का ध्यान करना चाहिये।

जइ भणइ को वि एवं गिहवावारेसु वट्टमाणो वि।
पुण्णे अम्ह ण कज्जं जं संसारे सुपाडेई। (389)

कदाचित् कोई गृहस्थ यह कहे कि यद्यपि हम गृहस्थ व्यापारों में लगे रहते हैं तथापि हमें सावलंब ध्यान कर पुण्य उपार्जन करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि पुण्य उपार्जन करने से भी तो इस जीव को संसार में ही पड़ना पड़ेगा।

ऐसा कहने वाले के लिए आचार्य उत्तर देते (मैथुन से 9 लाख जीवों का घात)

मेहुणसण्णारूढो मारइ णवलक्ख सुहम जीवांई।
इय जिणवरेहिं भणियं वज्झंतरणिग्गंथरूवेहिं।। (390)

आचार्य कहते हैं कि देखो जो पुरुष मैथुन संज्ञा को धारण करता है अपनी स्त्री का सेवन करता है वह गृहस्थ नौ लाख सूक्ष्म जीवों का घात करता है ऐसा बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है। इसके सिवाय-

गेहे वट्टंतस्स या वावारसयाई सया कुणंतस्स।
आसवइ कम्म मसुहं अट्टरउद्दे पवत्तस्स।। (391)

जो पुरुष घर में रहता है और सदाकाल गृहस्थी के सैकड़ों व्यापार करता रहता है वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान में भी अपनी प्रवृत्ति करता रहता है इसलिये उसके सदाकाल अशुभ कर्मों का ही आस्रव होता रहता है।

जई गिरिणई तलाए अणवरयं पविसए सलिलपरिपुण्णं।

मण वयतणुजोएहिं पविसइ असुहेहिं तह पावं।। (392)

जिस प्रकार किसी पर्वत से निकलती हुई नदी का पानी किसी जल से भरे हुए तालाब में निरन्तर पड़ता रहता है उसी प्रकार गृहस्थी के व्यापार में लगे हुए पुरुष के अशुभ मन वचन काय इन तीनों अशुभ योगों द्वारा निरंतर पाप कार्यों का आस्रव होता है।

गृहस्थों के लिए आचार्य का उपदेश-पुण्यार्जन

जाम ण छंठइ गेहं ताम ण परिहरइ इंतयं पावं।

पावं अपरिहरंतो हेओ पुण्णस्स ना चयउ।। (393)

इस प्रकार ये गृहस्थ लोग जब तक घर का त्याग नहीं करते गृहस्थ धर्म को छोड़कर मुनि धर्म धारण नहीं करते तब तक उनसे ये पाप छूट नहीं सकते। इसलिये जो गृहस्थ पापों को नहीं छोड़ना चाहते उनको कम से कम पुण्य के कारणों को तो नहीं छोड़ना चाहिये।

भावार्थ : गृहस्थों को सदाकाल पाप कर्मों में ही नहीं लगे रहना चाहिये। किन्तु साथ में जितना कर सके उतना पुण्य कर्मों का भी उपार्जन करते रहना चाहिये तथा पुण्य उपार्जन करने के लिये सावलंबन ध्यान वा भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा अथवा सुपात्र दान देते रहना चाहिये।

मामुक्क पुण्णहेउं पावस्सासवं अपरिहरंतो य।

बज्झइ पावेण णरो सो दुग्गइ जाइ मरिउणं।। (394)

जो गृहस्थ पाप रूप आस्रवों का त्याग नहीं कर सकते अर्थात् गृहस्थ धर्म छोड़ नहीं सकते उनको पुण्य के कारणों का त्याग कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य सदाकाल पापों का बंध करता रहता है वह मनुष्य मर कर नरकादिक दुर्गति को ही प्राप्त होता है।

कैसा पुरुष पुण्य के कारणों का त्याग कर सकता है –

पुण्णस्स कारणाइं पुरिसो परिहरउ जेण णियचित्तं।
विसयकसायपउत्तं णिग्गहियं हयपमाएण।। (395)

जिस पुरुष ने अपने समस्त प्रमाद नष्ट कर दिये हैं तथा इन्द्रियों के विषय और कषायों में लगे हुए अपने चित्तको जिसने सर्वथा अपने वश में कर लिया है ऐसा पुरुष अपने पुण्य के कारणों का त्याग कर सकता है।

भावार्थ : पुण्य के कारणों का त्याग सातवें गुणस्थान में होता है। इससे पहले नहीं होता इसलिये गृहस्थों को तो पुण्य के कारण कभी नहीं छोड़ने चाहिये।

गिहवावारविरत्तो गहियं जिणलिंग रहियसपमाओ।
पुण्णस्स कारणाइं परिहरउ सयावि सो पुरिसो।। (396)

जिस पुरुष ने गृहस्थ के समस्त व्यापारों का त्याग कर दिया है जिसने भगवान् जिनेन्द्रदेव का निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लिया है तथा निर्ग्रंथ लिंग धारण करने के अनंतर जिसने अपने समस्त प्रमादों का त्याग कर दिया है। ऐसे पुरुष को ही सदा के लिए पुण्य के कारणों का त्याग करना उचित है, अन्यथा नहीं।

भावार्थ : प्रमादों का त्याग सातवें गुणस्थान में होता है। सातवें गुणस्थान में ही वे मुनि उपशम श्रेणी में ही मुनि उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं। उपशम श्रेणी में कर्मों का उपशम होता रहता है और क्षपक श्रेणी में कर्मों का क्षय होता रहता है। इसलिये वहाँ पर पुण्य के कारण अपने आप छूट जाते हैं। गृहस्थों को पुण्य के कारण कभी नहीं छोड़ने चाहिये।

असुहस्स कारणेहिं य कम्म छक्केहि णिच्च वट्टंतो।
पुण्णस्स कारणाइं बंधस्स भयेण णेच्छंतो।। (397)
ण मुणइ इय जो पुरिसो जिणकहियपयत्थणवसरूवं तु।
अप्पाणं सुयणमज्झे हासस्स य ठाणयं कुणइ।। (398)

यह गृहस्थ अशुभ कर्मों के आने के कारण ऐसे असिमसि कृषि वाणिज्य आदि छहों कर्मों में लगा रहता है अर्थात् इन छहों कर्मों के द्वारा सदाकाल अशुभ कर्मों का आस्रव करता रहता है तथापि जो केवल कर्मबंध के भय से पुण्य के

कारणों को करने की इच्छा नहीं करता, कहना चाहिये कि वह पुरुष भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए नौ पदार्थों के स्वरूप को भी नहीं मानता, तथा वह पुरुष अपने को सज्जन पुरुषों के मध्य में हँसी का स्थान बनाता है।

भावार्थ : वह हँसी का पात्र होता है। इसलिये किसी भी गृहस्थ को पुण्य के कारणों का त्याग नहीं करना चाहिये।

पुण्य के भेद

पुण्णं पुव्वायरिया दुविहं अक्खंति सुत्तउत्तीए।
मिच्छपउत्तेण कयं विवरीयं सम्म जुत्तेण।।(399)

पूर्वाचार्यों ने अपने सिद्धान्त सूत्रों के अनुसार उस पुण्य के दो भेद बतलाये हैं। एक तो मिथ्यादृष्टि पुरुष के द्वारा किया हुआ पुण्य और दूसरा इसके विपरीत सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य।

मिथ्यादृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य और उसके फल-

मिच्छादिट्ठीपुण्णं फलइ कुदेवेसु कुणरतिरिएसु।
कुच्छिय भोगधरासु य कुच्छियपत्तस्स दाणेणे।(400)

मिथ्यादृष्टि पुरुष प्रायः कुत्सित पात्रों को दान देता है। इसलिए वह पुरुष उस कुत्सित दान के फल से कुदेवों में उत्पन्न होता है, कुमनुष्यों में उत्पन्न होता है, नीचे तिर्यंचों में उत्पन्न होता है और कुभोग भूमियों में उत्पन्न होता है।

जइ वि सुजायं वीयं ववसाय पउत्तओ विजइ कसओ।
कुच्छियखेत्ते ण फलइ तं वीयं जह दाणं।।(401)

यद्यपि किसी न किसी उत्तम जाति के बीज को विधिपूर्वक (भूमि को अच्छी जोत कर) बोता है तथापि कुत्सित खेत में बोने से उस पर फल नहीं लगते इसी प्रकार कुत्सित पात्रों को दान देने से उनका कुछ भी फल नहीं मिलता है।

जइ फलइ कह वि दाणं कुच्छिय जाईहिं कुच्छिय सरीरं।
कुच्छियभोए दाउं पुणरवि पाडेइ संसारे।।(402)

अर्थ : यदि किसी प्रकार कुत्सित पात्रों को दिये हुए दान का फल मिलता भी है तो कुत्सित जाति में उत्पन्न होना, कुत्सित शरीर धारण करना और कुत्सित

भोगोपभागों का प्राप्त होना आदि कुत्सित रूप ही फल मिलता है तथा कुत्सित पात्रों को दिया हुआ वह दान जीव को चतुर्गति रूप इस संसार में ही परिभ्रमण करता रहता है।

संसारचक्कवाले परिभ्भमंतो हु जोणिलक्खाइं।

पावइ विविहे दुक्खे विरयंतो विवहकम्माइं।।(403)

कुपात्रों को दान देने वाला पुरुष चौरासी लाख योनियों से भरे हुए संसार चक्र में परिभ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार के कर्मों का उपार्जन करता रहता है और उन अशुभ कर्मों के फल से अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता रहता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टियों के द्वारा किये हुए पुण्य का स्वरूप और उसका फल कहा।

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य का फल

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसारकारणं णियमा।

मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं सो कुणई।।(404)

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पणुय संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाए तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

कोई भी पुण्य कार्य कर उससे आगामी काल के भोगों की इच्छा करना या और कुछ चाहना निदान है, निदान नरक का कारण है। इसलिए उत्तम पुरुषों को निदान कभी नहीं करना चाहिये।

अकयणियाणसम्मो पुण्णं काऊण णाणचरणट्ठो।

उप्पाज्जइ दिवलोए सुहपरिणामो सुलेसो वि।।(405)

जिस सम्यग्दृष्टि पुरुष के शुभ परिणाम है, शुभ लेश्याएँ हैं तथा जो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धारण करता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि निदान नहीं करता है तो वह पुरुष मरकर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।

'सम्यक ज्ञान से होती है अज्ञान की निवृत्ति'

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी महाराज ने वैज्ञानिक आचार्य एवं शिष्यों की वेबिनार में बताया कि सामान्य ज्ञान के बाद सम्यक ज्ञान होता है। दीपक प्रज्वलित

होता है तब वहाँ का अंधेरा दूर होता है। सम्यक् दर्शन व सम्यक् ज्ञान दोनों एक ही है। आचार्य ने बताया कि वैभाविक भाव से रहित संशय, विमोह, विभ्रम से रहित सम्यक् ज्ञान होता है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से स्वयं की आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। उन्होंने बताया कि यहाँ के लोगों को हिंदी का व्याकरण सहित ज्ञान बहुत कम है, इसे सुधारना आवश्यक है। वैभाविक भाव होने पर आत्मा के गुण जागृत नहीं होते हैं।

जो निरंजन है वह मैं हूँ। ''सोऽहं'' के बाद ''अहं'' आता है। रागादि भाव मन में उत्पन्न होने वाले संकल्प विकल्प सब पर हैं। श्रद्धान, ज्ञान, प्रतीति, अनुभव आत्मा-आत्मा रटना श्रद्धान नहीं है। आचार्य ने बताया कि स्व का अध्ययन ही स्वाध्याय है। केवल आध्यात्मिक शब्द, गाथा, श्लोक रट लेना ज्ञान नहीं है। आत्मा उद्धार, आत्मसंशोधन, आत्मा विशुद्धि धर्म है। जिनशासन में प्रकृति से परे स्व स्वभाव का ज्ञान सम्यक ज्ञान है।

जबकि विज्ञान में भौतिक तत्त्व को जानना ज्ञान है। सप्त तत्त्व नव पदार्थ में जो स्व आत्मा तत्त्व है उसको मानना जानना अलग करना सम्यक ज्ञान है। जिससे मोक्ष मार्ग की प्रभावना हो वह जिनशासन है। उन्होंने बताया कि अविश्वास करना संशय है तथा सत्य स्वरूप को सही नहीं मानना विमोह है।

अनित्य को नित्य मानना अनेकांत को एकांत मानना विभ्रम है जैसे 2 प्लस 2 बराबर 4 को 5 या 6 आदि मानना गलत है। उसके अनंत विकल्प होते हैं अतः गलत ज्ञान के भी अनेक विकल्प होते हैं। आचार्य ने बताया कि व्यवहार सत्य धर्म नहीं है। भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, चोरी आदि गलत कार्य करने वाले नैतिक नहीं होते हैं।

नैतिक बने बिना आध्यात्मिक नहीं बन सकते। चारों अनुयोगों में करणानुयोग प्रमुख है। सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रतिपादित जो कानून है वह अकाट्य, अबाधित, सार्वभौम है। सम्यक् ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है। कुज्ञान, विपरीत ज्ञान, अध्यवसाय जो आत्मा के लिए अहित है सबको छोड़ना सम्यक् ज्ञान है। सम्यक ज्ञान होने पर सम्यक् चारित्र प्रारंभ हो जाता है भले अणुव्रत रूप में हो या महाव्रत रूप में। जिज्ञासा करना भी परम तप है।

जाना है मैंने स्वात्मा के अनन्त वैभव

–आचार्य कनकनन्दी

(चाल: पायोजी मैंने...)

जाना है मैंने स्वात्मा के अनन्त वैभव...
जिस वैभव हेतु अनन्त चक्री भी त्यागे हैं राज्यवैभव।।
मेरा वैभव है आत्मोत्थ अनुपम शाश्वत व शुद्ध,
स्वतंत्र स्वाश्रित निराकुल तथा अक्षय अनन्त।
चक्री का वैभव भी इस से भिन्न है,
कर्मज पराश्रित आकुलता क्षय युक्त।। (1)
तीर्थेश चक्री भी जब बनते श्रमण, होते वे ऋद्धियों से भी सम्पन्न।
तथापि वे ऋद्धियों का न करते उपयोग, जो ऋद्धि इन्द्र की ऋद्धि से भी महान्।। (2)
इससे भी अनन्त गुणा वैभव है आत्मा के, अतः ऋद्धियों को न मानते स्वभाव।
ऋद्धियाँ भी होती क्षायोपशमिक क्षय, जो असंख्यात आयाम से संयुक्त।। (3)
इससे भी न होते मोहित गर्वी संतोषी, न मानते स्वात्मा के वैभव अशेष।।
अतएव वे स्व-आत्म वैभव प्राप्ति हेतु, करते स्वात्मा को विशुद्ध से विशुद्ध।। (4)
ऐसा है मम श्रद्धा-प्रज्ञा व लक्ष्य, इस हेतु ही ध्यान-अध्ययन तप त्याग,
समता शान्ति निस्पृहता वैराग्य, एकान्त मौन निराड़म्बर संवेग।। (5)
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व, संकीर्ण पंथमत भेदभाव विभाव।
संकल्प विकल्प संक्लेश द्वन्द्व शून्य, इह परलोक भोगाकांक्षा निदान रिक्त।। (6)
जिस अंश में कर रहा हूँ आत्मवैभव प्राप्ति, उस अंश में कर रहा हूँ आत्मउन्नति।
उस अंश में भोग रहा हूँ समता शान्ति, इससे आत्मानुभव बढ़ाये ''कनकनन्दी''।। (7)
आत्मवैभव की श्रद्धा प्रज्ञा चर्या, न करते जो रागीद्वेषी मोही।
उन्हें तो आत्मवैभव मिथ्या लगता, उन्हें चाहिए भोगोपभोग सत्ता सम्पत्ति।। (8)
धर्म भी करेंगे इस के निमित्त, दिखावा आड़म्बर व प्रपंच युक्त।
न आत्मविशुद्धि समता व शान्ति, कट्टर संकीर्ण क्रूरता दंभ युक्त।। (9)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-29-11-2020, अपराह्न-5.59

संदर्भ-

केवली का स्वाधीन सुख

पक्खीणदिघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।

जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।।(19) प्रवचनसार

आगे शिष्य ने प्रश्न किया कि उस आत्मा के विकार रहित स्वसंवेदन लक्षण शुद्धोपयोग के प्रभाव से सर्वज्ञपना प्राप्त होने पर इन्द्रियों के द्वारा उपयोग तथा भोग के बिना किस तरह ज्ञान और आनन्द हो सकते है?

इसका उत्तर आचार्य देते हैं-

(सो) वह सर्वज्ञ आत्मा जिसका लक्षण पहले कहा है (पक्खीणघाइकम्मो) घातियाकर्मों को क्षयकर अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य इन चतुष्टय रूप परमात्मा द्रव्य भावना के लक्षण को रखने वाले शुद्धापयोग के बल से ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों को नाशकर (अणंतवरवीरियो) अंत रहित और उत्कृष्ट वीर्य को रखता हुआ। (अहियतेजो) व अतिशय तेज का धरता हुआ अर्थात् इन्द्रियों के विषयों के व्यापार से रहित (जादो) हो गया (च) तथा ऐसा होकर (णाणं) केवलज्ञान को (सोक्खं) और अनंतसुख को (परिणमदि) परिणमन करता है।

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रकट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख,अनंतवीर्यादि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही सुप्तरूप में छिपे हुए हैं। कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियएणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जनता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है। केवली (अरहंत सिद्ध भगवान्) के सुख का वर्णन पूज्यपाद स्वामी ने सिद्धभक्ति में निम्न प्रकार किया है-

आत्मोपादानसिद्धं, स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं,
वृद्धिह्लासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वन्द्व भावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरूपममभितं शाश्वतं सर्वकालं,
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्।। (7)

सिद्ध का सुख (1) आत्मा से ही उत्पन्न होता है। (2) वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। (3) समस्त बाधाओं से रहित होता है। (4) अत्यन्त विशाल व विस्तीर्ण होता है। (5) वृद्धि एवं ह्रास से रहित (6) इन्द्रिय विषयों से रहित स्वभाविक होता है (7) दुःख रूप विरोधी धर्म से सदा रहित है। (8) अन्य बाह्य निमित्त या सामग्रियों की अपेक्षा से रहित है। (9) उपमा रहित है। (10) अनंत है (11) विनाश रहित है इसलिये सदा बना रहता है। (12) उस सुख का महात्म्य सर्वोत्कृष्ट है और वह अनंतकाल तक रहता है। (13) इन्द्रादिक के सुख से भी बढ़कर है इसलिए कर्मों के सर्वथा नाश होने से वह सिद्ध भगवान् के ही होता है।

नार्थःक्षुत्तृट्विनाशाद् विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यै र्न हि मृदुशयनै, ग्लानिनिद्राद्यभावात्।।
आतंकार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे, दृश्यमाने समस्ते ।। (8)

सिद्ध भगवान् के क्षुधा और तृष्णा के नाश हो जाने से अनेक प्रकार के रसयुक्त अन्न तथा पान से कोई प्रयोजन नहीं है। अशुचि अर्थात् अपवित्र पदार्थों के

स्पर्श नहीं होने से सुगंधित पदार्थों से प्रयोजन नहीं है। ग्लानि और निद्रादि के नहीं होने से कोमल शय्या से भी प्रयोजन नहीं, रोग की पीड़ा के अभाव होने के कारण उस रोग को दूर करने के साधन रूप औषधि भी व्यर्थ है, जैसे कि समस्त दिखाई देने वाले अन्धकार के चले जाने पर दीप की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। (27 गीता)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

यञ्जुन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

स्वयंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः।। (21 इष्टोपदेश)

यह आत्मा आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट होता है यानि-जाना जाता है, वह शरीर के बराबर है, अविनाशी है- कभी इसका नाश नहीं होता। अनन्तसुख वाला है ऊर्ध्व, मध्य, पाताल का यानि समस्त जगत् का तथा जगत् के बाहर अनन्त अलोकाकाश जानने-देखने वाला है।

सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा।।

तथा सन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है-

हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है,

तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यान्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। (पतञ्जली योगदर्शन)

अविद्या, अस्मिता, राग,द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों के नियन्त्रित करने के सामर्थ्य का)और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम। (55)

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छा परमा रोगा, संखारा परमा दुखा।

एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मपद)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

केवली के शारीरिक सुख दुःख नहीं

सोक्खं वा गुण दुक्खं केवलणाणिस्स णस्थि देहगदं।

जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं (20) (प्र.सा.)

आगे कहते है कि अतीन्द्रियपना होने से ही केवलज्ञानी के शरीर के आधार से उत्पन्न होने वाला भोजनादि का सुख तथा क्षुधा आदि का दुःख नहीं होता है (पुण) तथा (केवलणाणिस्स) केवलज्ञानी के (देहगदं) देह से होने वाला अर्थात् शरीर के आधार में रहने वाली जिह्वा इन्द्रिय आदि के द्वारा पैदा होने वाला (सोक्खं) सुख (वा दुक्खं) और दुःख अर्थात् असातावेदनीय आदि के उदय से पैदा होने वाला क्षुधा आदि का दुःख (णत्थि) नहीं होता है। (जम्हा) क्योंकि (अदिंदियत्तं) अतीन्द्रियपना अर्थात् मोहनीय आदि घातिया कर्मों के अभाव होने पर पाँचों इन्द्रियों के विषय सुख के लिए व्यापार का अभावपना ऐसा अतीन्द्रियपना (जाद) प्रगट हो गया है (तम्हा) इसीलिए (तं दु) वह अर्थात् अतीन्द्रियपना होने के कारण से अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख तो (णेयं) जानना चाहिए।

भाव यह है कि जैसे लोहे के पिंड की संगति को न पाकर अग्नि हथौड़े की चोट नहीं सह सहती है तैसे यह आत्मा भी लोहपिंड के समान इन्द्रियग्रामों का अभाव होने से अर्थात् इन्द्रियजनित ज्ञान के बन्द होने से सांसारिक सुख तथा दुःख का अनुभव नहीं करता है।

यहाँ किसी ने कहा है कि केवलज्ञानी के भोजन है। क्योंकि औदारिक शरीर की सत्ता है तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय का सद्भाव है, जैसे हम लोगों के भोजन होता है। इसका खंडन करते हैं कि श्री केवलीभगवान् के औदरिक शरीर नहीं है किन्तु परम औदारिक शरीर है, जैसे कि कहा है-

अर्थात् दोष-रहित केवलज्ञानी के शुद्ध स्फटिक मणि के समान परमतेजस्वी तथा सात धातु से रहित शरीर होता है। और जो यह कहा है कि असातावेदनीय के उदय के सद्भाव से केवली के भूख लगती है और वे भोजन करते हैं सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि धान्य जौ आदि धान्य का बीज, जलादि सहकारी कारण सहित होने पर ही अंकुर आदि कार्य को उत्पन्न करता है तैसे ही असाता वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मरूप सहकारी कारण के साथ ही क्षुधा आदि कार्य को उत्पन्न करता है, क्योंकि कहा है 'मोहस्स बलेण घाददे जीवं' वेदनीय कर्म मोह के बल को पाकर जीव को घात करता है। यदि मोहनीय कर्म के अभाव होने पर भी असातावेदनीय कर्म क्षुधा आदि परिषह को उत्पन्न कर दे तो वध रोग आदि परीषह भी उत्पन्न हो जावे सो ऐसा होता नहीं है

क्योंकि कहा है 'भुक्त्युपसर्गाभावात्' केवली के भोजन व उपसर्ग नहीं होते और भी दोष यह आता है कि यदि केवली को क्षुधा की बाधा है, तब क्षुधा के कारण शक्तिक्षीण होने से अनन्तवीर्य नहीं बनेगा। तैसे ही क्षुधा द्वारा जो दुःखी होगा उसके अनन्त सुख भी नहीं हो सकेगा तथा रसना इन्द्रिय द्वारा ज्ञान में परिणमन करते हुए मतिज्ञानी के केवलज्ञान का होना भी सम्भव न होगा अथवा और भी हेतु है। असातावेदनयीय के उदय की अपेक्षा केवली के सातावेदनीय का उदय अनन्तगुणा है। इस कारण से जैसे शक्कर के ढेर में नीम का कण अपना असर नहीं दिखलाता है वैसे अनन्तगुणे सातावेदनयीय के उदय में असातावेदनीय का असर नहीं प्रगट होता तैसे ही और भी बाधक हेतु हैं। जैसे प्रमत्तसंयमी आदि साधुओं के वेद का उदय रहते हुए भी मन्द-मोह के उदय से अखण्ड ब्रह्मचारियों के स्त्री परिषह की बाधा नहीं होती है तथा-नव-ग्रैवेयक आदि के अहमिन्द्रों के वेद का उदय होते हुए भी मन्दमोह के उदय से स्त्री-सेवन सम्बन्धी बाधा नहीं होती है, तैसे ही श्री केवली अरहंत के असातावेदनीय का उदय होते हुए भी सम्पूर्ण स्नेह का अभाव होने से क्षुधा की बाधा नहीं हो सकती है। यदि ऐसा आप कहे कि मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरहगुणस्थानवर्ती जीव आहारक होते हैं, ऐसा आहारमार्गणा के सम्बन्ध में आगम में कहा हुआ है, इस कारण से केवलियों के आहार है, ऐसा मानना चाहिये। सो ठीक नहीं है क्योंकि निम्न गाथा के अनुसार आहार छः प्रकार का होता है।

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो ये लेप्माहारो।
ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

भाव यह है कि आहार छः प्रकार का होता है। जैसे-नो-कर्म का आहार, कर्मों का आहार, ग्रासरूप कवलाहार, लेप का आहार, ओज आहार तथा मानसिक आहार। आहार उन परमाणुओं के ग्रहण को कहते हैं जिनसे शरीर की स्थिति रहे। आहारक वर्गणा का शरीर में प्रवेश सो नो कर्म का आहार है। जिन परमाणुओं के समूह से देवों का, नारकियों का, मनुष्य या तिर्यंचों का औदारिक शरीर और मुनियों के आहारक शरीर बनता है उसको आहारक वर्गणा कहते हैं। कार्माण वर्गणा के ग्रहण को कर्म-आहार कहते हैं। इन्हीं वर्गणाओं से कर्मों का सूक्ष्म शरीर बनता है। अन्न पानी आदि पदार्थों को मुख द्वारा चबाकर व मुँह

चलाकर खाना पीना सो कवलाहार है। यह साधारण मनुष्यों के व द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के पशुओं के होता है। स्पर्श से शरीर पुष्टिकारक पदार्थों को ग्रहण करना सो लेप आहार है। यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायधारी एकेन्द्रिय जीवों के होता है। अंडों को माता सेती है उससे जो गर्मी पहुंचाकर अंडों का पोषण करती है सो ओज आहार है। भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी तथा कल्पवासी इन प्रकार के देवों के मानसिक आहार होता है। इनके वैक्रियिक दिव्य शरीर होता है जिसमें हाड़ मांस रूधिर नहीं होता है इसलिए इनके कवलाहार नहीं हैं, यह मांस व अन्न नहीं खाते हैं। देवों के जब कभी भूख की बाधा होती है तो उनके कंठ में से ही अमृतमई रस झर जाता है उससे ही उनकी भूख की बाधा मिट जाती है। नारकियों के कर्मों का भोगना यही आहार है तथा व नरक की पृथ्वी की मिट्टी खाते है परन्तु उससे उनकी भूख मिटती नहीं है। इन छः प्रकार के आहारों में से केवली अरहंत भगवान् के मात्र नो कर्म का आहार है। इस ही अपेक्षा से केवली अरहंतों के आहारकपना जानना चाहिये, कवलाहार की अपेक्षा से नहीं। सूक्ष्म इन्द्रियों के अगोचर रसवाले सुगन्धित अन्य मनुष्यों के लिए असंभव, कवलाहार के बिना भी कुछ कम कोटि पूर्व तक शरीर की स्थिति के कारण, सात धातुओं से रहित परमौदारिक शरीर रूप नोकर्म के आहार के योग्य आहारक वर्गणाओं के पुद्गल लाभान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय हो जाने से केवली महाराज के शरीर में योग शक्ति के आकर्षण से प्रति समय आते हैं यही केवली अरहंतों के नो कर्म के आहार की अपेक्षा से ही आहारकपना है। यदि आप कहो कि आहारकपना नोकर्म के आहार की अपेक्षा कहना तथा कवलाहार की अपेक्षा न कहना यह आप की कल्पना है। यदि सिद्धान्त में है तो कैसे मालूम पड़े तो इसका समाधान यह है कि श्री उमास्वामी महाराज कृत तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में यह वाक्य है।

'एक द्वौ त्रीन्वानाहारकः'।। (30)

इस सूत्र का भाव रूप अर्थ कहा जाता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे भव में जाने के काल में विग्रह गति के भीतर स्थूल शरीर का अभाव होते हुए नवीन स्थूल शरीर धारण करने के लिए तीन शरीर और छः पर्याप्ति के योग्य पुद्गल

पिण्ड का ग्रहण होना नो-कर्म आहार कहा जाता है। ऐसा नोकर्म आहार विग्रह गति के भीतर कर्मों का ग्रहण या कार्माण वर्गणा का आहार होते हुए भी एक, दो या तीन समय तक नहीं होता है। इसलिए ऐसा जाना जाता है कि आगम में नोकर्म आहार की अपेक्षा से आहारकपना कहा है। यदि कहोगे कि कवलाहार की अपेक्षा से है तो ग्रास रूप भोजन के काल को छोड़कर सदा ही अनाहारकपना ही रहेगा। तब तीन समय अनाहारक हैं ऐसा नियम न रहेगा। यदि कहोगे कि वर्तमान के मनुष्यों की तरह केवलियों के कवलाहार है क्योंकि केवली भी मनुष्य हैं, सो कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानोगे तो वर्तमान के मनुष्यों की तरह पूर्व काल के पुरुषों के सर्वज्ञपना नहीं रहेगा तथा राम रावण आदि को विशेष सामर्थ्य था सो यह बात नहीं बन सकेगी। और भी समझना चाहिए कि अल्पज्ञानी छद्मस्थ प्रमत्तसंयत नामा छठे गुणस्थानधारी साधु भी जिनके सात धातुरहित परम औदारिक शरीर नहीं है इस वचन से कि 'छट्ठोत्ति पढ़म सण्णा' प्रथम आहार की संज्ञा अर्थात् भोजन करने की चाह (इच्छा) छठे गुणस्थान तक ही है यद्यपि वे आहार को लेते हैं तथापि ज्ञान और संयम तथा ध्यान की सिद्धि के लिए लेते हैं, देह के मोह के लिए नहीं लेते हैं। कहा भी है-

कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते,
ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखं।। (3)
णा बलाउ साहणट्ठं ण सरिसस्स य चयट्ठं तेजट्ठं।
णाणट्ठं संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति।। (4)

भाव यह है कि मुनियों के आहार शरीर की स्थिति के लिए होता है, शरीर को ज्ञान के लिए रखते हैं, आत्मा ज्ञान, कर्म नाश करने के लिए सेवन करते हैं क्योंकि कर्मों के नाश से परम सुख होता है। मुनि शरीर के बल, आयु, चेष्टा तथा तेज के लिए भोजन नहीं करते हैं किन्तु ज्ञान, संयम तथा ध्यान के लिए करते हैं।

उन भगवान् केवली के तो ज्ञान, संयम तथा ध्यान आदि गुण स्वभाव से ही पाये जाते हैं आहार के बल से नहीं। उनको संयमादि के लिए आहार की आवश्यकता तो नहीं है क्योंकि कर्मों के आवरण न होने से संयमादि गुण तो प्रकट

हो रहे है। फिर यदि कहो कि देह से ममत्व से आहार करते हैं तो वे केवली छद्मस्थ मुनियों से भी हीन हो जायेंगे।

यदि कहोगे कि उनके अतिशय की विशेषता से प्रगट (दृश्य) रूप से भोजन की भुक्ति नहीं है, गुप्ति है, तो परमौदारिक शरीर होने से भुक्ति ही नहीं है ऐसा अतिशय क्यों नहीं होता है। क्योंकि गुप्त भोजन में मायाचार का स्थान होता है, दीनता की वृत्ति आती है तथा दूसरे भी पिंड शुद्धि में कहे हुए बहुत से दोष होते हैं जिनको दूसरे ग्रंथ से व तर्कशास्त्र से जानना चाहिए। अध्यात्म ग्रंथ होने से यहाँ अधिक नहीं कहा गया है।

यहाँ यह भावार्थ है कि ऐसा ही वस्तु का स्वरूप जानना चाहिए। इसमें हठ नहीं करना चाहिए। खोटा आग्रह या हठ करने से रागद्वेष की उत्पत्ति होती है जिससे निर्विकार चिन्दानन्दमइ एक स्वभाव रूप परमात्मा की भावना का घात होता है।

समीक्षाः-गुण एवं गुणी अभेद होते हैं। गुण को छोड़कर गुणी नहीं रहता है और गुणी को छोड़कर गुण नहीं रहता है। विश्व में केवल जीव ही चैतन्यमय एवं सुख सम्पन्न है उसको छोड़कर और बाकी कोई भी द्रव्य चैतन्यमय एवं सुख रूप नहीं है। शरीर इन्द्रियाँ भोगोपभोग की सामग्रियाँ आदि जड़मय हैं अतएव उनमें न ज्ञान है, न सुख है, न उनसे ज्ञान और सुख की उपलब्धि हो सकती है परन्तु संसारी जीव मोहनीय कर्म, वीर्यान्तरायकर्म, ज्ञानावरणीय कर्म आदि के उदय से शरीर जनित, इन्द्रिय जनित, भोगोपभोग जनित सुख दुःख को अनुभव करता है परन्तु जब मोहनीय आदि कर्म का अशेषक्षय हो जाता है तब उस जनित सुख दुःख का अनुभव नहीं करता है।

50. चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व के घात करने में असमर्थ है, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है। **(पृ.61)**

शंका-चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान-चार अघातिया कर्म यदि देवत्व के विरोधी होते तो उनकी अघाती

संज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है।

51. नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण नहीं है, क्योंकि जिन क्षीणमोह हैं। इसलिए उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयुकर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीणमोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता है और आगे होने वाले लोक शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कण्ठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिन के विद्यमान आयुकर्म अवगुणों का कारण नहीं है। तथा वेदनीय कर्म भी अवगुणों का कारण नहीं है, क्योंकि यद्यपि केवली जिन के वेदनीय कर्म का उदय पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने से अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। चार घातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिन के चार घातिया कर्म नहीं है, इसीलिए जल और मिट्‌टी के बिना बीज जिस प्रकार अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है और उसी प्रकार वेदनीय भी घाती चतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

शंका-दुःख को उत्पन्न करने वाले वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में घातीचतुष्क सहायक है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान-यदि चार घातिया कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिन के रत्नत्रय को निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि घाती चतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

घातीकर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाय तो केवली जिन को भूख और प्यास की बाधा होना चाहिये परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक तृष्णा के होने पर केवली भगवान् को मोहपने की आपत्ति प्राप्त होती है।

यदि कहा जाय कि केवली जिन तृष्णावश भोजन नहीं करते हैं किन्तु रत्नत्रय के लिये भोजन करते हैं तो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि केवली जिन पूर्ण रूप से आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं, इसलिए वे रत्नत्रय अर्थात्

ज्ञान, संयम और ध्यान के लिये भोजन करते हैं, यह बात सम्भव नहीं है। आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हैं-केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो भोजन करते नहीं है, क्योंकि उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया है। तथा केवलज्ञान से बड़ा और दूसरा ज्ञान प्राप्त करने योग्य है नहीं, जिससे उन ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवली जिन भोजन करें। इससे यह निश्चित हो जाता है कि केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो भोजन करते नहीं है। संयम के लिये केवली जिन भोजन करते हैं यह भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उन्हें यथाख्यात संयम की प्राप्ति हो चुकी है। ध्यान के लिये केवली जिन भोजन करते हैं यह कथन कीना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि उन्होंने पूर्णरूप से त्रिभुवन को जान लिया है, इसलिये उनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नहीं रहा है। अतएव भोजन करने का कोई कारण नहीं रहने के केवली जिन भोजन नहीं करते हैं यह सिद्ध हो जाता है। यदि केवली जिन आहार करते हैं तो संसारी जीवों के समान वे बल, आयु, स्वादिष्ट भोजन, शरीर की वृद्धि, तेज और सुख के लिए ही भोजन करते हैं ऐसा मानना पड़ता है परन्तु ऐसा नहीं हैं, क्योंकि ऐसा मानने पर वे मोहयुक्त हो जायेंगे और इसलिए उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

'अष्टावक्र गीता' में ऋषि अष्टावक्र ने 'आध्यात्मिक रहस्य' का प्रतिपादन करते हुए राजा जनक को सम्बोधन निम्न प्रकार से किया है-

अन्तस्यक्त कषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः।
यद्वच्छयागतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये।। (14)

अन्तः करण के राग-द्वेषादि कषायों का त्यागने वाले और शीत, उष्णादि द्वंद्व रहित तथा विषय मात्र की इच्छा से रहित जो ज्ञानी पुरुष है उसको देवगति से प्राप्त हुआ भोग न दुःखदायक होता है और न प्रसन्न करने वाला होता है।

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्व देवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति।। (2)

बड़े आश्चर्य की वार्ता है कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता जिस आत्मपद की प्राप्ति की इच्छा करते हुए आत्मपद की प्राप्ति न होने से दीनता को प्राप्त होते हैं, उस सच्चिदानन्द, स्वरूप आत्म पद के विषे स्थित अर्थात् 'तत् त्वम्' पदार्थ के ऐक्यज्ञान

से आत्मपद के विषे वर्तमान आत्मज्ञानी विषय भोग के सुख को नहीं प्राप्त होता है और उस विषय सुख के नाश होने पर शोक नहीं करता है।

तज्झस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शोह्यन्त र्न जायते।

नह्याकारशास्य धूमेन दृश्यमानापि सङ् गति।। (3)

तत्त्वज्ञानी का अन्तः करण के धर्म जो पुण्य-पाप उनसे सम्बन्ध नहीं होता, वह वेदोक्त विधि-निषेध के बन्धन में नहीं होता है, क्योंकि जिसको आत्मज्ञान हो जाता है, उसके अन्तः करण में पाप-पुण्य का सम्बन्ध नहीं होता है, जिस प्रकार धूम आकाश में जाता है, परन्तु उस धूम का आकाश से सम्बन्ध नहीं होता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरूते तथा।' अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्म रूपी ईन्धन को भस्मसात् करता है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्माणि ते स्थिता।।

जिसका मन समत्व में स्थिर हो गया है उन्होंने इस देह में रहते ही संसार को जीत लिया है। ब्रह्म, निष्कलंक और समभावी है इसलिये वे ब्रह्म में ही स्थिर होते हैं।

अतीन्द्रिय ज्ञान ही केवलज्ञान

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया।

सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं।। (21) प्रवचन.

The omniscient who develops knowledge directly visualizes all objects and their modifications; he does never comprehend them through the sensational stages such as outlinear grasp.

आगे कहते हैं कि केवलज्ञानी अतीन्द्रिय ज्ञान में परिणमन करते हैं इस कारण से उनको सर्वपदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं। (खलु) वास्तव में (णाणं) अनन्त पदार्थों को जानने में समर्थ केवल ज्ञान को (परिणमदो) परिणमन करते हुए केवली अरहंत भगवान् के (सव्वदव्वपज्जाया) सर्व द्रव्य और उनकी तीन कालवर्ती सर्व पर्यायें (पच्चक्खा) प्रत्यक्ष हो जाती हैं। (स) वह केवली भगवान् (ते) उन सर्व द्रव्य पर्यायों को (ओग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं) अवग्रह पूर्वक क्रियाओं के द्वारा (णेवविजाणदि) नहीं जानते हैं किन्तु युगपत् जानते हैं ऐसा अर्थ है।

इसका विस्तार यह है आदि और अन्त रहित, बिना किसी उपादानकारण के सत्ता रखने वाले तथा चैतन्य और आनन्दमयी स्वभाव के धारी अपने शुद्ध आत्मा को उपादेय अर्थात् ग्रहण योग्य समझकर केवलज्ञान की उत्पत्ति का बीजभूत जिसको आगम की भाषा में शुक्ल ध्यान कहते हैं, वह होने से रागादि विकल्पों के जाल से रहित स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जब यह आत्मा परिणमन करता है तब स्वसंवेदनज्ञान के फलस्वरूप केवल ज्ञानमयी पैदा होता है, तब क्रम क्रम से जानने वाले मति ज्ञानादि के अभाव से, बिना क्रम के एक साथ सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल सहित सर्व-द्रव्य , गुण और पर्याय प्रत्यक्ष प्रतिभासमान हो जाते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से जो केवलज्ञान प्रगट होता है वह केवलज्ञान अनंत ज्ञेय को प्रकाशित करने वाली शक्ति से युक्त होता है। एक जीव में असंख्यात आत्मप्रदेश होते हैं केवलज्ञानी के उस असंख्यात आत्म प्रदेश में से एक आत्म प्रदेश में जितनी ज्ञान रूपी ज्योति है, उस ज्योति से जो लोक-अलोक है उससे भी अधिक द्रव्य होता तो भी प्रकाशित हो जाता। इसलिए गुणभद्र स्वामी ने कहा है यह लोक-अलोक जिस ज्ञान के एक कोने में विलीन हो जाता है। इसलिये केवलज्ञानी समस्त लोक-(विश्व) अलोक के सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थ/सत्य की त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को/अवस्थाओं को/परिणमन को स्पष्ट/विशद/युगपत्/ एक साथ जानते हैं। यदि वे क्रम से जानेंगे तब वे सम्पूर्ण ज्ञेय को बहुकाल तक भी नहीं जान पायेंगे क्योंकि एक ही द्रव्य में अनंत गुण और अनंत पर्यायें होती है। तब एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य, अनंत जीव द्रव्य, अनंतानंत पुद्गल द्रव्य की अनंतानंत पर्यायों को कैसे जान सकेंगे? इसलिए केवली भगवान् अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणापूर्वक नहीं जानते हैं परन्तु एक साथ देखते और जानते हैं। इतना ही नहीं, छद्मस्थ जीवों की ज्ञान प्रवृत्ति जिस प्रकार दर्शन पूर्वक होती है उसी प्रकार केवली भगवान् की प्रवृत्ति क्रम से नहीं युगपत् होती है। द्रव्य संग्रह में कहा भी है-

दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं दोण्णि उवओग्गा।
जुगवं जम्हा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि।। (44)

छद्मस्थ जीवों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। क्योंकि छद्मस्थों के ज्ञान और

दर्शन ये दोनों उपयोग एक समय में नहीं होते। तथा जो केवली भगवान् हैं उनके ज्ञान तथा दर्शन ये दोनों ही उपयोग एक समय में होते हैं।

मोह क्षय के बाद एक साथ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तरायकर्म का क्षय होता है जिसके कारण केवलज्ञान एवं केवलदर्शन एक साथ निरावरण हो जाते हैं। जब एक साथ निरावरण होने का अन्य कोई कारण नहीं जिससे प्रवृत्ति क्रम से हो सके। जिस उमास्वामी आचार्य को दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों मानतें हैं उनकी कृति तत्त्वार्थ सूत्र में लिखा हुआ कि-

'मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्'। (1)

मोह का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रगट होता है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। (29)

केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्यों और उनकी सब पर्यायों में होती है। राजवार्तिक में अकंलक देव स्वामी इस सूत्र का वार्तिक करते हुए कहते हैं कि-

सर्व ग्रहणं निरवशेषप्रतिप्रत्यर्थं। (91)

निरवशेष (सम्पूर्ण) का ज्ञान कराने के लिए सर्व शब्द को ग्रहण किया है। लोक और अलोक में त्रिकालविषयक जितने भी अनन्तानंत द्रव्य और पर्यायें हैं उन सब में केवलज्ञान के विषय का निबन्ध है अर्थात् उन सबको केवलज्ञान जानता है। जितने ये अनन्तानन्त लोक-अलोक द्रव्य हैं इससे भी अनन्तगुणे लोक और अलोक और भी होते तो भी केवलज्ञान जान सकता है। क्योंकि केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है ऐसा जानना चाहिए। परमात्म प्रकाश में भी योगेन्द्र देव ने इसी भाव को प्रगट किया हैः-

गयणि अणंति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ।
मुक्कहँ जसु पए बिंबियउ सो परमाप्पु अणाइ।। (38)

जैसे अनंत आकाश में नक्षत्र है उसी तरह तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिंबित हुए दर्पण में मुख की तरह भासता है, वह परमात्मा अनादि है।

महान् दार्शनिक तार्किक सिद्धसेन को मानते हैं ऐसे महान् आचार्य ने अपनी

कृति सन्मति सूत्र में क्रम प्रवृति का खण्डन कर युगपत् प्रवृति का मण्डन किया है। इसका उद्धरण हम निम्न में कर रहे हैं-

मणपज्जवणाणंतो णाणस्य य दरिसणस्स य विसेसो।
केवलणाणं पुण दंसणं ति णाणं ति य समाणं।। (3)

ज्ञान और दर्शन के समय की भिन्नता मनः पर्ययज्ञान तक होती है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान में दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, पहले दर्शन होता है और उसके पश्चात् ज्ञान होता है। किन्तु केवलज्ञान या पूर्णज्ञान होने पर दर्शन और ज्ञान में क्रम नहीं होता। केवलज्ञान की अवस्था में ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं क्योंकि दर्शन और ज्ञान का क्रम छद्मस्थों (अल्पज्ञानियों) में पाया जाता है। केवलज्ञान में ज्ञान तथा दर्शन के उपयोग-काल में भिन्नता नहीं है।

केइ भणंति जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो त्ति।
सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू।। (4)

कई (श्वेताम्बर) आचार्य तीर्थंकरों की अवज्ञा से भयभीत हो आगम ग्रन्थों का अवलंबन लेकर यह कहते हैं कि जिस समय सर्वज्ञ जानते हैं उस समय देखते नहीं हैं। वे अन्य अल्प ज्ञानियों की भांति सर्वज्ञ में भी दर्शनपूर्वक ज्ञान क्रमशः मानते हैं। क्योंकि जिस समय जानने की क्रिया होगी उस समय देखने कि क्रिया नहीं हो सकती और जिस समय देखने की क्रिया होगी उस समय जानने की क्रिया नहीं हो सकती। दोनों में समय मात्र का अन्तर अवश्य पड़ता है। किन्तु सर्वज्ञ के सम्बन्ध में यह कहना ठीक नहीं है।

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं।
तह दंसणं पि जुज्झइ णियआवरणक्खयस्संते।। (5)

जिस प्रकार अवरोधक जलधरों (मेघ समूह) के हटते ही दिनकर का प्रताप एवं प्रकाश एक साथ प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार कर्मो के आवरणों का अपसरण होते ही केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि ज्ञान, दर्शन के आवरण के क्षय हो जाने पर कोई ऐसा कारण नहीं है, जिससे वे विद्यमान रह सकें।

भण्णइ खीणावरणे जह मइणाणं जिणे ण संभवइ।
तह खीणावरणिज्जे विसेसओ दंसणं णत्थि।। (6)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान और केवलज्ञान ये पाँचों एक ही ज्ञान के भेद हैं। अल्पज्ञानी (छद्मस्थ) के इनमें से केवलज्ञान को छोड़ कर चार ज्ञान तक हो सकते हैं, किन्तु केवलज्ञानी के एक केवल ज्ञान ही होता है। इसलिए उनके मतिज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार से केवली के मतिज्ञान नहीं होता, वैसे ही भिन्न-काल में केवलदर्शन भी सम्भव नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि केवली के ज्ञान, दर्शन एक साथ होते हैं क्योंकि वह क्षायिक है-कर्म के क्षय होने पर उत्पन्न होता है।

सुत्तम्मि चेव साईअपंज्जवसियं ति केवलं वुत्तं।
सुत्तासायणभीरूहि तं च दट्ठव्वयं होइ।। (7)

आगम में केवलदर्शन और केवलज्ञान को सादि-अनन्त कहा गया है। अतः आगम की आसादना से डरने वालों को इस पर विशेष विचार करना चाहिए कि क्रम भावी मानने पर सादि-अनन्तता किस प्रकार बन सकती है? यदि ऐसा माना जाए कि जिस समय केवलदर्शन होता है, उस समय केवलज्ञान नहीं होता, तो इस मान्यता से आगम का विरोध करना है और इससे केवलदर्शन-केवलज्ञान में सादि-अनन्तता न बनकर सादि-सान्तता घटित होगी जो आगमोक्त नहीं है। इसलिए आगम का विरोध न हो, इस अभिप्राय से क्रमभावित्व न मानकर युगपत्/समकाल-भावित्व मानना चाहिए।

संतम्मि केवले दंसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि।
केवलणाणम्मि य दंसणस्स तम्हा सणिहणाइं।। (8)

केवली भगवान् के केवलदर्शन के होने पर केवलज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार केवलज्ञान होने पर केवलदर्शन नहीं होता। क्योंकि इस प्रकार का क्रमत्व उनके नहीं होता। दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय एक काल में समान रूप से होने के कारण केवलदर्शन और केवलज्ञान एक समय में एक ही साथ समान रूप से उत्पन्न होते हैं। फिर, यह प्रश्न उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता कि क्रमवाद पक्ष में केवली की आत्मा में ज्ञान, दर्शन में से पहले कौन उत्पन्न होता है?

दंसणणाणवरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वयरं।
होज्ज समं उप्पाओ हंदि दुवे णत्थि उवओगा।। (9)

आगम का विरोध करने वालों के लिए स्पष्टीकरण के निमित्त यह गाथा कही

गई है कि दर्शनावरण तथा ज्ञानावरण का विनाश एक साथ होने से केवलदर्शन और केवलज्ञान की उत्पत्ति एक साथ हो जाती है। यदि क्रम से माना जाए, तो दर्शन और ज्ञान में से किसकी उत्पत्ति पहले होती है? इसी प्रकार से दोनों उपयोग क्रम से होते हैं या अक्रम से? इसका स्पष्टीकरण यही है कि पूर्वापर क्रम से दर्शन, ज्ञान केवली में मानना न्याय संगत नहीं हैं। क्योंकि क्रमवाद पक्ष में इन दोनों में सावरण मानना पडता है जो संभव नहीं है। सामान्यतः दोनों उपयोग क्रम से होते हैं। परन्तु केवलज्ञान-काल में केवली सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ को एक ही समय में जानते है, इसलिए उनके दर्शन और ज्ञान उपयोग एक साथ होते है। वास्तव में कार्य रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीति न होने के कारण सामान्यतः एक उपयोग कहा जाता है।

जइ सव्वं सायारं जाणइ एक्कसमएण सव्वण्णू।
जुज्जइ सया वि एवं अहवा सव्वं ण याणाइ।। (10)

यदि सर्वज्ञ एक समय में सभी पदार्थ को सामान्य-विशेष रूप आकार सहित जानते हैं, तो यह मान्यता युक्ति युक्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से मानने पर उनमें सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता नहीं बन सकेगी। क्योंकि दोनों प्रकार के उपयोग (दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग) अपने-अपने विषय को भिन्न-भिन्न से जानते हैं। जिस समय एक उपयोग सामान्य का ज्ञाता होता है, उस समय विशेष का ज्ञान कैसे हो सकता है? इसी प्रकार जब दूसरा उपयोग विशेष का ज्ञाता होता है, तो उसका कार्य भिन्न होता है। इसलिए वस्तु में पाए जाने वाले उभय धर्मो (सामान्य, विशेष) का ज्ञाता एक उपयोग नहीं हो सकता। अतएव इन उपयोगों में से क्रमशः जानने वाला सर्वज्ञ नहीं हो सकता। क्योंकि उनमें एक चैतन्य प्रकाश पाया जाता है।

परिसुद्धं सायारं अवियत्तं दंसवं अणायारं।
ण य खीणावरणिज्जे जुज्जइ सुवियत्तमवियत्तं।। (11)

यह कथन करना कि केवली जिस समय साकार ग्रहण करते हैं, उस समय केवलदर्शन (अनाकार) अव्यक्त रहता है और जब वे दर्शन ग्रहण करते हैं, तब साकार अव्यक्त होता है, उचित नहीं है, क्योंकि उपयोग की यह व्यक्त एंव अव्यक्त दशा आवरण का सर्वथा विलय कर देने वाले केवली में नहीं बनती है।

अद्दिट्ठं अण्णायं च केवली एव भासइ सया वि।

एगसमयम्मि हंदी वयणवियप्पो ण संभवइ।। (12)

केवली सदा की अदृष्ट, अज्ञात पदार्थों का कथन करते हैं-ऐसा कहने से वे दृष्ट एवं ज्ञात पदार्थो के एक समय में उपदेशक होते हैं, यह वचन नहीं बन सकता है।

अण्णायं पासंतो अद्दिट्ठं च अरहा वियाणंतो।

किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्हु त्ति वा होइ।। (13)

यदि केवली अर्हन्त पदार्थ के द्रष्टा और अदृष्ट पदार्थ के ज्ञाता है, तो इस स्थिति में उनमें एक समय में सर्वदर्शित्व तथा सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि उनमें विद्यमान दर्शन, ज्ञान, अपने-अपने विषय को देखने-जानने वाला है। जिस समय वह देखेंगे, उस समय जानेंगे नहीं और जिस समय जानेंगे, उस समय देखेंगे नहीं। इस प्रकार एक समय में एक साथ सामान्य-विशेष को जानने वाला उपयोग नहीं होता। अतः उनमें सर्वदर्शित्व तथा सर्वज्ञत्व भी नहीं बन सकता।

केवलणाणमणंतं जहेव तह दंहणं पण्णत्तं।

सागारग्गहणाहि य णियमपरित्तं अणागार। (14)

आगम में केवली भगवान् का दर्शन और ज्ञान अनन्त कहा गया है। परन्तु उनके दर्शन, ज्ञान के उपयोग में क्रम माना जाय तो साकार ग्रहण की अपेक्षा से परिमित विषय वाला होगा, जिससे उनके दर्शन में अनन्तता नहीं बन सकती। अतएव केवली भगवान् में एक समय में ही दोनों उपयोग मानना चाहिए।

केवलज्ञान के लिए परोक्ष कुछ भी नहीं है-

णात्थि परोक्खं किंचि वि समतं सव्वक्खगुणसमिद्धस्स।

अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स।। (22)

आगे कहते है-केवलज्ञानी को सर्व प्रत्यक्ष होता है, यह बात अन्वयरूप से पूर्व सूत्र में कही गई। अब केवलज्ञानी को कोई भी विषय परोक्ष नहीं है, इसी बात को व्यतिरेक से दृढ़ करते हैं।

(समंत) समस्तपने अर्थात् सर्व आत्मा के प्रदेशों के द्वारा (सव्वक्खगुणसमिद्धस्स) सर्व इन्द्रियों के गुणो से परिपूर्ण अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध,

वर्ण, शब्द के जानने रूप जो इन्द्रियों के विषय उन सर्व के जानने की शक्ति सर्व आत्मा के प्रदेशों में जिसके प्राप्त हो गई है ऐसे तथा (अक्खातीदस्स) इन्द्रियों के व्यापार से रहित अथवा ज्ञान करके व्याप्त है आत्मा जिसका ऐसे निर्मल ज्ञान से परिपूर्ण और (सयमेव हि) स्वयमेव ही (णाणजादस्स) केवलज्ञान में परिणमन करने वाले अरहंत भगवान् के (किंचि वि) कुछ भी (परोक्खं) परोक्ष (णत्थि) नहीं है।

भाव यह है कि परमात्मा अतीन्द्रिय स्वभाव है (परमात्मा के स्वभाव) से विपरीत क्रम से ज्ञान में प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियाँ हैं। उनके द्वारा जानने से जो उल्लंघन कर गये है अर्थात् जिस परमात्मा के पराधीन ज्ञान नहीं है ऐसे परमात्मा तीन कालवर्ती समस्त पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानने को समर्थ अविनाशी तथा अखंडपने से प्रकाश करने वाले केवल ज्ञान में परिणमन करते हैं, अतएव उनके लिए कोई भी परोक्ष नहीं है। इस तरह केवलज्ञानियों को सर्व प्रत्यक्ष होता है।

समीक्षा–आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान स्वरूप होने के कारण स्वयं से ही आत्मा देखता है, जानता है, उसके लिए अन्य बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं रहती है परन्तु जब ज्ञान कर्मरूपी आवरण से आवृत्त हो जाता है तब वह ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से अब कुछ नहीं देख पाता है, न ही जान पाता है, उस समय में वह बाह्य साधनों के माध्यम से कुछ देखता है कुछ जानता है। जैसे कोई व्यक्ति एक गृह के अन्दर है बाहर उसे कुछ देखता है तब वह द्वार या खिड़की के माध्यम से देखता है। उस व्यक्ति के खिड़की या द्वार के माध्यम से देखने पर भी खिड़की या द्वार स्वयं नहीं देखते हैं परन्तु उसके माध्यम से व्यक्ति देखता है, वैस ही कर्म रूपी गृह में आबद्ध जीव इन्द्रियाँ, मन, प्रकाश आदि से देखता है, जानता है इन्द्रियादि स्वयं नहीं देखते है परन्तु उनके माध्यम से जीव देखता है या जानता है। जैसे आवरण से रहित खुले मैदान में स्थित व्यक्ति बिना खिड़की या द्वार से बाहर देखता है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि आवरण से रहित जीव बिना इन्द्रियों से देखता है, जानता है। इन्द्रियों के बिना देखने व जानने पर भी जीव इन्द्रियों के विषय के साथ-साथ इन्द्रियातीत विषयों को भी देखता है और जानता है। इतना ही नहीं छद्मस्थ जीव इन्द्रियों से जो विषय-जानता है उससे भी अधिक स्पष्ट उस इन्द्रिय के विषय को केवलज्ञानी जानते है। जैसे-सामान्य चक्षु से सामान्य व्यक्ति जितना देखता है उससे भी अधिक स्पष्ट सूक्ष्मदर्शी

या दूरदर्शी यंत्र से देख सकता है। सर्वज्ञ भगवान् समस्त इन्द्रियों के विषय को देखते व जानते हुए भी सामान्य रागी, द्वेषी, मोही जीव के समान ज्ञेय से न मोहित होते है, न आकर्षित-विकर्षित होते हैं। वे पाँच इन्द्रियों के विषय को प्रत्येक प्रदेशस्थ केवलज्ञान से जानते हैं। केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार अलौकिक शक्ति का वर्णन गौतम गणधर स्वामी ने निम्न प्रकार से किया है-

यःसर्वाणि चराचराणि विधिवद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्-प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्चते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।। (प्रति. सूत्र)

जो सम्पूर्ण चर-अचर द्रव्यों को, उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी भूत, भावी तथा वर्तमान सब पर्यायों को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषों को लिए हुए युगपत् (कालक्रम से रहित एक साथ) प्रतिक्षण जानते हैं, इसलिए उन्हें सर्वज्ञ कहते है, उन सर्वज्ञ महान् गुणोत्कृष्ट, अंतिम जिनेश्वर को नमस्कार हो।

हे आयुष्मान् भव्यो! इस विश्व में देव, असुर और मनुष्यों सहित प्राणीगण को अन्य स्थान से यहाँ आना, यहाँ से अन्य गति में जाना, च्यवन और उपपाद अर्थात् च्युत होना और जन्म लेना कर्मों का बंध, कर्मो का छुटकारा, ऋद्धि, स्थिति द्युति-चमक, कर्मों का फल देने का सामर्थ्य, तर्क शास्त्र, बहत्तरकला या गणित विद्या परकीयचित्त मनकी चेष्टा पूर्व अनुभूत पूर्वकृत पुनः सेवित कर्मभूमि के अनुप्रवेश में प्रथमतः प्रवृत्त असि, मसि कृष्यादिककर्म अकृत्रिमद्वीप समुद्रादिका प्रकट कर्म तीन सौ तैतालीस रज्जुप्रमाण सर्वलोक में सब जीवों को सब भावों और सब पर्यायों को एक साथ जानते हुए देखते हुए विहार करते हुए काश्यप गोत्रीय, श्रमण, भगवान्, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महतिमहावीर अन्तिम तीर्थंकर देखते हुए पच्चीस भावनाओं सहित, मातृका पदों सहित, उत्तरपदों सहित रात्रि भोजन विरमण है। छठा अणुव्रत जिनमें ऐसे पाँच महाव्रतरूप समीचीन धर्मों का उपदेश किया है, वह मैंने उनकी दिव्यध्वनि से सुना है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।। पु.सि.उ (1)

जिसमें सम्पूर्ण अनंतपर्यायों से सहित समस्त पदार्थों की माला अर्थात् समूह दर्पण के तल भाग के समान झलकती है, वह उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवलज्ञान रूपी प्रकाश जयवंत हो।

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं।

लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदव्वं।। (460 गो. जी.)

यह केवलज्ञान, सम्पूर्ण, केवल (स्वाधीन) प्रतिपक्ष रहित, सर्व पदार्थगत और लोकालोक में अन्धकार रहित होता है।

असहायं स्वरुपोत्थं निरावरमणक्रमम्।

घातिकर्मक्षयोत्पन्नं केवलं सर्वभावगम्।। (30 त.सा.)

जो किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो, आत्म-स्वरूप से उत्पन्न हों, आवरण से रहित हो, क्रमरहित हो, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

जया सव्वत गणाणं दंसणं चाभिगच्छई।

तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।। (दशवैकालिक)

जब मनुष्य सर्वत्रगामी ज्ञान और दर्शन-केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है।

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य।

अणेण णाणे त्तिणं वेंति।। (299 गो.जी.)

जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयक भूत-भविष्यत् वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको केवलज्ञान कहते हैं।

सूक्ष्मान्तरित-दूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।

अनुमेयत्वोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः।। (5 देवागम)

सूक्ष्म पदार्थ- स्वभावविप्रकर्षि आदिक-अन्तरित पदार्थ-काल से अन्तर को लिए हुए काल विप्रकर्षि राम-रावणादिक, और दूरवर्ती पदार्थ-क्षेत्र से अन्तर को लिए हुए क्षेत्र विप्रकर्षि मेरु-हिमवानादिक, अनुमेय (अनुमान का अथवा प्रमाण का

विषय) होने से किसी न किसी के प्रत्यक्ष जरूर हैं, जैसे-अग्नि आदिक पदार्थ जो अनुमान या प्रमाण का विषय है, वे किसी के प्रत्यक्ष जरूर हैं। जिसके सूक्ष्म, आन्तरिक और दूरवर्ती पदार्थ प्रत्यक्ष है वह सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ की सम्यक् स्थिति, व्यवस्था अथवा सिद्धि भले प्रकार सुघटित है।

समीक्षा-जीव अनादि काल से मोह से आवृत होने के कारण वह वस्तु स्वरूप के विपरीत ही श्रद्धान करता है। वह सत् को असत्य रूप, सुख को असुख रूप, धर्म को अधर्म रूप श्रद्धान करता है। अनादि काल से देह को प्राप्त करके वह देह जनित व इन्द्रिय जनित सुख दुःख को ही अनुभव करता है इसलिए वह कूप-मण्डूक के समान वह इन्द्रिय जनित सुख को ही सुख मानकर बैठ जाता है। घाति कर्म से रहित जो आत्मोत्थ अतीन्द्रिय सुख है उसे वह न जानता है न श्रद्धान करता है। इष्टोपदेश में कहा भी है-

मोहेन संवृत्तं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।। (7) (इष्टोपदेश)

जिस तरह मादक कोदों खाने से उन्मत्त (पागल) हुआ पुरुष पदार्थों का यथार्थ स्वरूप नहीं जानता उसी प्रकार मोहनीय कर्म के द्वारा आच्छादित ज्ञान भी पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकता।

परन्तु जो भव्य है वह आगे गुरु उपदेश आदि अंतरंग एवं बहिरंग कारण को प्राप्त करके सम्यक्दृष्टि बनता है तब विश्वास करता है कि आत्मा में ही अव्याबाध अनंत सुख है जो घाति कर्म के अभाव से जीव में प्रकट होता है। यथा-

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः।। (21) (इष्टोपदेश)

यह आत्मा स्व-संवेदन प्रत्यक्षका विषय है, कर्मोदय से प्राप्त अपने छोटे-बड़े शरीर के बराबर है। अविनाशी है-द्रव्यदृष्टि से नित्य है-उसका कभी विनाश नहीं होता, अत्यन्त सुख-स्वरूप है-आत्मोत्थ अनन्त सुख स्वभाव वाला है। और लोक अलोक का साक्षात् करने वाला है।

परन्तु जो अभव्य है वह घाति कर्म के अभाव से आत्मोत्थ अनन्त सुख केवली को होता है यह नहीं मानता है। क्योंकि अभव्य कभी भी दर्शन मोहनीय कर्म

का उपशम, क्षयोपशम करके सम्यक्दृष्टि नहीं बन सकता है जिसके कारण वह सतत् मिथ्यादृष्टि रहता है। इस मिथ्यात्व के कारण ही वह केवली को अनन्त सुख होता है यह नहीं मानता है, क्योंकि मिथ्यात्व का कार्य विपरीत श्रद्धान करना है। यथा-

मिच्छतं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।। (17)

उदय में मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभव न करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभाव को अथवा मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता। इसमें दृष्टान्त देते हैं-जैसे पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रस को पसन्द नहीं करता उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रूचता।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।

सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।। (18)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् जिनेन्द्र आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ ये तीन इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम प्रकष्ट रूप से जो कहा जाता है अर्थात् प्रमाण के द्वारा कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं। तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानी आप्त, आगम, पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

इन्द्रिय सुख को भोगने के कारण

मणुयासुरामरिंदा अहिद्दुदा इंदियेहिं सहजेहिं।

असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु।। (63)

Lords of men, Asuras and Amaras, harassed by senses that are born with them, being unable to bear with the pain, sport themselves with attractive objects of senses.

आगे संसारी जीवों के जो इन्द्रियजनित ज्ञान के द्वारा साधा जाने वाला इन्द्रिय सुख होता है उसका विचार करते है।

(मणुआऽसुरामरिंदा) मनुष्य, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी तथा कल्पवासी देव, मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती राजा तथा चार प्रकार के देवों के सर्व इन्द्र (सहजेहिं) अपने-अपने शरीर में उत्पन्न हुई अथवा स्वभाव से पैदा हुई (इंदिएहिं) इन्द्रियों की चाह के द्वारा (अहिद्दुदा) पीड़ित या दुःखित होकर (तं दुक्खं असहंता) उस दुःख की तीव्र धारा को न सहन करते हुए (रम्मेसु विषएसु) सुन्दर मालूम होने वाले इन्द्रियों के विषयों में (रमंति) रमण करते हैं।

इसका विस्तार यह है कि जो मनुष्यादिक जीव अमूर्त अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुख के अस्वाद को नहीं अनुभव करते हुए मूर्तिक इन्द्रियजनित ज्ञान तथा सुख के निमित्त पाँचों इन्द्रियों के भोगों में प्रीति करते हैं उनमें जैसे गरम लोहे का गोला चारों तरफ से पानी को खींच लेता है उसी तरह पुनः पुनः विषयों में तीव्र तृष्णा पैदा होती है। उस तृष्णा को न सह सकते हुये वे विषय भोगों का स्वाद लेते हैं इसलिए ऐसा जाना जाता है कि पाँचो इन्द्रियों की तृष्णा रोग के समान है तथा उसका विषय भोग करना यह औषधि के समान है। इसलिए संसारी जीवों को वास्तविक सच्चे सुख का लाभ नहीं होता है।

प्रत्येक जीव का स्वाभाविक स्वरूप सुख स्वरूप है इसलिए प्रत्येक जीव सुख चाहता है, परन्तु अनादिकालीन परतन्त्रता के कारण संसारी जीव सहज आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करने में असमर्थ है। उस कर्म परतन्त्रता के कारण शारीरिक, मानसिक एवं इन्द्रिय जनित दुःख होते हैं। उन दुःखों से पीड़ित होकर सुख की इच्छा से मोह से मोहित होकर इन्द्रिय जनित सुख का भोग करते हैं। बिना दुःख कोई इन्द्रिय जनित सुख को नहीं चाह सकता है। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति पानी को चाहता है, भूखा व्यक्ति भोजन को चाहता है, सर्दी से पीड़ित व्यक्ति उष्ण वस्तु को चाहता है, रोग से संतप्त व्यक्ति औषध को चाहता है, खुजली रोग से पीड़ित व्यक्ति खुजालता है उसी प्रकार संसार के जीव विभिन्न दुःखों से पीड़ित होकर उसकी तात्कालिक निवृत्ति के लिए इन्द्रिय जनित सुख चाहते हैं।

परन्तु जिस प्रकार प्यासादि से रहित व्यक्ति पानी आदि को नहीं चाहता है उसी प्रकार इन्द्रिय जनित दुःखों के बिना इन्द्रिय जनित सुखों को नहीं चाह सकता है। यह क्रम स्वर्ग के देवों से स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है क्योंकि नीचे-नीचे के स्वर्ग के देव इन्द्रिय जनित दुःख से अधिक पीड़ित होने के कारण अधिक-अधिक भोग सेवन करते हैं और उत्तरोत्तर (ऊपर-ऊपर) के देव इन्द्रिय जनित दुःख से कम पीड़ित होने के कारण इन्द्रिय जनित भोग कम सेवन करते हैं। जैसे सर्वार्थसिद्धि आदि के कुछ विशिष्ट देव प्रवीचार (मैथुन) ही नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें वेद कर्म जनित विशेष पीड़ा का अभाव है। गुणस्थान की अपेक्षा पहले-पहले गुणस्थानों में इन्द्रिय जनित पीड़ा अधिक है और उत्तरोत्तर इन्द्रिय जनित पीड़ा कम होती जाती है। जीव इन्द्रिय जनित भोगों को क्यों भोगना चाहता है इसका आगमोक्त अनुभव परक सुन्दर वर्णन महाप्राज्ञ पं. आशाधरजी ने किया है-

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखा सागरा विषयोन्मुखाः।। (2) सा. धर्मा.

अनादिकालीन अविद्या रूपी दोष से उत्पन्न हुई चार संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित, सदा आत्मज्ञान से विमुख और विषयों में उन्मुख गृहस्थ होते हैं।

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रन्थसंज्ञामपासितुम्।
अपारयन्तः सागराः प्रायोविषयमूर्च्छिताः।। (3)

अनादि विद्या के साथ बीज और अंकुर की तरह परम्परा से चली आयी परिग्रह संज्ञा को छोड़ने में असमर्थ और प्रायः विषयों में मूर्च्छित सागर होते हैं।

ज्ञानिसङ्गत्तपोध्यानैरप्यसाध्यो रिपुः स्मरः।
देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्यैणैव साध्यते।। (32)

आत्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों की संगति, तप और ध्यान से भी वश में न आने वाला वह शत्रु कामदेव शरीर और आत्मा के भेदज्ञान से उत्पन्न हुये वैराग्य से ही वश में आता है।

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्ये भेदज्ञानाय तादृशम्।
धिङ्मादृशकलत्रेच्छातंत्रगार्हस्थ दुःस्थितान्।। (33)

भरत चक्रवर्ती आदि जिन पुरुषों ने भेदज्ञान के लिए ऐसे विशाल राज्य को

त्याग दिया, वे धन्य हैं। जिसमें स्त्री की इच्छा ही प्राधान्य है उस गृहस्थाश्रम में दुःख पूर्ण जीवन बिताने वाले हमारे जैसे विषयी लोगों को धिक्कार है।

इतः शमश्री स्त्रीचेतः कर्षतो मा जयेन्नु का।
आज्ञातमुत्तरैवात्र जेत्री आ मोहराट्चमूः।। (34)

इस ओर से प्रशम सुखरूप लक्ष्मी और दूसरी ओर से स्त्री मेरे चित्त को आकृष्ट करती है। इनमें से किसकी जीत होगी? अथवा मुझे निश्चय हो गया कि इन दोनों में से स्त्री ही जीतेगी, जो मोह राजा की सेना है।

चित्रं पाणिगृहीतीयं कथं मा विण्वगाविशत्।
यत्पृथग्भावितात्माऽपि समवैम्यनया पुनः।। (35)

आश्चर्य है कि यह पाणिगृहीती अर्थात् जिसका मैंने पाणिग्रहण किया है कैसे मुझमें चारों ओर से घुस गयी। क्योंकि मैं भिन्न हूँ और यह मुझसे भिन्न है इस प्रकार तत्त्व ज्ञान से बारम्बार विचार करने पर भी मैं फिर उसके साथ अपने को एकमेक कर लेता हूँ।

स्त्रीतश्चित्त निवृत्तं चेन्ननु वित्तं किमीहसे।
मृतमण्डनकल्पो हि स्त्रीनिरीहे धनग्रहः।। (36)

हे चित! यदि तुम विवेक के बल से स्त्री से निवृत्त हो तो फिर धन की इच्छा क्यों करते हो? क्योंकि स्त्री के प्रति निस्पृह होने पर धन का अर्जन-रक्षण आदि वैसा ही है जैसे मुर्दे को सजाना।

जहाँ तक इन्द्रिय सुख है वहाँ तक दुःख है-

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भायं वावारो णत्थि विसयत्थं।। (64)

Know that misery to be natural for those who are attached to the objects of senses; if it is not natural, there would not be any attempt for the objects of senses.

आगे कहते है कि जब तक इन्द्रियों के द्वारा यह प्राणी विषयों के व्यापार करता रहता है तब तक इसको दुःख ही है।

(जेसिं विसयेसु रदी) जिन जीवों की विषय रहित अतीन्द्रिय परमात्म

स्वरूप से विपरीत इन्द्रियों के विषयों में प्रीति होती है। (तेसिं सब्भावं दुक्खं वियाण) उनको स्वाभाविक दुःख जानो अर्थात् उन बहिर्मुख मिथ्यादृष्टि जीवों को अपने शुद्ध आत्मद्रव्य के अनुभव से उत्पन्न, उपाधि रहित निश्चय सुख से विपरीत स्वभाव से ही दुःख होता है, ऐसा जानो। (जदि तं सब्भावं ण हि) यदि वह दुःख स्वभाव से निश्चय करके न होवे तो (विसयत्थ वावारो णत्थि) विषयों के लिये व्यापार न होवे। जैसे रोग से पीड़ित होने वालों के लिये औषधि का सेवन होता है, वैसे ही इन्द्रियों के विषयों के सेवन के लिये ही व्यापार दिखाई देता है। इसी से वह जाना जाता है कि उनके दुःख हैं, ऐसा अभिप्राय है।

जिनकी हत (निकृष्ट-निंद्य) इन्द्रियाँ जीवित अवस्था में है उनके उपाधि के कारण से होने वाला (बाह्य संयोग के कारण से होने वाला औपाधिक) दुःख न भी हो तो स्वाभाविक दुःख है ही, क्योंकि (उनकी) विषयों में रति देखी जाती है। हाथी के हथिनी रूपी कुट्टनी के शरीर स्पर्श की तरह, मछली के बंसी में फँसे हुए मांस के स्वाद की तरह, भ्रमर बन्द होने से सन्मुख-कमल की गंध की तरह, पतंग के दीपक की ज्योति के रूप की तरह और हिरन के शिकारी के स्वर की तरह दुर्निवार इन्द्रिय वेदना के वशीभूत होते हुए उनके (अर्थात् जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं उनके) अत्यन्त नाशवाले (क्षणिक) विषयों में भी पतन देखा जाता है। 'उनका दुःख स्वभाविक' यदि ऐसा स्वीकार न किया जाय तो, जिसका शीतज्वर उपशान्त हो गया है उसके पसेव (पसीना) की तरह, जिसका दाहज्वर उतर गया है उसके कांजी के परिषेक की तरह, जिसकी आँखों का दुःख दूर हो गया है उसके वटचूर्ण (शंख इत्यादि का चूर्ण) आंजने की तरह जिसका कान दर्द नष्ट हो गया है उसको बकरे का मूत्र कान में डालने की तरह, और जिसका घाव पूरा भर गया है उसको फिर लेप करने की तरह (अर्थात् जिसका रोग शमन हो गया है उस रोग के प्रतिकार या इलाज के लिये औषधि आदि सेवन नहीं देखा जाता, उसी प्रकार यदि उन जीवित इन्द्रिय वालों के यदि वांछा रूपी रोग न होता तो उनके भी) विषय-व्यापार न देखा जाता है, (किन्तु) वह (विषय-व्यापार) देखा जाता है। इससे (सिद्ध हुआ कि) जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं ऐसे परोक्षज्ञानी स्वभावभूत दुःखवाले (स्वाभाविक दुःखी ही) है।

समीक्षा-कारण के बिना कार्य नहीं होता है, और जहाँ कार्य है वहाँ अवश्य कारण होगा ही। जिस प्रकार जहाँ अग्नि जनित धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य होगी क्योंकि अग्नि के बिना धुआँ होना असम्भव है इसी प्रकार जहाँ विषय सम्बन्धी राग है, भोग है वहाँ उस विषय सम्बन्धी दुःख अवश्य ही होगा। जिस प्रकार एक व्यक्ति रूचिपूर्वक भोजन कर रहा है तो वह व्यक्ति शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से भूखा होगा। इसी प्रकार कोई औषधि सेवन करता है तो वह किसी न किसी रोग से ग्रसित होगा क्योंकि जीवों की प्रवृत्ति आवश्यकतानुसार ही होती है, अनावश्यक नहीं होती है। जिस प्रकार जिसके लिये धन की आवश्यकता होती है वह धन उपार्जित करता है परन्तु जिसको धन की आवश्यकता नहीं है वह न धन संचय करता है, न उत्पादन करता है जैसे-निस्पृही (दिगम्बर संत)। परन्तु अज्ञानी, मोही, रागी जीव उस दुःख को ही सुख मान बैठता है एवं उसमें ही रमण करता है। कहा भी है-

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।

तथापि रमतेबालस्तत्रैवाज्ञान भावनात्।। (55) (समाधितन्त्र)

तत्त्वदृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ये पाँचों ही इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर हैं, पराधीन है, विषम है, बंध के कारण है, दुःख स्वरूप है और बाधा सहित है-कोई भी इनमें आत्मा के लिये सुखकर नहीं। फिर भी यह अज्ञानी जीव उन्हीं से प्रीति करता है, उन्हीं की सम्प्राप्ति में लगा रहता है और रात-दिन उन्हीं का राग अलापता है। यह सब अज्ञान भाव को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व-संस्कार का ही माहात्म्य है।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।। (22)

हे कौंतेय! इस त्रिविध नरक द्वार से दूर रहने वाला मनुष्य आत्मा के कल्याण का आचरण करता है और इससे परम गति को पाता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तपन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। (22) (गीता)

विषय जनित भोग अवश्य दुःखों के कारण हैं। हे कौन्तेय! वे आदि और अन्त वाले हैं। बुद्धिमान मनुष्य उनमें नहीं फँसता।

आरंभेतापकान्प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।

अंते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः।। (17) (इष्टोपदेश)

भोग आरम्भ में-उत्पत्ति के समय अनेक संताप देते हैं-शरीर इन्द्रिय और मन को क्लेश के कारण हैं-और अनादि भोग्य द्रव्य के सम्पादन करने में भी कृष्यादि कारणों से अत्यन्त दुःख होता है। और जब वे प्राप्त हो जाते हैं तब उनके भोगने में तृप्ति नहीं होती पुनः पुनः भोगने की इच्छा बनी रहती है, और चित्त में व्यग्रता तथा घबड़ाहट होती रहती है। इसलिये अतृप्तिवश अनन्तकाल में भी भोगों को छोड़ने का साहस नहीं होता। ऐसे अहितकर भोगों को कौन विद्वान् सेवन करेगा-कोई भी बुद्धिमान नहीं करेगा।

अपि संकल्पिताः कामाः संभवन्ति यथा यथा।

तथा तथा मुनष्याणां तृष्णा विश्वं विसर्पति।।

ज्यों-ज्यों अभिलाषित भोग प्राप्त होते जाते हैं और उनमें सुख की कल्पना की जाती है त्यों-त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है और उनसे सदा अतृप्ति ही बनी रहती है। कदाचित् यह कहा जाये कि भोगों के यथेष्ट भोग लेने पर मनुष्य की तृष्णा शांत हो जाएगी और तृष्णा-शांति से संतोष हो जायेगा सो यह भी संभव नहीं है, क्योंकि अन्त समय में आसक्ति होने पर भी भोग नहीं छोड़े जा सकते। भले ही वे हमें स्वयं छोड़ दे। पर भोगों की वृद्धि में तृष्णा भी उतनी ही बढ़ती जाती है, फिर तृप्ति या सन्तोष नहीं होता। कहा भी है-

दहनस्तृणकाष्ठसंचययैरपि तृष्यदुदधिर्नदीशतैः।

ननु कामसुखैः पुमानहो बलवत्ता खलु कापि कर्मणः।।

अग्नि में कितना ही तृण और काष्ठ क्यों न डाला जाय लेकिन तृप्ति नहीं होती, शायद वह तृप्त हो जाय, सैकड़ों नदियों से भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती, यदि कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय, परन्तु भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। कर्म बड़ा ही बलवान् है और कहा भी है-

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो सांसारिक (इस लोक सम्बन्धी) सुख है वह सब पचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से होने वाला है। वास्तव में वह सुख नहीं है, किन्तु सुख का आभास मात्र है, निश्चय से वह दुःख ही है।

तस्माद्धेयं सुखाभासं दुःखं दुःखफलं यतः।
हेयं तत्कर्म यद्धेतुस्तस्यानिष्टस्य सर्वतः।। (239)

इसलिये वह सुखाभास छोड़ने योग्य है। वह स्वयं दुःख स्वरूप है और दुःख रूप फल को देने वाला है। उस सदा अनिष्ट करने वाला वैषयिक सुख का कारण कर्म है, इसलिये इस कर्म को ही नाश करना चाहिये।

तत्सर्वं सर्वतः कर्म पौद्गलिकं तदष्टधा।
वैपरीत्यात्फलंतस्य सर्व दुःखं विपच्यतः।। (240)

वह सम्पूर्ण पौद्गलिक कर्म सर्वदा आठ प्रकार का है, उसी कर्म का उल्टा विपाक होने से सभी फल दुःख रूप ही होता है।

नैवं यतः सुखं नैतत् तत्सुखं यत्र नाऽसुखम्।
स धर्मो यत्र नाधर्मस्तच्छुभं यत्र नाऽशुभम्।।

शंकाकार का उपुर्यक्त कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जिसको वह सुख समझता है वह सुख नहीं है। वास्तव में सुख वही है जहाँ पर कभी थोड़ा भी दुःख नहीं है, वही धर्म है जहाँ पर अधर्म का क्लेश नहीं है और वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

इदमस्ति पराधीनं सुखं बाधापुरस्सरम्।
व्यच्छिन्नं बन्धहेतुश्च विषमं दुःखमर्थतः।। (245)

यह इन्द्रियों से होने वाला सुख पराधीन है, कर्म के परतन्त्र हैं, बाधा पूर्वक हैं, इसमें अनेक विघ्न आते हैं, बीच-बीच में इसमें दुःख होता जाता है, यह दुःख बन्ध का कारण है, तथा विषम है। वास्तव में इन्द्रियों से होने वाला सुख-दुःख रूप ही है।

आत्मा ही सुख स्वरूप है शरीर नहीं

पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहंण हवदि देहो।। (65)

It is not the body, but the very Soul itself, that develops happiness having obtained desired objects that are naturally entrually endowed with the qualities of touch etc.

आगे यह प्रकट करते हैं कि मुक्त-आत्माओं के शरीर न होते हुए भी सुख रहता है, इस कारण शरीर सुख का कारण नहीं है-

(अप्पा) यह संसारी आत्मा (फासेहिं) स्पर्शन आदि इन्द्रियों से रहित शुद्धात्म तत्त्व से विलक्षण स्पर्शन आदि इन्द्रियों के द्वारा (समस्सिदे) भले प्रकार ग्रहण करने योग्य (इट्ठे विसये) अपने को इष्ट ऐसे विषय भोगों को (पप्पा) पाकर के या ग्रहण करके (सहावेण परिममाणो) अनन्त सुख का उपादान कारण जो शुद्ध आत्मा का स्वभाव उस से विरुद्ध अशुद्ध सुख का उपादान कारण जो अशुद्ध आत्मस्वभाव उससे परिणमन करता हुआ (सयमेव) स्वयं ही (सुह) इन्द्रिय सुखरूप हो जाता है, या परिणमन कर जाता है, तथा (देहो ण हवदि) शरीर अचेतन होने से सुखरूप नहीं होता है।

यहाँ यह अर्थ है कि कर्मों के आवरण से मैले संसारी जीवों के जो इन्द्रिय सुख होता है वहाँ भी जीव ही उपादान कारण है, शरीर उपादान कारण नहीं है। जो देह-रहित व कर्मबन्ध-रहित मुक्त जीव हैं उनको जो अनन्त अतीन्द्रिय सुख है, वहाँ तो विशेष करके आत्मा ही कारण है।

समीक्षा-शरीर चेतन से रहित अचेतन/जड़/निर्जीव है जो आत्मा संवदेनशील, चैतन्यमय, ज्ञानात्मक द्रव्य है। इसलिये जीव संसारावस्था में हो या मुक्तावस्था में हो, या सम्यक्त्वावस्था में हो, या मिथ्यात्वावस्था में हो तो भी जीव जो कुछ सुख या दुःख अनुभव करता है वह स्वयं आत्मा स्वचेतना शक्ति के माध्यम से वेदन करता है, अनुभव करता है न कि शरीर या इन्द्रियाँ। जिस प्रकार गृह के बाह्य भाग में घटना होने पर गृहस्थ एक व्यक्ति गवाक्ष का मार्ग सहायक माध्यम है तथापि गवाक्ष अवलोकन नहीं करता है, परन्तु वह व्यक्ति अवलोकन करता है। इसी प्रकार संसारी जीव संसारावस्था में जो कुछ सुख या दुःख अनुभव करता है उसका माध्यम शरीर या इन्द्रियाँ क्यों भी न हो, तथापि इसका वेदन करने वाला आत्मा ही है। इस विषय को लौकिक दृष्टि से प्रायः हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं-जैसे एक व्यक्ति मानसिक रूप से अत्यन्त दुःखी है। ऐसा व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन करता हुआ भी स्वादिष्ट जनित सुख का यथार्थ अनुभव नहीं कर सकता है। दूसरा एक उदाहरण है जिस प्रकार शव को खिलाने, नहलाने पर या उसको विशेष अलंकार से अलंकृत करने पर भी वह शव उस सम्बन्धी अनुभूति को नहीं कर सकता है, क्योंकि उसमें आत्मा या चेतना शक्ति नहीं है। कोई व्यक्ति चश्मा के माध्यम से, सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से

किसी वस्तु का निरीक्षण, परीक्षण करता है जब उस समय में वह यन्त्र बाह्य सहायक होते हैं, तथापि निरीक्षण करने वाला जीव ही होता है, क्योंकि यन्त्र में संवेदनशीलता नहीं होती है। इसी प्रकार देह एवं इन्द्रियाँ केवल अनुभव करने के लिए वस्तु को देखने जानने के लिए या वेदन करने के लिए बाह्य कारण हो सकते हैं, परन्तु मुख्य कारण तो आत्मा ही है। पंचाध्यायी में कहा भी है-

मतिज्ञानादि का उपादान आत्मा ही है

मतिज्ञानादिवेलायामात्मोपादानकारणम्।
देहेन्द्रियास्तदर्थाश्च बाह्यं हेतुरहेतुवत्।। (351)

मतिज्ञान आदि के समय एक आत्मा ही उनका उपादान कारण हैं। देह, इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय तो केवल बाह्य कारण है, इसलिये वे अहेतु के समान ही हैं।

आत्मा ही स्वयं ज्ञानादि स्वरूप है

संसारे वा विमुक्तौ वा जीवो ज्ञानादिलक्षणः।
स्वयमात्मा भवत्येष ज्ञानं वा सौख्यमेव वा।। (352)

जीव संसार तथा मोक्ष दोनों की अवस्थाओं में ज्ञानादि लक्षण वाला होता है, अतः यह आत्मा ही स्वयं ज्ञानमय है और यह आत्मा ही स्वयं सुखमय है।

स्पर्शादिक केवल निमित्त मात्र हैं

स्पर्शादीन् प्राप्य जीवश्च स्वयं ज्ञानं सुखं च तत्।
अर्थाः स्पर्शादयस्तत्र किं करिष्यन्ति ते जडाः।। (353)

मतिज्ञानादि के समय स्पर्शादि विषयों को प्राप्त होकर यह जीव ही स्वयं ज्ञानमय और सुखमय हो जाता है। यहाँ स्पर्शादि अर्थ क्या कर सकते हैं, क्योंकि वे जड़ हैं इसलिये कुछ भी नहीं कर सकते।

जड़ पदार्थ ज्ञान के उत्पादक नहीं है

अर्थाः स्पर्शादयः स्वैरं ज्ञानमुत्पादयन्ति चेत्।
घटादौ ज्ञानशून्ये च तत्किं नोत्पादयन्ति ते।। (354)
अथ चेच्चेतने द्रव्यो ज्ञानस्योत्पादकाः क्वचित्।
चेतनत्वात्स्वयं तस्य किं तत्तौत्पादयन्ति वा।। (355)

यदि स्पर्शादिक विषय ही स्वतंत्र रूप से ज्ञान उत्पन्न करते हैं ऐसा माना जाय तो हम पूछते हैं कि जो घटादिक ज्ञानशून्य पदार्थ हैं उनमें वे ज्ञान को क्यों नहीं उत्पन्न कर देते हैं। यदि कहा जाय कि ये स्पर्शादिक चेतन द्रव्य में ही ज्ञान को पैदा करते है? तो जब कि आत्मा स्वयं चेतन है तब फिर उन्होंने वहाँ क्या पैदा किया, अर्थात् कुछ भी पैदा नहीं किया।

ततः सिद्धं शरीरस्य पञ्चाक्षाणां तदर्थसात्।

अस्त्यकिञ्चितत्करत्वं तच्चितो ज्ञानं सुखं प्रति।। (356)

इसलिए यह बात सिद्ध हुई कि शरीर और अपने-अपने विषय के साथ पाँचों इन्द्रियाँ आत्मा के ज्ञान और सुख को उत्पन्न करने में अकिंचित्कर हैं।

अशुभ त्याग से शुभ व शुभवृद्धि से शुद्धभाव

(अशुभ से पाप, शुभ से पुण्य, पुण्य पाप परे मोक्ष)

(अशुभ-पाप ''दुःखमेव वा'' शुभ-पुण्य व शुद्ध ''परे मोक्ष हेतु'')

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:1.छोटी-छोटी गैया...2.भातुकली (मराठी...)

अशुभ-शुभ व शुद्ध भाव, उत्तरोत्तर ग्राह्य श्रेष्ठ भाव।
अशुभ त्याग से होता शुभ भाव, शुभभाव वृद्धि से शुद्ध प्रारंभ।।
मोह राग द्वेष व काम, क्रोध, ईर्ष्या तृष्णा घृणा व अष्टमद।
सप्त व्यसन तथा पंचपाप, पर निन्दा-अपमान वैर-विरोध।। (1)

सभी घाती कर्म महान् पाप, इससे आत्मा के गुण होते घात।
आत्मा को पतित करे सो पाप, पाप त्याग क्रम से बढ़ता शुभ।।
मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषाय, इन के उपशम से उपशमसम्यक्त्व।
क्षयोपशम से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षय से होता क्षायिक सम्यक्त्व।। (2)

इससे होता है तत्वार्थश्रद्धान, देव शास्त्र गुरु व स्वशुद्धात्माश्रद्धान।
यहाँ से शुभभाव होता प्रारंभ, सम्यक्त्व बिना सभी अशुभ भाव।।
श्रावक धर्म व सभी श्रमण धर्म, अणुव्रत से ले सभी महाव्रत।
चतुर्थ से ले बारहवाँ गुणस्थान, उत्तरोत्तर शुभभाव होता वर्द्धमान।। (3)

इससे संवर व निर्जरा वर्द्धमान, पापकर्म क्षीण व पुण्य वर्द्धमान।
सप्तगुणस्थान तक शुभ प्रधान, अष्टमगुणस्थान से शुद्ध प्रारंभ।।
अशुभ त्याग बिन न शुभ प्रारंभ, शुभवृद्धि बिन न शुद्ध प्रारंभ।
मोहक्षय से घाती तीनों क्षय, केवली होने से उत्कृष्ट शुद्ध भाव।। (4)
''पुण्य फला अरिहंता'' होते प्रधान, गणधर सूरी पाठक साधु पुण्य।
परम शुक्लध्यान या शुद्धभाव से, योग निरोध से बनते सिद्ध।।
सिद्ध में न होते पुण्य-पाप कर्म, तथाहि न होते अशुभशुभ भाव।
यह ही जीवों की परम अवस्था, यह ही आत्मा की परमात्मदशा।। (5)
इस हेतु ही शुभभाव योग्य, इस हेतु ही पुण्यकर्म विधेय।
''पुनाति आत्मानं पूयते इति पुण्य'' आत्मा को पतित करने वाला पाप।।
साता-असाता ही नहीं पुण्य-पाप, धनी-गरीब ही नहीं पुण्य-पाप।
अशुभ व पाप त्याग प्रतिज्ञा युक्त, शुभ व पुण्य स्वयं होते वियुक्त।। (6)
तीर्थंकर तक में ये ही विधान, अन्यथा नहीं है मोक्ष निदान।
पापकर्म त्याग बिन नीति-नियम, सामाजिक व्यवस्था न्याय संविधान।।
पाप से ही संसार में परिभ्रमण, अनन्तकाल निगोद वास पाप कारण।
पाप से मानव-दानव-नारकी सम, बर्बर, असभ्य, क्रूर, दुष्ट, दुर्जन।। (7)
तन-मन भी न होते स्वस्थ सबल, पर्यावरण सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय न्याय।
सांसारिक समस्याओं का कारण पाप, इन के समाधान उपाय पुण्य।।
सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट से तत्व, रागी द्वेषी मोही न जानते ये तथ्य।
''दुःखमेव'' पाप त्यजनीय सर्व, शुभ से शुद्ध बनना 'कनक' का लक्ष्य
/(परे मोक्ष हेतु ''कनक का लक्ष्य''))।। (8)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-4/12/2020, प्रातः7.05

संदर्भ-

तीनों करणों के अंतिम समय में वर्तमान विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव को जो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य है उससे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की निर्जरा होने पर असंयत सम्यग्दृष्टि में प्रतिसमय होने वाली गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणे है। उससे देश विरति के गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे सकल संयमी के

गुण श्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणे है। उससे अनन्तानुबन्धी के संयोजना करने वाले के गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे दर्शन मोह की क्षपण करने वाले जीव की गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती उपशम जीव की गुण श्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे उपशांत कषाय की गुण श्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव की गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षीण मोह जीव की गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे स्वस्थान केवली जिन की गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात केवली जिनकी गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है।

परन्तु गुणश्रेणी आयाम का काल इसमें विपरीत है अर्थात् समुद्घात केवली से लेकर विशुद्ध मिथ्यादृष्टि तक काल क्रम में असंख्यात गुणा है। (गो.जी. धवल ज.ध.)

भावार्थः इस उपरोक्त सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा करता है, और अविरत सम्यग्दृष्टि से देश संयत गुणस्थानवर्ती जीव असंख्यात गुणित कर्म निर्जरा करता है। और इनसे एक सकल संयमी असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा करता है। मुख्यरूप से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती से लेकर सातवाँ गुणस्थान पर्यंत शुभध्यान है। अतः यदि शुभध्यान से कर्म निर्जरा नहीं होती है ऐसा मानने पर आगम विरोध होगा। आगम त्रिकाल अबाधित सत्य है। कभी अन्यथा नहीं हो सकता है।

अतः सिद्ध हुआ कि उत्तरोत्तर शुभध्यान (शुभोपयोग) से अधिकाधिक कर्म निर्जरा होती है।

''परे मोक्ष हेतु'' (त. सूत्र)

आगे के दो शुभ और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

उपरोक्त गुणस्थान में शुभ प्रकृतियों का अनुभाग बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। यदि पुण्य प्रकृति सर्वथा संसार का कारण होती है तो उत्तरोत्तर गुणस्थानवर्ती जीव अधिकाधिक दीर्घसंसारी होते। अतः पुण्य संसार का कारण कहना आगम विरोध है। जिन भगवान् के मुख से निकली हुई द्वादशांग वाणी में मुनियों को मुख्य

करके आचारांग का वर्णन है। और यथायोग्य धर्म को धारण करने वाले गृहस्थों के लिए उपासकाध्ययन अंग का वर्णन है, जो कि शुभध्यान स्वरूप है, पुण्य बन्ध का कारण है।

यदि शुभ क्रियाओं से सिर्फ पुण्य बन्ध ही होता है संसार का ही कारण है तो क्या जिन भगवान् के मुख से निकली हुई वाणी संसार का कारण है? क्या जिन भगवान् अनन्त दुःख स्वरूप संसार में परिभ्रमण कराना चाहते हैं? अतः पुण्य संसार का कारण कहना, हेय कहना यह जिन भगवान् की वाणी या श्रुत का अवर्णवाद है।

पुण्य प्रकृति शुभध्यान से अथवा आदि के तीन शुक्लध्यान से भी नष्ट नहीं होता है। केवल अयोग गुणस्थानवर्ती के चरम समय में नष्ट होता है उसके पहले नहीं।

सातावेदनीय उक्कस्साणुभागं बन्धिय खीणकसाय समोगि-अजोगि गुणट्ठाणाणि उवगयरय वेयणीय उक्कस्साणुभागो एदेसु गुणट्ठाणेसु लब्भेदि।

साता वेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग को बाँधकर क्षीण कषाय सयोगी और अयोगी गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव को इन गुणस्थानों में वेदनीय का उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है। (ज.ध.)

सुभाणं कम्माणमणुभाग घाती णत्थि।

शुभ कर्मों का अनुभाग घात नहीं होता है। (ध.पु.)

शुभोपयोग का स्वरूपः-

दव्वत्थिकाय छप्पण तत्त्व पयत्थेसु सत्त णवमेसु।
बन्धण मोक्खे तक्कारणरुवे बारसणुवेक्खे।।
रयणत्तय सरुचे अज्जाकम्मो दयादि सद्धम्मे।
इच्चेव माइगे जो वट्टदि सो होदि सुहभावो।।

छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नव पदार्थ, संसार और उसके कारण रूप, आस्रव बंध और मोक्ष के कारण स्वरूप संवर-निर्जरा बारह अनुप्रेक्षा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म, आर्ष कर्म (शुभकर्म) श्रावक और मुनि के यथायोग्य षड़ावश्यक दान पूजादि सद्धर्म इत्यादि रूप जो उपयोग है वह शुभभाव है। (रयणसार 64-65)

साता-पुण्यास्रव-वेदनीय आस्रव के कारणः-

दया दानं तपः शीलं सत्य शौच दमः क्षमा।
वैयावृत्यं विनीतिश्च जिन पूजार्जवं तथा।।
सराग संयमश्चैव संयमासंयमस्तथा।
भूत व्रत्यनुकंपा च सद्वेद्यास्रव हेतवः।। (गा.25-26)

दया, दान, तप, शील, शौच इन्द्रिय दमन, क्षमा, वैयावृत्ति, विनयता जिनपूजा, सरलता तथा सराग संयम, संयमासंयम, जीवदया आदि सातावेदनीय के कारण हैं। यदि शुभोपयोग को धर्म नहीं मानेंगे तो उपरोक्त समस्त गुणों का अभाव हो जायेगा। जिससे व्यवहार तीर्थ का विच्छेद होगा। व्यवहार तीर्थ का विच्छेद होने से धर्म का लोप होगा। धर्म के लोप से इहलोक सुख स्वर्गादि अभ्युदय सुख लोप होगा।इतना ही नहीं नीति नियम, सदाचार का लोप होने से देश, राष्ट्र समाज, परिवार में अन्याय, दुराचार चलेगा जिससे बड़ा विप्लव होगा और सर्वत्र अशान्ति ही फैलैगी। इसलिये शान्ति स्थापना के लिये सम्यक् शुभोपयोग अत्यन्त आवश्यक है जो कि मात्र स्वर्गादि अभ्युदय सुख में कारण नहीं बल्कि परम्परा से मोक्ष का भी कारण है। अनेक आचार्यों ने भी जिनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है ऐसे पूज्यपादाचार्य अपने आत्मा को पवित्र करने के लिए जिन भगवान् की स्तुति करने हुए अन्त में यहाँ तक कहते हैं कि-

तव पादौ मम हदयं मम हदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः।। (7) (समाधि भक्ति)

आपके पुनीत चरण मेरे हृदय में एवं मेरा हृदय आपके पवित्र चरण में रहे! जगज्जेष्ठ परमाराध्य त्रिलोकाधिपति जिनेन्द्र तब तक रहे, जब तक निर्वाण की प्राप्ति न हो। अर्थात् मैं सदा आपके चरणों का उपासक बन के रहूँ।

पुण्य फलः-

काणि पुण्ण फलाणि?

तित्थयर गणहर रिसि चक्कवट्टि बलदेव वासुदेव सुरविज्जाहरिद्धिओ।। (घ. 1-2)

शंका-पुण्य के फल कौन से हैं?

समाधान:तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, देव, बलदेव, वासुदेव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।

पाप का स्वरूप-

पाति रक्षति आत्मान् शुभादिति पापम्। असद्वेद्यादि

जो आत्मा को शुभ से बचाता है, वह पाप है।

जैसे-असातावेदनीय। (स.सि.)

पापं नाम अनिभमतस्य पापकं (भ.आ.)

अनिष्ठ पदार्थों की प्राप्ति जिससे होती है ऐसे कर्म को पाप कहते हैं।

पापास्रव के कारण-

चरिय पमाद बहुला कालस्सं लोलदा य विसयेसु।

परपरित्तावं पवादो पावस्स य आसवं कुणदि।। (पंचास्तिकाय)

प्रमाद बहुलता से युक्त आचरण लोलुपता, पर को परिताप करना तथा पर के अपवाद बोलना यह सब पाप के आस्रव के कारण हैं।

पापबन्ध का कारण:-

अथ देव शास्त्र मुनीनां योऽसौ निन्दा करोति तस्य पाप बन्धो भवति।

देवहं सत्थहं मुणिवरहं जो विद्देसु करेई।

णियमे पाउ हवेइ वसु जे संसारु भमेइ।। (62) (परमात्म)

देव शास्त्र गुरु की जो निन्दा करता है, उससे महान् पाप का बन्ध होता है, वह पाप के प्रभाव से नरक निगोदादि खोटी गतियों में अनन्तकाल तक भटकता है।

वीतराग देव, जिनसूत्र और निर्ग्रंथ मुनियों से जो जीव द्वेष करता है उसको निश्चय से पाप बन्ध होता है, उस पाप के कारण से वह जीव संसार में परिभ्रमण करता है। परंपरा से जो मोक्ष के कारण और साक्षात् पुण्य बन्ध के कारण जो देव-शास्त्र गुरु हैं इनकी जो निन्दा करता है, उसके नियम से पाप बन्ध होता है, पाप से दुर्गतियों में भटकता है।

निज परमात्म द्रव्य की प्राप्ति की रुचि वही निश्चय सम्यक्त्व उसका कारण

तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व उसके मूल अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु और दयामयी धर्म इन तीनों की जो निंदा करता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है।

वह मिथ्यात्व से महान् पाप बाँधता है, उस पाप से चतुर्गति संसार में भ्रमता है।

सम्यग्दर्शन घातक व्यक्ति-

जिनाभिषेके जिनवै प्रतिष्ठा जिनालये जैन सुपात्रतायाम्।
सावद्यलेशोवदतेसपापोस निन्दाको दर्शनघातकश्च।। (सार-संग्रह)

जो व्यक्ति जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक, चैत्य-चैत्यालय-निर्माण-प्रतिष्ठा एवं सुपात्र दान में पाप होता है, ऐसा जो प्रतिपादन करता है वह जिन धर्म का निंदक है, सम्यग्दर्शन का घातक है। उपरोक्त क्रियाओं में कुछ आरम्भादि कारणों से अत्यंतकम पापबंध होता है परंतु उससे अत्यन्त आत्मविशुद्धि होती है, सम्यग्दर्शन की निर्मलता बढ़ती है, सातिशय पुण्य बन्ध होता है जो कि परंपरा से मोक्ष का कारण है। इस महाफल के आगे जघन्य पाप निष्फल हो जाता है।

अशुभ भाव-

हिसंइसु कोहाइसु मिच्छा णाणेसु पक्खवाएसु।
मिच्छारिएसु मएसु दुरहिवेससु असुहलेसेसु।। (62)
विकहाइसु सद्दहज्झाणेसु असुहगेसु दंडसु।
सल्लेसु गारवेसु य जो वट्ठइ असुह भावे सो।। (रयणासार)

हिंसादिक में, क्रोधादि में, मिथ्याज्ञान में, पक्षपात में, मत्सर भाव में, मद में, मिथ्याभिप्रायमत में, अशुभ लेश्या में, विकथा में, आर्त्त-रौद्र ध्यान में, अशुभकारण दण्ड में, मिथ्या माया-निदानशल्य में, चार प्रकार के मद में जो प्रवर्तमान होता है, उसे अशुभ भाव कहते हैं। इन्हीं अशुभ भावों से पाप का आस्रव होता है।

दुःखं शोको वधस्तापः क्रन्दनं परिवेदनं।
परात्म द्वितीयस्थानि तथा च परपैशुन।।
छेदनं भेदनं चैव ताडनं दमनं तथा।
तर्जलं भर्त्सनं चैवं सद्यो विशसनं तथा।।
पापकर्मोपजीवित्वं वक्रशीलत्वमेव च।

शस्त्रप्रदानं विश्रम्भं धातनं विष मिश्रणं।

श्रृंखला वागुरा पाश रज्जुजालादि सर्जनं।

धर्म विध्वसंनं धर्मप्रत्येहकरणं तथा।।

तपस्वी गर्हणं शीलं व्रतपच्चावनं तथा।

इत्यसदवेदनीययस्य भवन्त्यास्रव हेतवः।। (तत्त्वसार)

अर्थः दुःख-अनिष्ट संयोग होने पर दुःख करना।

शोकः इष्ट वियोग होने पर दुःख करना।

वधः प्राणों का वध करना।

तापः लोक निन्दादि के होने पर संताप करना।

क्रंदनः अश्रुपात करते हुए रुदन करना।

परिवेदनः दूसरों को दया उत्पन्न हो ऐसा जोर-जोर से रोना। जिससे देखकर दूसरा भी रोने लगे।

परपैशुनः दुर्भावना से दूसरों पर दोषारोपण करना।

छेदनः शरीर के अवयवों का छेदन करना। जैसे बैलों का नाक छेदनादि।

ताड़नः लाठी से मारना।

दमनः दूसरों को भय दिखाना।

तर्जनः दूसरों को दुःख देना।

भर्त्सनाः कठोर अभ्रद वचनों से दूसरों की निन्दा करना।

सद्यो विशंसनः छल कपटपूर्वक दूसरों को धोखा देना।

हिंसादि पापकर्म से आजीविका चलाना, कुटिल भाव-मायाचार में प्रवृत्ति हिंसाजनक शस्त्र दूसरों को काम में देना, विश्वासघात करना, स्वतः दूसरों को विषादि सेवन करके कराके मरण को प्राप्त होना या दूसरों को प्राप्त कराना। पशु-पक्षियों को बन्धन में डालना, धर्मनीति विरूद्ध कार्य करना, धर्मात्माओं के शुभकर्म में विघ्न डालना, तपस्वी-साधुओं की निन्दा करना, झूठे अपवाद लगाना। व्रत नियमों का भंग करना और दूसरे धर्मात्मा पुरुषों को भी व्रत, नियम, संयमादि शुभ-क्रियाओं को करने नहीं देना। इसीप्रकार अनेक धर्मनीति विरूद्ध कार्य करना यह सब असातावेदनीय कर्म बन्ध के कारण हैं।

पाप का फल दुःख व कुगतियों की प्राप्ति

हिंसादिष्विहामुत्रापायवद्यदर्शनम्।। (9)

दुःखमेव वा।। (10)

हिंसादि पाँचों दोषों में ऐहिक और पारलौकिक उपाय और अवद्य का दर्शन में भावने योग्य है। अथवा हिंसादिक दुःख ही है, ऐसी भावना करनी चाहिये। (स.सि.)

असुहोदयेण आदा कुणरोतियो भवीय णेरइयो।

दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमदि अच्चंतां।। (प्र.सा.गा. 12)

अशुभ उदय से कुमानुष, तिर्यंच और नारकी होकर हजारों दुःखों से सदा पीड़ित होता हुआ संसार में अत्यन्त भ्रमण करता है।

काणि पावफलाणि। णिरय-तिरिय कुमाणुस जाइ-जरा-मरण वाहिवेयणा दारिद्दीणि।। (ध.)

शंकाः पाप के फल कौन से हैं?

समाधानः नरक, तिर्यंच और कुमानुष की योनियों में जन्म-मरण व्याधि वेदना और दारिद्र आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं।

पाप अत्यन्त हेय है–

ततश्चारित्र लवस्याप्य अभावादत्यन्त हेय एवायमशुभोपयोग इति।

चारित्र के लेशमात्र का भी अभाव होने में अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। (स.सि.)

यस्तावदज्ञानिजन साधारणोऽप्रतिक्रमणादिः स शुद्धात्म सिद्ध्याभाव स्वभावत्वेन स्वयमेवाराधत्वाद्विषकुम्भ एव।

प्रथम तो जो अज्ञानी जन साधारण (अज्ञानी लोकों को साधारण ऐसे) अप्रतिक्रमणादि है वे तो शुद्ध आत्मा की सिद्धि के अभाव रूप स्वभाव वाले हैं। इसलिये स्वयमेव अपराध स्वरूप होने से विषकुम्भ ही है। क्योंकि वे तो प्रथम ही त्यागने योग्य है।

अशुभ एवं शुभ भावों के फल–

असुहादो णिरयाउ सुहभावादो दुसग्ग सुहमाओ।

दुह–सुहभावं जाणदु जं ते रुच्चेद णं कुणहो।।

पंचेन्द्रियादि विषय और कषाय रूप अशुभ भावों से नरकादि दुर्गति का दुःख मिलता है और देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति रूपी शुभ भावनाओं से स्वर्गादिक अभ्यदुय सुखों की प्राप्ति होती है। सुख और दुःख अशुभ और शुभ भावों पर आधारित है।

हे भव्य आत्मन्! आप को जो अच्छा लगे सो करो। दुःख चाहिये तो अशुभ भाव करो और सुख चाहिये तो शुभ भाव करो। इतना सदैव ध्यान रखो जो तुम कर्म करोगे वह तुम्हें भोगना ही होगा।

पुण्य त्याग करने योग्य व्यक्ति कौन है?

अर्थः प्रभाकर भट्ट कहते हैं यदि जो कोई पुण्य पाप इन दोनों को समान मानकर रहते हैं तो उनके मत में आप दूषण क्यों देते हैं? योगीन्द्र देव कहते हैं जब शुद्धात्मानुभूति स्वरूप तीन गुप्ति से गुप्त वीतराग निर्विकल्प समाधि को पाकर ध्यान में मग्न हुए पुण्य पाप को समान जानते हैं तब तो सम्मत ही है परन्तु जो मूढ़ परम समाधि को न पाकर भी गृहस्थ अवस्था में दान पूजादिक शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं और मुनि पद में छः आवश्यक क्रियाओं को छोड़ देते हैं वे दोनों तरफ से भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये उनके मत में जो पुण्य और पाप को समान मानते हुए रहते हैं सो ही दूषण है। (प.प्रकाश)

''अरि जिय जिण–पइ भति करि सुहि सज्जणु अवेहरि।

ति बप्पेण वि कज्जु णवि जो पाडइ संसारे।। (134)''

विस इहं कारणि सव्वु जणु जिम अणराउ करेइ।

जिम जिणभासिए धम्मि जइण उ संसारी पडेइ।।

अर्थः हे आत्मन् अनादिकाल से दुर्लभ जो वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ राग-द्वेष मोह रहित शुद्धोपयोग रूप निश्चय धर्म और शुभोपयोग रूप व्यवहार धर्म उनमें भी छः आवश्यक रूप यति का धर्म, दान पूजादि श्रावक का यह धर्म शुभाचार रूप दो प्रकार धर्म उसमें प्रीति कर। इस धर्म से विमुख जो अपने कुल का मनुष्य उसे छोड़ और उस धर्म के सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य है उससे प्रीति कर।

तात्पर्य यह है कि यह जीव जैसे विषय सुख से प्रीति करता है, वैसे जो जिनधर्म में करे तो संसार में नहीं भटके। ऐसा अन्य जगह भी कहा है कि विषय कारणों में यह जीव बारंबार प्रेम करता है, वैसे जो जिनधर्म में करें तो संसार में भ्रमण न करें। (परमात्म प्रकाश)

यत्प्राग्जन्मनिं संचित्तं तनुभृता कर्मोशुभं वा शुभं।
तद्दैवं तदुदीरणानुभवन दुःख सुखं बागतम्।।
कुर्याद्यः शुभमेव सोऽप्यभिमतो यस्तुभयोच्छितये।
सर्वारम्भ परिग्रह परित्यागी स वन्द्यः सताम्।।(262) (आत्मानु.)

अर्थ : प्राणी ने पूर्व भव में जिस पाप या पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव कहा जाता है। उसकी उदीरणा से प्राप्त दुःख अथवा सुख का अनुभव करता हुआ जो बुद्धिमान् शुभ को ही करता है। पाप कार्यों को छोड़कर केवल पुण्य कार्यो को ही करता है, वह भी अभीष्ट है प्रशंसा के योग्य है किन्तु जो विवेकी जीव उन दोनों (पुण्य-पाप) को ही नष्ट करने के लिए समस्त आरम्भ व परिग्रह पिशाच को छोड़कर शुद्धोपयोग में स्थित होता है वह तो सज्जन पुरुषों के लिए वंदनीय पूज्य है।

शुभाशुभे पुण्य पापे दुःखे च षट् त्रयम्।
हितमाद्यमनुष्ठेयं शेष त्रयमथाहितम्।।(269)
तत्राप्सद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्वतः स्वयम्।
शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम्।।(240)

अर्थ : शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप, सुख और दुःख इस प्रकार ये छः हुए। इन छहों के तीन युगलों में से आदि के तीन शुभ, पुण्य और सुख आत्मा के लिए हितकारक होने से आचरण के योग्य हैं। तथा शेष तीन अशुभ-पाप और दुःख अहितकारक होने से छोड़ने के योग्य हैं।

विशेषार्थ : अभिप्राय यह है कि जिनपूजादिक शुभ क्रियाओं के द्वारा पुण्य कर्म का बन्ध होता है। इसके विपरीत हिंसा एवं असत्य संभाषणादिरूप अशुभ क्रियाओं के द्वारा पाप का बन्ध होता है और उस पाप कर्म का उदय होने पर उससे दुःख की प्राप्ति होती है।

इसलिए उक्त छः में से शुभ पुण्य और सुख ये तीन उपादेय तथा अशुभ पाप और दुःख ये तीन हेय हैं।

पूर्व श्लोक में जिन तीन को शुभ-पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम (अशुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख ये दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अन्त में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

विशेषार्थ : ऊपर जो इस श्लोक का अर्थ लिखा गया है वह संस्कृत टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य के अभिप्रायानुसार लिखा गया है। उपर्युक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है। श्लोक 239 में जो अशुभ पाप और दुःख ये तीन अहितकारक बतलाये गये हैं उनमें भी प्रथम अशुभ का ही त्याग करना चाहिये। कारण यह है कि ऐसा होने पर शेष दोनों पाप और दुःख स्वयमेव नहीं रहते हैं इसलिए इनका मूल कारण अशुभ ही हैं। इस प्रकार जब मूल कारणभूत वह अशुभ न रहेगा तब उसका साक्षात् कार्यभूत पाप स्वयमेव नष्ट हो जाएगा और जब पाप ही न रहेगा तो उसके कार्यभूत दुःख की भी कैसे संभावना की जा सकती है, नहीं की जा सकती है। इस प्रकार उक्त अहितकारक तीन के नष्ट हो जाने से शेष तीन जो शुभादि हितकारक रहते हैं वे भी वास्तव में हितकारक नहीं है उनको जो हितकारक व अनुष्ठेय बतलाया गया है वह अतिशय अहितकारी अशुभादिक अपेक्षा ही बतलाया है। यथार्थ में वे भी परतंत्रता के कारण है। भेद इतना ही है कि जहाँ अशुभादिक जीव को नारक और तिर्यंच पर्याय प्राप्त कराकर केवल दुःख का अनुभव कराते हैं वहाँ वे शुभादिक उसको मनुष्यों और देवों में उत्पन्न कराते हैं। दुःख मिश्रित सुख का अनुभव कराते हैं। इसलिए यहाँ यह बतलाया है कि उन अशुभादिक तीन को छोड़ देने के पश्चात् शुद्धोपयोग में स्थित होकर उस शुभ को छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार अन्त में उस शुभ के अविनाभावि पुण्य व सांसारिक सुख के भी नष्ट हो जाने पर जीव उस निर्बाध मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है जो कि अनन्त काल तक स्थिर रहने वाला है।

वरं व्रतै पदं दैवं नाव्रतैर्व्रत नारकं ।

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।(31) (इष्टोपदेश)

अर्थ : व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है किन्तु अव्रतों के द्वारा

नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। जैसे छाया और धूप में बैठने वाले में अन्तर पाया जाता है वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करने वालों में फर्क पाया जाता है।

व्रतादिक पालने से पाप कर्मों की निर्जरा होती है और पुण्य कर्म का बन्ध होता है परन्तु पुण्य बन्ध इहलोक व परलोक सुख का कारण है परम्परा से मुक्ति का कारण है।

शुभः शुभानुबन्धाति बन्धीच्छेदाय जायते।

पारंपर्येण यो बन्धः स प्रबन्धाद्विधीयते।।(54) (धर्मारत्नाकर)

अर्थ : शुभ भाव से शुभानुबन्धी होता है और शुभानुबन्धी परम्परा से बन्ध छेद के लिए कारण हो जाता है। इसलिए शुभानुबन्धी कर्म को प्रचुर रूप से करना चाहिए।

विशेषार्थ : शरीर में काँटा घुसने के बाद उस काँटे को निकालने के लिए एक सुदृढ़ काँटा चाहिये, शरीर स्थित काँटे को जब तक नहीं निकालते तब तक इस सुदृढ़ काँटे की परम आवश्यकता है। शरीर स्थित काँटा निकालने के बाद उस सुदृढ़ काँटे की आवश्यकता स्वयमेव नहीं रहती, उसी प्रकार पाप कर्म को निकालने के लिए सुदृढ़ पुण्यरूपी काँटा चाहिये, पापरूपी काँटा निकालने के बाद पुण्यरूप काँटे की आवश्यकता स्वयमेव हट जाती है। जैसे-मलिन वस्तु के संपर्क से वस्त्र अस्वच्छ हो जाता है। उस अस्वच्छता को हटाने के लिए पानी, साबुन, टिनोपॉल चाहिये। पानी और साबुन के प्रयोग से जब वस्त्र स्वच्छ हो जाता है तब उस वस्त्र पर लगे हुए साबुन को स्वच्छ पानी से धोकर निकाल देते हैं। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद उसको टीनोपॉल में डालकर चमकाते हैं। वस्त्र से साबुन और पानी अलग वस्तु है (परद्रव्य) है। तो भी बिना पानी और साबुन के मलीन वस्त्र स्वच्छ नहीं होता है। परन्तु स्वच्छ होने के बाद साबुन और पानी की आवश्यकता नहीं रहती है। मलीन अवस्था में टीनोपॉल वस्त्र को लगाने पर उसमें चमक नहीं आ सकती है। इसी प्रकार आत्मा को स्वच्छ करने के लिए शुभभावरूपी पानी और पुण्यरूपी साबुन चाहिये। इसके माध्यम से मलीन पापात्मा का पवित्र पुण्यात्मा होने के बाद शुक्लध्यानरूपी टीनोपॉल से उसको केवलज्ञान रूपी प्रकाश से चमकाना चाहिये। जब तक आत्मा को शुभ भाव और पुण्य से

स्वच्छ नहीं करते तब तक शुक्लध्यान रूपी टीनोपॉल का किसी प्रकार परिणाम नहीं हो सकता है। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद उस वस्त्र में स्थित पानी को भी निकाल देते हैं। इसी प्रकार अयोग केवली 14वें गुणस्थान की अवस्था में व्युपरत क्रिया निवृत्तिरूपी परम शुक्ल ध्यान से पुण्यरूपी कण को भी सुखाकर पृथक् करना चाहिये तब जाकर आत्मा निरंजन निष्कलंक होता है।

अहो पुण्यवन्ता पुंसां कष्टं चापि सुखायते।

तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितः।।

अर्थ : अहो आश्चर्य की बात है कि पुण्यवान् के लिए कष्ट भी सुखकर हो जाता है, इसलिए हे भव्य! जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित पुण्य को तुम प्रयत्नपूर्वक करो।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।

स योगी तस्य निर्वाणं तस्य पुनरास्त्रवः।।(246)

अर्थ : जिनका कर्म उदय में आकर भी बिना फल दिये खिर जाता है वह योगी है। वह परम वीतरागी होता है। परम वीतरागी मुनि उग्र तप के माध्यम से भविष्य में उदय आने योग्य कर्म को गला देता है। उसी प्रकार मुनीश्वरों को नवीन आस्त्रव या बन्ध नहीं होता है। उस परम वीतरागी मुनीश्वरों का पाप एवं पुण्य स्वयमेव निष्फल होकर खिर जाते हैं और उनको नवीन कर्मास्त्रव बन्ध नहीं होता है। उन्हीं को परम निर्वाण की प्राप्ति होती है।

असुहाण पयडीणं अणंत भागा रस्सस खंडाणि।

सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खण्डाणि।।(80)

अर्थ : अप्रशस्त अर्थात् पाप प्रकृतियों के अनंत बहुभाग का घात नियम से नहीं होता है क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है परन्तु घात नहीं होता है तथा विशुद्धि के कारण पाप प्रकृतियों का अनुभाग उत्तरोत्तर ह्रास को प्राप्त होता है परन्तु वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है।

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं।

रससतमणंत गुण अणंतगुण हीणयं होदि।।(82)

अर्थ : अपूर्व करण में प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि होने के कारण प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा बढ़ता अनुभाग सत्व है। तथा विशुद्धि के कारण अनुभाग

काण्डक घात के महत्व से अप्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तवाँ भाग सत्व चरम समय में होता है। इस प्रकार अधःकरण के प्रथम समय संबंधी प्रशस्त प्रकृतियों का जो अनुभाग सत्व है उससे अधःकरण के चरम समय में प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग सत्व अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना है उससे अनंतगुणा हीन अपूर्वकरण के चरम समय में है।

इससे सिद्ध होता है कि आत्म विशुद्धि से पुण्य कर्म चौदहवाँ गुणस्थान के नीचे नाश नहीं होते हैं परन्तु वृद्धि को प्राप्त होते हैं। तथा पाप कर्म आत्म विशुद्धि से नाश होता है किन्तु वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है। (लब्धि सार)

विशेषार्थ : चतुर्थ गुणस्थान से आगे उत्तरोत्तर पापकर्म का संवर और निर्जरा की वृद्धि हो जाती है। और पुण्य कर्म का आस्रव और बन्ध उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। इस प्रकार क्रिया सकषाय गुणस्थान तक (10वें गुणस्थान तक) चलती रहती है। क्षीणकषाय आदि गुणस्थान में पुण्यास्रव होता है फिर भी बन्ध नहीं होता है परन्तु पुण्य कर्म तेरहवें गुणस्थान तक नष्ट नहीं होता है किन्तु बढ़ता ही रहता है।

परन्तु परम योगी शैलेश अवस्था को प्राप्त अयोगी केवली गुणस्थान के चरम समय और द्विचरम समय में संपूर्ण पुण्य और पाप कर्मों का समूल विनाश हो जाता है। पाप प्रकृति की यथायोग्य द्वितीयादि गुणस्थान में संवर एवं निर्जरा होती है। परन्तु विशिष्ट पुण्य कर्मों का संवर निर्जरा 14वें गुणस्थान के नीचे होती नहीं है। परन्तु उत्तरोत्तर गुणस्थान में अनुभाग शक्ति बढ़ती जाती है। परन्तु परिनिर्वाण के पूर्ववर्ती समय में संपूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।

किनके पुण्य हेय हैं?

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण होई मइ-मोहो।
मइ मोहेण य पाव ता पुण्णं अम्ह मा होउ।।(60)

अर्थः पुण्य से घर में धन होता है और धन से अभिमान, मान से बुद्धि भ्रम होता है। बुद्धि भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है। इसलिये ऐसा पुण्य हमारा न हो।

टीकाः पुण्णेण इत्यादि। पुण्णे होइ विहवो पुण्णेण विभवो

विभूतिर्भवति, विहवेण मओ विभवेण मदोऽहंकारो गर्वो भवति मएण मइमोहो विज्ञानाद्यष्टमदेन मतिमोहो मतिभ्रंशो विवेक मूढ़त्वं भवति। मइमोहेण य पावं मति मूढ़त्वेन पापं भवति ता पुण्यं अहंमा तस्मूादित्थेभूतं पुण्यं अस्माकमाभूदिर्ति। तथा च इद पूर्वोक्तं भेदाभेद रत्नत्रयाराधनारहितेन दृष्ट, श्रुतानृभृत भोगाकांक्षारूप निदानबन्ध परिणामसहितने जीवेन यदुपार्जित पूर्व भवे तदेव मदमहंकार जनयति बुद्धिविनाशंच करोति। न च पुनः सम्यक्त्वादि गुणसहित भरत-सगर राम पांडव आदिपुण्य बन्धनवत्। यदि पुनः सर्वेषां मदंजनयति तर्हि ते कथं पुण्य भाजना सन्तो मदाहंकारादिविकल्पं त्यक्त्वा मोक्ष गताः इति भावार्थ।। तथा चोक्तं चिरन्तनानां निरहंकारत्वम्।

''सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्य भुजे विक्रमे।
लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गे गतिनिर्वृतेः।।''
प्राग्जनीहं तेऽपि निरहंकाराः श्रुतेर्गोचराश्चित्रं संप्रति।
लेशतोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः।।(60)

भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना से रहित देखें, सुने अनुभवे भोगों की वांछारूप निदान बन्ध के परिणामों से सहित जो मिथ्यादृष्टि संसारी अज्ञानी जीव हैं। उससे पहले उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा होने से अभिमान (घमण्ड) होता है, अभिमान से बुद्धिभ्रष्ट होती है, बुद्धि भ्रष्ट कर पाप कमाता है और पाप से भव-भव में अनंत दुःख पाता है। इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य, पाप का ही कारण है। जो सम्यक्त्वादिगुणसहित भरत, राम, पाण्डवादिक विवेकी जीव है उनको पुण्य बन्ध अभिमान उत्पन्न नहीं कराता, परम्परा से मोक्ष का कारण है। जैसे-अज्ञानियों को पुण्य का फल विभूति गर्व का कारण है, वैसे सम्यग्दृष्टियों के नहीं हैं। वे सम्यग्दृष्टि पुण्य के पात्र हुए चक्रवर्ती आदि की विभूति पाकर मद अहंकार आदि विकल्पों को छोड़कर मोक्ष को गये अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती बलभद्र पद में भी निरहंकार रहे। ऐसा ही कथन आत्मानुशासन ग्रंथ में श्री गुणभद्राचार्य ने किया है कि पहले समय में ऐसे सत्पुरुष हो गये हैं जिनके वचन में सत्य बुद्धि में शास्त्र, मन में दया, पराक्रम रूप भुजाओं में शूरवीरता याचकों को पूर्ण लक्ष्मी का दान और मोक्षमार्ग में गमन है। वे निराभिमानी हुए जिनको किसी गुण का अहंकार नहीं हुआ। उनके नाम शास्त्रों में प्रसिद्ध है। परन्तु अब बड़ा अचम्भा है कि इस पंचमकाल

में लेश मात्र भी गुण नहीं है तो भी उद्धतपना है, यानी गुण तो रंच मात्र भी नहीं और अभिमान में बुद्धि रहती है। (परमात्म प्रकाश)

पाप भी उपादेय है

अथ येन पापफलेन जीवो दुःख प्राप्य दुःखविनाशार्थ धर्माभिमुखो भवती तत्पापमपि समीचीनमिति दर्शयतिः।

वर जिय पावइँ सुन्दरइँ णावइं ताई भणंति।
जीवहँ दुक्खहँ जाणिवि लहु सिवमई जाई कुणति।। (56)
वरं जीव पापानि सुन्दराणि ज्ञानिनः तानि भणन्ति।
जीवानां दुःखानिजनित्वा लघुशिवमर्ति यानि कुर्वन्ति।। (56)

धन्य मानो! धन्य मानो!

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.सायोनारा... 2.यमुना किनारे...)

धन्य मानो हे! धन्य मानो! आत्मविकास से धन्य मानो!
आत्मश्रद्धा/(प्रज्ञा) से धन्य मानो! आत्मविशुद्धि से धन्य मानो!
रागद्वेष त्याग से धन्य मानो! ईर्ष्या तृष्णा त्याग से धन्य मानो!
धर्म प्रीति से स्व को धन्य मानो! आत्मप्रीति से स्वयं को धन्य मानो! (1)
जिनवाणी श्रवण से धन्य मानो! देव गुरु भक्ति से स्वयं को मानो!
दयादान सेवा से धन्य मानो! परोपकार से स्व को धन्य मानो!
फैशन-व्यसन त्याग से धन्य मानो! हिंसा झूठ त्याग से धन्य मानो!
चोरी कुशील त्याग से धन्य मानो! परिग्रह त्याग से भी धन्य मानो! (2)
समता शान्ति से धन्य मानो! संतोषवृत्ति से भी धन्य मानो!
पर प्रपंच त्याग से धन्य मानो! परनिन्दा त्याग से धन्य मानो!
ध्यान-अध्ययन से धन्य मानो! शोध-बोध से भी धन्य मानो!
दीन-हीन त्याग से धन्य मानो! दंभ-मोह त्याग से धन्य मानो! (3)
आत्मस्वभाव में गौरव करो! अनात्म भाव को त्याग करो!
आत्मविकास हेतु पुरुषार्थ करो! आत्मपतन को दूर करो!

स्वयं का स्वयं तू मित्र बनो! स्व के द्वारा स्वउद्धार करो।
स्व के गुण-दोष ज्ञान करो! गुण बढ़ाओ दोष दूर करो! (4)
आदर्श अनुकरण सदा करो! अनादर्श को सदा परिहरो!
स्वयं से स्वयं प्रतिस्पर्द्धा करो! स्वयं का विकास बढ़ातें चलो!
पर प्रतिस्पर्द्धा से ईर्ष्याद्विष होते! स्वप्रतिस्पर्द्धा से हटाते चलो!
आत्मविशुद्धि से शक्ति बढ़ाते चलो! आत्मशक्ति से कर्म नाश करो! (5)
शुद्ध बुद्ध आनन्द बनते चलो! आत्मा से परमात्मा शीघ्र बनो!
कृतकृत्य परमेश्वर बनो! स्वं का कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं बनो!
परम स्वतंत्र परमेष्ठी बनो! धन्य! धन्य! 'कनक' शुद्धात्मा बनो! (6)
इससे भिन्न अनात्म भाव में/(से), न मानो स्वयं को धन्य महान्।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री, अष्टमद से स्वयं को न मानो धन्य।।
कुज्ञानी मोही न जानते ये सत्य, करते भाव-व्यवहार सभी विपरीत।
तन-मन-इन्द्रिय भोगोपभोग को, स्वरूप मानकर करते अहंकार, ममकार।। (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-27/12/2020, रात्रि-8.00

संदर्भ-

श्री-मुखलोकनादेव, श्री-मुखालोकनं भवेत्।
आलोकन-विहीनस्य, तत्त् सुखावाप्तयः कुतः।। (4) ईर्या.भक्ति

भावार्थ-वीतराग रूप लक्ष्मी से अलंकृत जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से ही साक्षात् मुक्ति-लक्ष्मी का दर्शन हो जाता है किन्तु जो मनुष्य जिनेन्द्रदेव का दर्शन ही नहीं करते हैं; उन्हें वह सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य-त्रिलोक-तिलक! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः।। (5)

भावार्थ-हे वीतराग भगवान्! आपके पावन चरण-कमलों के दर्शन से आज मेरे दोनों नयन सफल हो गये हैं। हे तीन लोकों के तिलक भगवन्! आज आपके

दर्शन से मुझे यह अगाध संसार भी मात्र चुल्लूभर पानी सम प्रतीत होता है। जो अल्प समय में ही बूँद बूँद कर रिक्त होने वाला है।

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते।

स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।। (6)

भावार्थ-हे जिनेन्द्र भगवान्! आपके पावन दर्शनों से आज मेरा शरीर पवित्र हो गया, मेरे दोनों नेत्र निर्मल हो गये तथा मैंने आज जिनदर्शन कर मानों धर्मतीर्थों में ही स्नान कर लिया है। ऐसी विशुद्ध अनुभूति मुझे हो रही है।

चित्ते मुखे शिरसि पाणि-पयोज-युग्मे,

भक्तिं स्तुतिं विनति-मञ्जलि-मञ्जसैव।

चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति,

यश्चर्करीति तव देव! स एव धन्यः।। (13)

भावार्थ-हे त्रिलोकीनाथ स्वामिन्! जो भव्यात्मा अपने दोनों हस्तकमलों अञ्जलि बाँधकर अर्थात् दोनों हाथों को कमलाकर रूप से जोड़कर मन से श्रद्धापूर्वक आपकी भक्ति करता है, वचनों से आपकी स्तुति करता है तथा काय से आपके चरणों में नत-मस्तक होता है/शिर झुकाता है, आपको प्रणाम करता है यथार्थ में वही धन्य है।

रूपं ते निरुपाधि-सुन्दर-मिदं, पश्यन् सहस्रेक्षणः,

प्रेक्षा-कौतुक-कारिकोऽत्र भगवन् नोपैत्यवस्थान्तरम्।

वाणीं गद्गद्यन् वपुः पुलकयन्, नेत्र-द्वयं श्रावयन्,

मूर्द्धानं नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन्।। (15)

भावार्थ-हे वीतराग प्रभो! आपका रूप वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है तथा दर्शकों को कौतुक उत्पन्न करने वाला है। संसार में ऐसा कौन पुरुष है जो आपके सुन्दर रूप को देखकर अपनी अवस्था को न बदल ले। अर्थात् आपके सुन्दर रूप को देखकर सब जीवों की अवस्था में परिवर्तन हो जाता है। हजारों नेत्रों को धारण करने वाला इन्द्र भी आपके सुन्दर प्रशान्तमयी रूप को देखकर अपनी गद्गद्मयी वाणी में सहस्त्रनामों से आपकी स्तुति करते हुए ऐसा रोम-रोम में पुलकित होता है जिससे ललित तांडव नृत्य करता है। जो जीव हर्षाश्रुओं

से रोमांचित होता हुआ दोनों हाथों को जोड़ता हुआ आपके चरणों में नतमस्तक होता है, वह आपके दर्शन से अत्यन्त संतुष्ट होता है।

अनन्तानन्त संसार, संततिच्छेद कारणम्।

जिनराजपदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम।। (24)

भावार्थ-वीतराग जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का स्मरण, स्तवन, वन्दन, प्रणमन ही पञ्चपरावर्तन रूप अनन्त संसार की अनादि-कालीन परम्परा का विच्छेद करने में समर्थ है। हे प्रभो! आप के चरण-कमल ही मेरे लिये एकमात्र शरण हैं। ये ही मेरे रक्षक हैं। मेरी भव-बाधा को हरने वाले भी ये ही हैं।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।

तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर!।। (25)

भावार्थ-हे वीतराग स्वामिन्! इस दुःखद संसार में आप ही मेरे शरण हैं, आप ही मेरे रक्षक हैं। आपको छोड़कर मेरा कोई अन्य शरण नहीं, रक्षक नहीं। प्रभो! अतः मुझ पर करुणा कीजिये। कारुण्य भाव से मुझे शरण दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।

भावार्थ-हे प्रभो! मेरी वीतराग देव, देवाधिदेव में भक्ति प्रतिदिन हो, भव-भव में हो, सदा काल हो। मैं सदाकाल आपकी भक्ति में भावना करता रहूँ।

याचेऽहंयाचेऽहं, जिन! तव चरणारविंदयोर्भक्तिम्।

याचेऽहं याचेऽहं, पुनरपि तामेव तामेव।। (26)

भावार्थ-हे प्रभो! मैं बारम्बार आपके चरण-कमलों की भक्ति की याचना करता हूँ, उसी की प्राप्ति की बार-बार इच्छा करता हूँ। बस आपके चरण-कमलों में लगन लगी रहे यही याचना करता हूँ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।

विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।। (29)

भावार्थ-जिनेश्वरदेव की स्तुति करने से विघ्नों का जाल समाप्त हो जाता है, शाकिनी, भूत, सर्प आदि की बाधाएँ क्षण भर में क्षय को प्राप्त हो जाती हैं तथा भयानक विष भी दूर हो जाता है।

विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव।

त्यागः परिग्रहाणाम वश्यमजरामरं कुरुते।। (108) आत्मानु.

अर्थः-जिस प्रकार पवन साधन में कुटी प्रवेश करने से (कुम्भक प्रक्रिया द्वारा वायु रोकने से) शरीर निर्मल होता है, उसी प्रकार जो भेद-विज्ञान द्वारा मोह नष्ट करता है, उसे परिग्रह का त्याग अवश्य ही अजर-अमर कर देता है।

अभुक्त्वापि परित्यागात् स्वोच्छिष्टं विश्वमासितम्।

येन चित्रं नमस्तस्मै कौमारब्रह्मचारिणे।। (109)

उस कुमार-ब्रह्मचारी को हमारा नमस्कार हो, जिसने भोगे बिना ही विषयों का त्याग करके समस्त विषयों को अपनी जूठन बना दिया है-यह आश्चर्यकारी कार्य है।

तीन प्रकार के त्यागियों में भोग-सामग्री उपलब्ध होने पर भी वैराग्य के कारण उन्हें भोगे बिना ही छोड़कर कुमारवस्था में ही दीक्षा धारण करनेवाले सर्वोत्कृष्ट त्यागी हैं। भोगने के बाद विषय-सामग्री को छोड़ने में कोई आश्चर्य नहीं है, परन्तु सामग्री मिलने पर भी भोग किए बिना उनका त्याग करने में बड़ा आश्चर्य है। जिस प्रकार किसी के सामने भोजन परोसा जाए और वह उसे बिना खाए छोड़ दे तो उसे जूठन कहते हैं। उसी प्रकार इन्होंने बिना भोगे विषयों को छोड़ दिया, इसलिए सब विषयों को जूठन के समान कर दिया है। अतः उन्हें हम नमस्कार करते हैं।

परमात्मा बनने का रहस्य

अकिंचनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।

योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः।। (110)

अर्थः-''मैं अकिञ्चन हूँ, मेरा कुछ भी नहीं है''-ऐसी भावना करके तू बैठ जा! इससे तू शीघ्र तीन लोक का स्वामी हो जाएगा। योगीश्वरों द्वारा गम्य परमात्मा बनने का यही रहस्य हमने तुझे कहा है।

भावार्थः-अज्ञान के कारण पर-पदार्थों में ममत्व होता है और पर-पदार्थ अपने नहीं होते, इसलिए यह जीव हीन अवस्था को प्राप्त हो रहा है। परन्तु जब यह जीव ऐसी भावना करता है कि परद्रव्य मेरा नहीं है, तब इसे परम उदासीनतारूप चारित्र होता है, जिसके फल से इसे तीन लोक अपना स्वामी माने-ऐसा पद प्राप्त होता है। यह रहस्य योगीश्वर जानते हैं, वही हमने तुझे कहा है। तू भी ऐसी भावना कर-ऐसी शिक्षा हम तुझे देते हैं।

दुर्लभमशुद्धमपसुखविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम्।। (111)

अर्थः-यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ है, अपवित्र है, सुख रहित है, इसका मरण समय ज्ञात नहीं है, इसमें उत्कृष्ट आयु भी अल्प है। परन्तु इस पर्याय में ही तप हो सकता है और तप से ही मुक्ति होती है, इसलिए मनुष्यपना पाकर तुझे तप करना चाहिए।

भावार्थः-आत्मा का हित मोक्ष है। उसकी प्राप्ति तप के बिना नहीं होती, क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्वक तप की आराधना से साक्षात् मोक्षमार्ग होता है। ऐसा तप मनुष्य पर्याय में ही होता है।

देवविसयपपसत्ता णेरइया तिव्वदुःखसंतत्ता।
तिरिया विवेयवियला मणुयाणं धम्मसंपत्ती।।

अर्थः-देव विषयासक्त हैं, नारकी तीव्र दुःखों से सतप्त हैं, और तिर्यंञ्च विवेक रहित हैं; इसलिए मनुष्यों को ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है।

आराध्यो भगवान् जगत्त्रयगुरुर्वृत्तिः संता समता,
क्लेशस्तच्चरणस्मृतिः क्षतिरपि प्रप्रक्षयः कर्मणाम्।
साध्यं सिद्धिसुखं कियान् परिमितः कालो मनः साधनं,
सम्यक् चेतसि चिन्तयन्तु विधुरं किं वा समाधौ बुधाः।। (112)

अर्थः-समाधि में तीन लोक के गुरु अर्थात् भगवान की आराधना की जाती है। इस प्रवृत्ति की सराहना (प्रशंसा) सन्तों द्वारा की गई है। समाधि में भगवान के चरण-स्मरण करने का ही क्लेश है और कर्मों का उत्कृष्ट रूप से क्षय होता है-बस इतना ही खर्च है, जबकि थोड़े ही काल में मात्र मन के साधन से मोक्ष-सुख की साधना का फल प्राप्त होता है। इसलिए हे ज्ञानी! तुम अच्छी तरह मन में विचार करो कि समाधि में क्या कष्ट है।

ज्ञानियों में श्रेष्ठ कौन?

बुद्धिमान पुरुषों को दोष प्रगट किये जाने पर अपने दोषों को देखकर उनका त्याग करना चाहिए और गुण देखने पर गुणों को ग्रहण करना चाहिए-

त्यक्तहेत्वन्तरापेक्षौ गुणदोषनिबन्धनौ।

यस्यादानपरित्यागौ स एव विदुषां वरः।। (145)

अर्थः-अन्य कारणों की अपेक्षा छोड़कर जो जीव गुणों और दोषों के कारण ही ग्रहण और त्याग करते हैं, वे ही ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं।

भावार्थः-जीवों में किसी को ग्रहण करने की और किसी को छोड़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जिनसे सम्यग्दर्शनादि गुण प्रकट हों, उनका ग्रहण करना चाहिए और जिनसे मिथ्यादर्शनादि दोष उत्पन्न हों, उनका त्याग करना चाहिए। इस प्रकार जो गुणों और दोषों के कारण ग्रहण-त्याग करते हैं तथा जिनका अन्य कोई विषय-कषायादि का प्रयोजन नहीं पाया जाता, वे जीव उत्कृष्ट ज्ञानी जानना चाहिए, क्योंकि वे अपना हित साधते हैं, और अपना हित साधना ही बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है।

अहित का त्याग और हित में प्रवर्तन करने की प्रेरणा

हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीदुःखायसे भृशम्।

विपर्यये तयोरेधि त्वं सुखायिष्यसे सुधीः।। (246)

अर्थः-हे जीव! तू दुर्बुद्धि होता हुआ हित को छोड़कर अहित में स्थित रहकर अपने को अत्यन्त दुःखी करता है, इसलिए अब इसका उल्टा कर! अर्थात् सुबुद्धि होता हुआ अहित को छोड़कर हित में स्थित रहते हुए उसी की वृद्धि कर! इससे तू अपने स्वाभाविक सुख को प्राप्त करेगा।

इमे दोषास्तेषां प्रभवनममीभ्यो नियमतः,

गुणाश्चैते तेषामपि भवनमेतेभ्य इति यः।

त्यजंस्त्याज्यान् हेतून् झटिति हितहेतून् प्रतिभजन्,

स विद्वान् सद्वृत्तः सह हि स हि निधिः सौख्ययशसोः।। (247)

अर्थः-ये दोष हैं और ये इन कारणों से उत्पन्न होते हैं तथा ये गुण हैं और ये इन कारणों से उत्पन्न होते हैं-ऐसा निश्चय करके जो जीव त्यागने योग्य कारणों को शीघ्र छोड़ता है और हित के कारणों का सेवन करता है, वही जीव ज्ञानी है, वही सम्यक् चारित्रवान है और वही सुख और यश का निधान है।

विवेकियों का कर्त्तव्य

विवेकी जीवों को हित की वृद्धि और अहित का नाश-ये दोनों कार्य करना

चाहिए, क्योंकि उनके बिना अन्य धनादि की वृद्धि और नाश तो सभी प्राणियों में देखा जाता है-

साधारणौ सकलजन्तुषु वृद्धिनाशौ-
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकर्मयोगात्।
धीमान् स यः सुगतिसाधनवृद्धिनाशः
तद्व्यत्ययाद्विगतधीरपरोऽभ्यधायि।। (248)

अर्थः-विगत पूर्व जन्मों में उपार्जित पुण्य-पाप कर्मों के उदयरूप संयोग से शरीर, धनादि की वृद्धि या हानि सभी प्राणियों में समानरूप से पायी जाती है परन्तु बुद्धिमान वही है जिसको सुगति की कारण भूत वृद्धि-हानी पायी जाए तथा उनसे अन्य जिनमें दुर्गति के कारणभूत वृद्धि-हानि होती है वे निर्बुद्धि हैं-ऐसा श्री गुरु ने कहा है।

नमस्ते प्राप्तकल्याणसहेज्याय महौजसे।
प्राज्यत्रैलोक्यराज्याय ज्यायसे ज्यायसामपि।। (184) (आदि.पु.)

हे नाथ, आपको गर्भ आदि कल्याणकों के समय बड़ी भारी पूजा प्राप्त हुई है, आप महान् तेज के धारक हैं, आपको तीन लोक का उत्कृष्ट राज्य प्राप्त हुआ है और आप बड़ों में भी बड़े अथवा श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

नमस्ते नतनाकीन्द्रचूलारत्नार्चिताङ्घ्रये।
नमस्ते दुर्जयारातिनिर्जयोपार्जितश्रिये।। (185)

नमस्कार करते हुए स्वर्ग के इन्द्रों के मुकुट में लगे हुए मणियों से जिनके चरणों की पूजा की गयी है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो और जिन्होंने कर्मरूपी दुर्जेय शत्रुओं को जीतकर अनन्तचतुष्टयरूपी उत्तम लक्ष्मी प्राप्त की है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो।

नमोऽस्तु तुभ्यमिद्धर्द्धे सपर्यामर्हते पराम्।
रहोरजोऽरिघाताच्च प्राप्तन्नामरूढये।। (186)

हे उत्कृष्ट ऋद्धियों को धारण करनेवाले, आप उत्कृष्ट पूजा के योग्य हैं, तथा रहस् अर्थात् अन्तराय रज अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण और अरि अर्थात् मोहनीय कर्म के नष्ट करने से आपने 'अरिहन्त' ऐसा सार्थक नाम प्राप्त किया है इसलिए आप को नमस्कार हो।

जितान्तक नमस्तुभ्यं जितमोह नमोऽस्तुते।
जितानङ्ग नमस्ते स्याद् विरागाय स्वयंभुवे।। (187)

हे मृत्यु को जीतनेवाले, आप को नमस्कार हो। हे मोह को जीतनेवाले, आपको नमस्कार हो। और हे काम को जीतनेवाले, आप वीतराग तथा स्वयम्भू हैं इसलिए आप को नमस्कार हो।

त्वां नमस्यन् जनैर्नम्रैर्नम्यते सुकृती पुमान्।
गां जयेज्जितजेत व्यस्त्वज्जयोद्घोषणात्कृती।। (188)

हे नाथ, जो आप को नमस्कार करता है वह पुण्यात्मा पुरुष अन्य अनेक नम्र पुरुषों के द्वारा नमस्कृत होता है और जो आप के विजय की घोषणा करता है वह कुशल पुरुष जीतने योग्य समस्त कर्मरूप शत्रुओं को जीतकर गो अर्थात् पृथिवी या वाणी को जीतता है।

त्वत्स्तुतेः पूतवागस्मि त्वत्स्मृतेः पूतमानसः।
त्वन्नतेः पूतदेहोऽस्मि धन्योऽस्म्यद्य त्वदीक्षणात्।। (189)

हे देव, आज आपकी स्तुति करने से मेरे वचन पवित्र हो गये हैं, आप का स्मरण करने से मेरा मन पवित्र हो गया है, आपको नमस्कार करने से मेरा शरीर पवित्र हो गया है और आप के दर्शन करने से मैं धन्य हो गया हूँ।

अहमद्य कृतार्थोऽस्मि जन्माद्य सफलं मम।
सुनिर्वृत्ते दृशो मेऽद्य सुप्रसन्नं मनोऽद्य मे।। (190)

हे भगवन, आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ, आज मेरा जन्म सफल हो गया है, आज मेरे नेत्र सन्तुष्ट हो गये हैं और आज मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है।

त्वत्तीर्थसरसि स्वच्छे पुण्यतोयसुसंभृते।
सुस्नातोऽहं चिरादद्य पूतोऽस्मि सुखनिर्वृतः।। (191)

हे देव, स्वच्छ और पुण्यरूप जल से खूब भरे हुए आप के तीर्थरूपी सरोवर में मैंने चिरकाल से अच्छी तरह स्नान किया है इसीलिए मैं आज पवित्र तथा सुख से सन्तुष्ट हो रहा हूँ।

त्वत्पादनखभाजालसलिलैरस्तकल्मषैः।

अधिमस्तकमालग्नैरभिषिक्त इवास्म्यहम्।। (192)

हे प्रभो, जिसने समस्त पाप नष्ट कर दिये हैं ऐसा जो यह आपके चरणों के नखों की कान्ति का समूहरूप जल मेरे मस्तकपर लग रहा है उससे मैं ऐसा मालूम होता हूँ मानो मेरा अभिषेक ही किया गया हो।

एकतः सार्वभौमश्रीरियमप्रतिशासना।

एकतश्च भवत्पादसेवालोकैकपावनी।। (193)

हे विभो, एक ओर तो मुझे दूसरे के शासन से रहित यह चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त हुई और एक ओर समस्त लोक को पवित्र करनेवाली आपके चरणों की सेवा प्राप्त हुई है।

यदिग्भ्रान्तिविमूढेन महदेनो मयाऽर्जितम्।

तत्त्वत्संदर्शनाल्लीनं तमो नैशं रवेर्यथा।। (194)

हे भगवन्, दिशाभ्रम होने से विमूढ़ होकर अथवा दिग्विजय के लिए अनेक दिशाओं में भ्रमण करने के लिए मुग्ध होकर मैंने जो कुछ पाप उपार्जन किया था वह आपके दर्शन मात्र से उस प्रकार विलीन हो गया है जिस प्रकार कि सूर्य के दर्शन से रात्रि का अन्धकार विलीन हो जाता है।

त्वत्पदस्मृतिमाणेण पुमानेति पवित्रताम्।

किमुत त्वद्गुणस्तुत्या भक्त्यैवं सुप्रयुक्तया।। (195)

हे देव, आपके चरणों के स्मरणमात्र से ही जब मनुष्य पवित्रता को प्राप्त हो जाता है तब फिर इस प्रकार भक्ति से की हुई आपके गुणों की स्तुति से क्यों नहीं पवित्रता को प्राप्त होगा? अर्थात् अवश्य ही होगा।

भगवंस्त्वद् गुणस्तोत्राद् यन्मया पुण्यभार्जितम्।

तेनास्तु त्वत्पदाम्भोजे परा भक्तिः सदापि मे।। (196)

हे भगवन्, आपके गुणों की स्तुति करने से जो मैंने पुण्य उपार्जन किया है उससे यही चाहता हूँ कि आपके चरणकमलों में मेरी भक्ति सदा बनी रहे। इस प्रकार चर अचर जीवों के गुरु सर्वोत्कृष्ट भगवान् वृषभदेव को नमस्कार कर जिसने आनन्द के आँसुओं की बूँदों से सामने का प्रदेश सींच दिया है,

जिसका ज्ञान प्रकाशमान हो रहा है, और जिसने दोनों हाथ जोड़कर अपने मस्तक से लगा रखे हैं ऐसे चक्रवर्ती भरत ने भक्तिपूर्वक भगवान् को नमस्कार किया। कर्मरूपी शत्रुओं के समूह को जीतने से जिन्हें विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसे पुराण पुरुष भगवान् वृषभदेव से पुरातन धर्म का स्वरूप सुनकर भरताधिपति महाराज भरत बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान पुरुषों को प्रायः अपना हित करने में ही सन्तोष होता है। तदनन्तर अपने चंचल मुकुट के किनारे से जिन्होंने भगवान् पादपीठ का स्पर्श किया है ऐसे निधियों के स्वामी भरत महाराज अपने पिता आदिनाथ भगवान् से पूछकर तथा वहाँ विराजमान अन्य मुनियों को नम्र हुए मस्तक से नमस्कार कर अपनी निवासभूमि अयोध्या को जाने के लिए तत्पर हुए। चक्राधिपति भरत ने जिसमें अनुक्रम से खिले हुए सुन्दर फूल गुँधे हुए हैं और जो श्री जिनेन्द्रदेव के चरणों में भक्तिपूर्वक अर्पित की गयी है ऐसी माला के समान, सुन्दर मन की प्रसन्नता से युक्त अपनी दृष्टि को शेषाक्षत समझ बड़ी कठिनाई से हटाकर भगवान् के सभाभवन अर्थात् समवसरण से प्रस्थान किया। भगवान् के समवसरण की प्रकाशमान विभूति को देखने से जिनके दोनों नेत्र खुल रहे हैं, जिनकी भुजाएं युग (जुवांरी) के समान लम्बी हैं, मस्तक झुकाये हुए अनेक राजा लोग जिनके पीछे-पीछे चल रहे हैं और जो कुलकरों के वंश की पताका के समान जान पड़ते हैं ऐसे भरत महाराज अपने घर की ओर लौटे। चूँकि पुण्य के उदय से ही चक्रवर्ती ने समस्त दिशाएँ जीतीं, तथा उन के जीतने में साठ हजार वर्ष लगाये और फिर प्रीतिपूर्वक जिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त किया। इसलिए हे बुद्धिमान् जन, पुण्य के संग्रह करने में प्रयत्न करो।

अथानन्तर-सुमेरु पर्वत से इन्द्र की तरह कैलास पर्वत से उतरकर उस बुद्धिमान् चक्रवर्ती ने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। सेना के साथ-साथ अपने घर की ओर प्रस्थान करता हुआ चक्रवर्ती ऐसा सुशोभित होता था मानो नदियों के समूह के साथ किसी से न रुकनेवाला गंगा का प्रवाह समुद्र की ओर जा रहा हो। तदनन्तर कितने ही मुकाम तय कर चक्रवर्ती की वह सेना जिसमें तोरण बंधे हुए हैं और अनेक ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसी अध्योध्या नगरी के समीप जा पहुँची। जिसकी बुहारकर साफ की हुई पृथिवी घिसे हुए गीले चन्दन से सींची गयी है ऐसी वह

अध्योयानगरी उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो उसने पति के आने पर स्नान कर चन्दन का लेप ही किया हो। महाराज भरत नगरी के समीप ही ठहरे हुए थे वहाँ से नगरी में प्रवेश करते समय जिसने समस्त शत्रुओं के समूह को नष्ट कर दिया है ऐसा उन का चक्ररत्न नगर के गोपुरद्वार को उल्लंघन कर आगे नहीं जा सका-बाहर ही रुक गया। गोपुर के समीप रुके हुए चक्र की किरणों से अनुरक्त होने के कारण जिसकी कान्ति कुंकम के समान कुछ-कुछ पीली हो रही है ऐसी वह नगरी उस समय इस प्रकार जान पड़ती थी मानो उसने सन्ध्या की लालिमा ही धारण की हो।

जिसके आगे चक्ररत्न देदीप्यमान हो रहा है ऐसी वह नगरी उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो यह भरतराज सचमुच ही सब चक्रवर्तियों में मुख्य है, अपनी इस बात की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए उसने तृप्त अयोगोलक आदि को ही धारण किया हो। तदनन्तर चक्ररत्न की रक्षा करनेवाले कितने ही देव चक्र को एक स्थान पर खड़ा हुआ देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए? जिन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे कितने ही देव, क्या है? क्या है? इस प्रकार चिल्लाते हुए हाथ में तलवार लेकर अलातचक्र की तरह चारों ओर घूमने लगे। क्या यह आकाश से सूर्य का बिम्ब लटक पड़ा है? अथवा कोई दूसरा ही सूर्य उदित हुआ है? ऐसा विचार कर कितने ही लोग बार-बार मोहित हो रहे थे।

आज यह चक्र क्रूरग्रह के समान वक्र हुआ है इसलिए अकालचक्र के समान किसी विरोधी शत्रु पर अवश्य ही पड़ेगा। अथवा अब भी कोई चक्रवर्ती के जेतव्य पक्ष में हैं-जीतने योग्य शत्रु विद्यमान है इस प्रकार चक्र के रुक जाने से चक्र के स्वरूप को जाननेवाले कितने ही लोग विचार कर रहे थे। सेनापति आदि प्रमुख लोगों ने यह बात चक्रवर्ती से कही और उसके सुनते ही वे कुछ आश्चर्य करने लगे। वे विचार करने लगे कि जिसकी आज्ञा कहीं भी नहीं रुकती ऐसे मेरे रहते हुए भी, जिसकी गति कहीं भी नहीं रुकी ऐसा यह चक्ररत्न आज क्यों रुक रहा है? इस बात का विचार करना चाहिए यही सोचकर धीर वीर मनु ने पुरोहित को बुलाया और उसने नीचे लिखे हुए बहुत ही गम्भीर वचन कहे। कहते हुए भरत महाराज के मुखकमल से स्पष्ट अभिप्रायवाली और उत्तम-उत्तम अलंकारों से सजी हुई जो वाणी

निकल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो विजयलक्ष्मी की दूती ही हो। जिसने समस्त दिशाओं के समूह पर आक्रमण किया है जो शत्रुओं के समूह के लिए भयंकर है और जिसने सूर्य की किरणों का भी तिरस्कार कर दिया है ऐसा यह चक्र मेरे ही नगर के द्वार में क्यों नहीं आगे बढ़ रहा है-प्रवेश कर रहा है? जो समस्त दिशाओं को विजय करने में पूर्व-दक्षिण और पश्चिम समुद्र में कहीं नहीं रुका, तथा जो विजयार्ध की दोनों गुफाओं में नहीं रुका वही चक्र आज मेरे घर के आँगन में क्यों रुक रहा है? प्रायः मेरे साथ विरोध रखनेवाला कोई विजिगीषु (जीत की इच्छा करनेवाला) ही होना चाहिए। क्या मेरे उपभोग के योग्य क्षेत्र (राज्य) में ही कोई असाध्य शत्रु मौजूद है अथवा दुष्ट हृदयवाला मेरे गोत्र का ही कोई पुरुष मुझसे द्वेष करता है। अथवा बिना कारण ही द्वेष करनेवाला कोई दुष्ट पुरुष मेरा अभिनन्दन नहीं कर रहा है-मेरी वृद्धि नहीं सह रहा है सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट पुरुषों के हृदय प्रायः कर बड़े आदमियों पर भी बिगड़ जाते हैं। महापुरुषों के हृदय दूसरों की वृद्धि होने पर मात्सर्य से रहित होते हैं परन्तु क्षुद्र पुरुषों के हृदय दूसरों की वृद्धि होने पर ईर्ष्यासहित होते हैं। अथवा दुष्ट अहंकार से घिरा हुआ कोई मेरे ही घर का मनुष्य नम्र नहीं हो रहा है, जान पड़ता है यह चक्र उसी का अहंकार दूर करने के लिए वक्र हो रहा है। शत्रु अत्यन्त छोटा भी हो तो उसकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, द्वेष करनेवाला छोटा होने पर भी शीघ्र ही उच्छेद करने योग्य है क्योंकि आँख में पड़ी हुई धूलि की कणिका के समान उपेक्षा किया हुआ छोटा शत्रु भी पीड़ा देनेवाला हो जाता है। काँटा यदि अत्यन्त छोटा हो तो भी उसे जबरदस्ती निकाल डालना चाहिए क्योंकि पैर में लगा हुआ काँटा यदि निकाला नहीं जायेगा तो वह अत्यन्त दुःख का देनेवाला हो सकता है। यह चक्ररत्न उत्तम देवरूप है और रत्नों में मुख्य रत्न है इसकी गति का स्खलन बिना किसी कारण के नहीं हो सकता है। इसलिए हे आर्य, इस चक्र ने जो कार्य सूचित किया है वह कुछ छोटा नहीं है क्योंकि यह राज्य का उत्तम अंग है इसमें किसी अल्पकारण से विकार नहीं हो सकता है। इसलिए हे बुद्धिमान पुरोहित, आप इस चक्ररत्न के रुकने में क्या कारण हैं इसका अच्छी तरह विचार कीजिए क्योंकि बिना विचार किये हुए कार्यों की सिद्धि न तो इस लोक में होती है और न परलोक ही में होती है। आप दिव्य नेत्र है इसलिए इस कार्यका ज्ञान आप में ही रहता है अर्थात् आप ही चक्ररत्न के

रुकने का कारण जान सकते हैं क्योंकि अन्धकार को नष्ट करने में सूर्य के सिवाय और कौन समर्थ हो सकता है? इस प्रकार महाराज भरत थोड़े ही अक्षरों के द्वारा इस निमित्तज्ञानी के लिए अपना कार्य निवेदन कर चुप हो रहे सो ठीक ही है क्योंकि प्रभु लोग प्रायः थोड़े ही बोलते हैं। तदनन्तर निमित्तज्ञानी पुरोहित भरतेश्वर को समझाने के लिए प्रसन्न तथा गम्भीर पद और अलंकारों से कोमल वचन कहने लगा। जो माधुर्य, जो ओज, जो पदों का सुन्दर विन्यास और जो अर्थ की सरलता आप के वचनों में नहीं है वह क्या किसी दूसरी जगह है? अर्थात् नहीं है। हम लोग तो केवल शास्त्र को जाननेवाले हैं कार्य करने की युक्तियों में अभिज्ञ नहीं है परन्तु राजनीति में शास्त्र के प्रयोग को जाननेवाला आप के समान दूसरा कौन है? अर्थात् कोई नहीं है। आप राजाओं में प्रथम राजा है और राजाओं में ऋषि के समान श्रेष्ठ होने से राजर्षि हैं वह राजविद्या केवल आप से ही उत्पन्न हुई इसलिए उसे जाननेवाले हम लोग आपके ही सामने उसका प्रयोग करते हुए क्यों न लज्जित हों। तथापि आपके द्वारा किया हुआ हमारा असाधारण सत्कार लोक में हमारे गौरव को बढ़ा रहा है इसलिए ही मैं कुछ कहने के लिए तैयार हुआ हूँ। हे देव, हम लोगों ने निमित्तज्ञानियों का ऐसा उपदेश सुना है कि जबतक दिग्विजय करना कुछ भी बाकी रहता है तब तक चक्ररत्न विश्राम नहीं लेता अर्थात् चक्रवर्ती की इच्छा के विरुद्ध कभी भी नहीं रुकता है। जो जलती हुई ज्वालाओं से भयंकर है ऐसा वह आपका विजयी शस्त्र नगर के द्वारपर गुप्त रीति से रोके हुए के समान अटककर रह गया है। हे देव, आपके प्रजा का शासन करते हुए शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, और मित्र का मित्र ये शब्द केवल शास्त्र में ही रह गये हैं अर्थात् व्यवहार में न आपका कोई मित्र है न और न कोई शत्रु ही है सब आपके सेवक हैं। तथापि अब भी आपके जीतने योग्य रह गया है और वह उदर में किसी भयंकर रोग के समान आप के घर में ही प्रकट हुआ है। आपके द्वारा यह बाह्यमण्डल ही आक्रान्त-पराजित हुआ है परन्तु अन्तर्मण्डल की विशुद्धता तो अब भी कुछ नहीं हुई है। **भावार्थ**-यद्यपि आपने बाहर के लोगों को जीत लिया है तथापि आपके घर के लोग अब भी आपके अनुकूल नहीं है। यद्यपि आपने समस्त शत्रु पक्ष को जीत लिया है तथापि आपके भाई आपके प्रति नम्र नहीं हैं-उन्होंने आप के लिए नमस्कार नहीं किया है। वे आपके विरुद्ध खड़े हुए हैं और सजातीय होने के कारण

आपके द्वारा विघात करने योग्य भी नहीं है। तेजस्वी पुरुष बड़ा होने पर भी अपने सजातीय लोगों के द्वारा रोका जाता है यह बात सूर्य के सम्मुख जलते हुए सूर्यकान्त मणि के उदाहरण से स्पष्ट है। सजातीय पुरुष निर्बल होने पर भी किसी बलवान् पुरुष का आश्रय पाकर राजा को उस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार निर्बल दण्ड कुल्हाड़ी का तीक्ष्ण आश्रय पाकर अपने सजातीय वृक्ष आदि को नष्ट कर देता है। ये आपके बलवान् तथा अभिमानी भाई अजेय हैं और इनमें भी अतिशय युवा धीर वीर तथा बलवान् बाहुबली मुख्य है। आपके ये निन्यानबे भाई बड़े बलशाली हैं, हम लोग भगवान् आदिनाथ को छोड़कर और किसी को प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा वे निश्चय कर बैठे हैं। इसलिए हे चक्रधर, आपको इस विषय में शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ऋण, घाव, अग्नि और शत्रु के बाकी रहे हुए थोड़े भी अंश की उपेक्षा नहीं करते हैं। हे राजन्, यह पृथिवी केवल आप के द्वारा ही राजवन्ती अर्थात् उत्तम राजा से पालन की जानेवाली हो, आपके भाईयों से अधिक होने से अनेक राजाओं के सम्बन्ध से जिसकी स्थिति बिगड़ गयी है ऐसी होकर राजवती अर्थात् अनेक साधारण राजाओं से पालन की जानेवाली न हो। **भावार्थ**-जिस पृथिवी का शासक उत्तम हो वह राजन्वती कहलाती है और जिसका शासक अच्छा न हो, नाम मात्र का ही हो वह राज वती कहलाती है। पृथ्वी पर अनेक राजाओं का राज्य होने से उसकी स्थिति छिन्न-भिन्न हो जाती है इसलिए एक आप ही इस रत्नमयी वसुन्धरा के शासक हों, आपके अनेक भाईयों में यह विभक्त न होने पावे। हे देव, आपके राजा रहते हुए राजा यह शब्द किसी दूसरी जगह सुशोभित नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि सिंह के रहते हुए हरिण मृगेन्द्र शब्द को किस प्रकार धारण कर सकते हैं? हे देव, आपके भाई ईर्ष्या छोड़कर आपके अनुकूल रहें क्योंकि आप उन सब में बड़े है और इस काल में मुख्य है इसलिए उनका आपके अनुकूल रहना शास्त्र में कहा हुआ है। आपके दूत जावें और युक्ति के साथ बातचीत कर उन्हें आपके आज्ञाकारी बनावें, यदि वे इस प्रकार आज्ञाकारी न हों तो विग्रह कर (बिगड़कर) अन्य प्रकार भी बातचीत करें। मिथ्या अभिमान से उद्धत होकर यदि कोई आपके वश नहीं होगा तो खेद है कि अपने-आपको तथा अपने अधीन रहनेवाले राजाओं के समूह का नाश करावेगा। राज्य और कुलवती स्त्रियाँ ये दोनों ही पदार्थ साधारण नहीं है, इनका

उपभोग एक ही पुरुष कर सकता है। जो पुरुष इन दोनों का अन्य पुरुषों के साथ उपभोग करता है वह नर नहीं है पशु ही है। इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है या तो वे आकर आपको प्रणाम करें या जगत् की रक्षा करनेवाले जिनेन्द्रदेव की शरण को प्राप्त हों। आपके उन भाईयों की तीसरी गति नहीं है, इनके ये ही दो मार्ग हैं कि या तो वे आपके शिविर में प्रवेश करें या मृगों के साथ वन में प्रवेश करें। सजातीय लोग परस्पर के विरुद्ध आचरण से अंगारे के समान जलाते रहते हैं और वे ही लोग परस्पर में अनुकूल रहकर नेत्रों के लिए अतिशय आनन्द रूप होते हैं। इसलिए ये आपके भाई मात्सर्य छोड़कर शान्त हो मस्तक झुकाकर आपको नमस्कार करें और आपकी प्रसन्नता की इच्छा रखते हुए सुख से वृद्धि को प्राप्त होते रहें। इस प्रकार शास्त्र के जाननेवाले बुद्धिमान् पुरोहित के कह चुकने पर चक्रवर्ती भरत ने उसी के कहे अनुसार कार्य करना स्वीकार कर उसी क्षण क्रोध किया। जो क्रोध से कलुषित हुई अपनी दृष्टि को दिशाओं के लिए बलि देते हुए के समान सब दिशाओं में फेंक रहे हैं, क्रोधरूपी अग्नि की धूमसहित शिखा के समान भृकुटियाँ ऊँची चढ़ा रहे हैं, भाईरूपी मूलधनपर किये हुए क्रोधरूपी विषके वेग को जो वचनों के छल से उगल रहे हैं और जो क्रोध से उछल रहे हैं ऐसे महाराज भरत नीचे लिखे अनुसार कठोर वचन कहने लगे। हे पुरोहित, क्या कहा? क्या कहा? वे दुष्ट भाई मुझे प्रणाम नहीं करते हैं, अच्छा तो तू उन्हें मेरे दण्डरूपी प्रचण्ड उल्कापात से टुकड़े किया हुआ देख। उनका यह कार्य न तो कभी देखा गया है, न सुना गया है, उनका यह वैर बिना कारण ही किया हुआ है, उनका ख्याल है कि हम लोग एक कुल में उत्पन्न होने के कारण अवध्य हैं। उन्हें यौवन के उन्माद से उत्पन्न हुआ योद्धा होने का कठिन वायुरोग हो रहा है इसलिए जलते हुए चक्र के सन्ताप से पसीना आना ही उसका प्रतिकार-उपाय है। वे लोग पूज्य पिताजी के द्वारा दी हुई पृथिवी को बिना कर दिये ही भोगना चाहते हैं परन्तु केवल योद्धापने के अहंकार से क्या होता है? अब या तो वे लोगों को सुनावें कि भरत ही इस पृथिवी का उपभोग करनेवाला है हम सब उसके अधीन हैं या युद्ध के मैदान में तीक्ष्ण शस्त्ररूपी काँटों के ऊपर जिनका शरीर पड़ा हुआ है ऐसे वे भाई प्रतिशय्या-दूसरी शय्या अर्थात् रणशय्या पर पड़कर उसका उपभोग प्राप्त करें। **भावार्थ**-जीते जी उन्हें उस पृथिवी का उपभोग प्राप्त नहीं हो

सकता। जिसने जीतने योग्य समस्त लोगों को जीत लिया है ऐसा कहाँ तो मैं, और मेरे उपभोग करने योग्य क्षेत्र में स्थित कहाँ वे लोग? तथापि मेरे अज्ञानुसार चलने पर उनका भी विभाग (हिस्सा) हो सकता है। और किसी तरह उनके उपभोग के लिए मैं उन्हें यह पृथिवी नहीं दे सकता हूँ। उन्हें जीते बिना यह चक्ररत्न किस प्रकार विश्राम ले सकता है? यह बड़ी निन्दा की बात है कि जो अतिशय बुद्धिमान् है, भाइयों में प्रेम रखनेवाला है, और कार्यकुशल है वह बाहुबली भी विकार को प्राप्त हो रहा है। बाहुबली को छोड़कर अन्य सब राजपुत्रों ने नमस्कार भी किया तो उससे क्या लाभ है और पोदनपुर के बिना विष के समान इस नगर का उपभोग भी किया तो क्या हुआ। जो नवीन पराक्रम से शोभायमान बाहुबली हमारी आज्ञा के वश नहीं हुआ तो भयंकर शस्त्रों से शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाले सेवकों से क्या प्रयोजन है? अथवा अहंकार बाहुबली जब इस प्रकार मेरे साथ अयोग्य ईर्ष्या कर रहा है तब अतिशय शूरवीरतारूप रस को धारण करनेवाले मेरे इन देवरूप योद्धाओं से क्या प्रयोजन है? इस प्रकार जब चक्रवर्ती क्रोध से बहुत बढ़-बढ़कर बातचीत करने लगे तब पुरोहित ने उन्हें शान्त कर उपायपूर्वक कार्य प्रारम्भ करने के लिए नीचे लिखे अनुसार उद्योग किया। हे देव, मैंने जीतने योग्य सबको जीत लिया है ऐसी घोषणा करते हुए भी आप क्रोध के वेग से व्यर्थ ही क्यों जीते गये? जितेन्द्रिय पुरुषों को तो क्रोध का वेग पहले ही जीतना चाहिए। वे आपके भाई बालक हैं इसलिए अपने बालस्वभाव से कुमार्ग में भी अपने इच्छानुसार क्रीड़ा कर सकते हैं परन्तु जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छहों अन्तरंग शत्रुओं को जीत लिया है ऐसे आप में यह अन्धकार ठहरने के योग्य नहीं है अर्थात् आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य क्रोधरूपी गाढ़ अन्धकार में डूबे हुए अपने आत्मा का उद्धार नहीं करता वह कार्य के संशयरूपी द्विविधा से पार होने के लिए समर्थ नहीं है। **भावार्थ**–क्रोध से कार्य की सिद्धि होने में सदा सन्देह बना रहता है। जो राजा अपने अन्तरंग से उत्पन्न होनेवाले शत्रुओं को जीतने के लिए समर्थ नहीं है वह अपने आत्मा को नहीं जाननेवाला कार्य और अकार्य को कैसे जान सकता है? इसलिए हे देव, अपकार करनेवाले इस क्रोध से दूर रहिए क्योंकि जीत की इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष केवल क्षमा के द्वारा ही पृथिवी को जीतते हैं। जिन्होंने इन्द्रियों के समूह को जीत लिया है, शास्त्ररूपी सम्पदा

का अच्छी तरह श्रवण किया है और जो परलोक को जीतने की इच्छा रखते हैं ऐसे पुरुषों के लिए सबसे उत्कृष्ट साधन क्षमा ही है। जो लेख लिखकर भी किया जा सकता है ऐसे इस कार्य में अधिक परिश्रम करना व्यर्थ है क्योंकि जो तृण का अंकुर नख से तोड़ा जा सकता है उसके लिए भला कौन कुल्हाड़ी उठाता है। इसलिए आपको शान्त रहकर भेंटसहित भेजे हुए दूतों के द्वारा ही यह भाइयों का समूह वश करना चाहिए। आज ही आपको पत्रसहित दूत भेजना चाहिए, वे जाकर उनसे कहें कि चलो और अपने बड़े भाई की सेवा करो। उनकी सेवा कल्पवृक्ष की सेवा के समान आप के सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली होगी। वह आपका बड़ा भाई पिता के तुल्य है, चक्रवर्ती है और सब तरह से आप लोगों के द्वारा पूज्य है। जिस प्रकार दूर रहनेवाले तारागणों से चन्द्रमा का बिम्ब सुशोभित नहीं होता है उसी प्रकार दूर रहनेवाले आप लोगों से उनका ऐश्वर्य सुशोभित नहीं होता है। आप लोगों के बिना यह राज्य उनके लिए सन्तोष देनेवाला नहीं हो सकता क्योंकि जिसका उपभोग भाइयों के साथ-साथ किया जाता है वही साम्राज्य सज्जन पुरुषों को आनन्द देनेवाला होता है। 'यह मौखिक सन्देश है, बाकी समाचार पत्र से मालूम कीजिए' इस प्रकार भेंटसहित पत्रों के द्वारा उन प्रतापी भाइयों को विश्वास दिलाना चाहिए। हे आर्य, आपके लिए यही कार्य यश देनेवाला है और यही कल्याण करनेवाला है यदि वे इस तरह शान्ति से वश न हों तो फिर आगे के कार्य का विचार करना चाहिए। आपको लोकापवाद से डरते हुए यही कार्य करना चाहिए क्योंकि लोक में यश ही स्थिर रहनेवाला है, सम्पत्तियाँ तो नष्ट हो जानेवाली हैं। इस प्रकार पुरोहित के वचनों से चक्रवर्ती ने अपनी क्रोधपूर्ण वृत्ति छोड़ दी सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों की चित्त की वृत्ति अनुकूल वचन कहने से ही ठीक हो जाती है। इस समय जो प्रयत्न से वश नहीं किया जा सकता ऐसा महाबलवान् बाहुबली दूर रहे पहले शेष भाइयों के द्वारा ही उनकी कुटिलता की परीक्षा करूँगा। इस प्रकार निश्चय कर कार्य करने में जिसकी बुद्धि कभी भी मोहित नहीं होती ऐसे चक्रवर्ती ने कार्य के जाननेवाले निःसृष्टार्थ दूतों को अपने भाइयों के समीप भेजा। उन दूतों ने भरत के आज्ञानुसार जाकर उनके योग्यरीति से दर्शन किये और उनके लिए चक्रवर्ती का सन्देश सुनाया। तदनन्तर-प्राप्त हुए ऐश्वर्य के मद से जो कठोर हो रहे हैं ऐसे वे सब भाई दूतों के द्वारा कार्य का निवेदन हो चुकने पर परस्पर

में मिलकर उनसे इस प्रकार वचन कहने लगे। कि जो आदिराजा भरत ने कहा है वह सच है और हम लोगों को स्वीकार है क्योंकि पिता न होने पर बड़ा भाई ही छोटे भाइयों के द्वारा पूज्य होता है। परन्तु समस्त संसार को जानने-देखनेवाले हमारे पिता प्रत्यक्ष विराजमान हैं वे ही हमको प्रमाण हैं, यह हमारा ऐश्वर्य उन्हीं का दिया हुआ है। इसलिए हम लोग इस विषय में पिताजी के चरणकमलों की आज्ञा के अधीन हैं, स्वतन्त्र नहीं है। इस संसार में हमें भरतेश्वर से न तो कुछ लेना है और न कुछ देना है। तथा चक्रवर्ती ने हिस्सा देने के लिए जो हम सब को आमन्त्रण दिया है अर्थात् बुलाया है उससे हम लोग बहुत सन्तुष्ट हुए हैं और गले तक तृप्त हो गये हैं। इस प्रकार राजाओं की तरह योग्य सन्मानों से उन दूतों का सत्कार कर तथा भरत के लिए उपहार देकर और बदले के पत्र लिखकर उन राजकुमारों ने दूतों को शीघ्र ही बिदा कर दिया। इस प्रकार जिन्होंने दूतों का सन्मान कर भरत के लिए योग्य उत्तर दिया है ऐसे वे सब राजकुमार, पूज्य पिताजी का दिया हुआ कार्य उन्हीं को सौंपने के लिए उनके समीप पहुँचे। जिनके पास परिमित तथा योग्य सामग्री है ऐसे उन राजकुमारों ने किसी महापर्वत के समान ऊँचे और कैलास के शिखर पर विद्यमान पूज्य पिता भगवान् वृषभेदव के जाकर दर्शन किये। उन राजकुमारों ने विधिूर्वक प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजा की और फिर कामदेव को नष्ट करनेवाले भगवान् से नीचे लिखे वचन कहे। हे देव, हम लोगों ने आपसे ही जन्म पाया है, आप से ही यह उत्कृष्ट विभूति पायी है और अब भी आपकी प्रसन्नता की इच्छा रखते हैं, हम लोग आपको छोड़कर और किसी की उपासना नहीं करना चाहते। इस संसार में लोग यह 'पिताजी का प्रसाद है' ऐसा केवल कहते ही हैं परन्तु आपके प्रसाद से जिन्हें उत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है ऐसे हम लोग इस वाक्य के रस का अनुभव ही कर चुके हैं। आपको प्रणाम करने में तत्पर, आपकी प्रसन्नता को चाहनेवाले और आपके वचनों के किंकर हम लोगों का चाहे जो हो परन्तु हम लोग और किसी की उपासना नहीं करना चाहते हैं। ऐसा होने पर भी भरत हम लोगों को प्रणाम करने के लिए बुलाता है सो इस विषय में उसका मद कारण है अथवा मात्सर्य यह हम लोग कुछ नहीं जानते।

युष्मत्प्रणमनाभ्यासरसदुर्ललितं शिरः।
नान्यप्रणमने देव धृतिं बध्नाति जातु नः।। (104)

हे देव, जो आपको प्रणाम करने के अभ्यास के रस से मस्त हो रहा है ऐसा यह हमारा शिर किसी अन्य को प्रणाम करने में सन्तोष प्राप्त नहीं कर रहा है।

किमम्भोजरजःपुञ्जपिञ्जरं वारि मानसे।

निषेव्य राजहंसोऽयं रमतेऽन्यसरोजले।। (105)

क्या यह राजहंस मानसरोवर में कमलों की पराग की समूह से पीले हुए जल की सेवा कर किसी अन्य तालाब के जल की सेवा करता है? अर्थात् नहीं करता है?

किमप्सरःशिरोजान्तसुमनोगन्धलालितः।

तुम्बीवनान्त मभ्येति प्राणान्तेऽपि मधुव्रतः।। (106)

क्या अप्सराओं के केशों में लगे हुए फूलों की सुगन्ध से सन्तुष्ट हुआ भ्रमर प्राण जाने पर भी तूँबी के वन में जाता है अर्थात् नहीं जाता है।

मुक्ताफलाच्छमापाय गगनाम्बुनवाम्बुदात्।

शुष्यत्सरोऽम्बु किं वाञ्छेदुदन्यन्नपि चातकः।। (107)

अथवा जो चातक नवीन मेघ से गिरते हुए मोती के समान स्वच्छ आकाशगत जल को पी चुका है क्या वह प्यासा होकर भी सूखते हुए सरोवर के जल को पीना चाहेगा? अर्थात् नहीं।

इति युष्मत्पदाब्जन्म रजोरञ्जितमस्तकाः।

प्रणन्तुमदाप्ता नामिहामुत्र न नेश्महे।। (108)

इस प्रकार आपके चरणकमलों की पराग से जिनके मस्तक रंग रहे हैं ऐसे हम लोग इस लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकों में आप्तभिन्न देव और मनुष्यों को प्रणाम करने के लिए समर्थ नहीं है।

परप्रणामविमुखीं भयसंगविवर्जिताम्।

वीरदीक्षां वयं धर्तु भवत्पार्श्वमुपागताः।। (109)

जिसमें किसी अन्य को प्रणाम नहीं करना पड़ता, और जो भय के सम्बन्ध से रहित है ऐसी वीरदीक्षा को धारण करने के लिए हम लोग आपके समीप आये हुए हैं।

तद्देव कथयास्माकं हितं पथ्यं च वर्त्म यत्।

येनेहामुत्र च स्याम त्वद्भक्तिदृढवासनाः।। (110)

इसलिए हे देव, जो मार्गहित करनेवाला और सुख पहुँचाने वाला हो वह हम लोगों को कहिए जिससे इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकों में हम लोगों की वासना आपकी भक्ति में दृढ़ हो जावे।

परप्रणामसंजातमानभङ्गभयातिगाम्।
पदवीं तावकीं देव भवेमहि भवे भवे।। (111)

हे देव, जो दूसरों को प्रणाम करने से उत्पन्न हुए मानभंग के भय से दूर रहती है ऐसी आप की पदवी को हम लोग भवभव में प्राप्त होते रहें।

मानखण्डनसंभूतपरिभूति भयातिगाः।
योगिनः सुखमेधन्ते वनेषु हरिभिः समम्।। (112)

मानभंग से उत्पन्न हुए तिरस्कार के भय से दूर रहनेवाले योगी लोग वनों में सिंहो के साथ सुख से बढ़ते रहते हैं।

ब्रुवाणनिति साक्षेपं स्थापयन्पथि शाश्वते।
भगवानिति तानुचैरन्वशादनुशासिता।। (113)

इस प्रकार आक्षेपसहित कहते हुए राजकुमारों को अविनाशी मोक्षमार्ग में स्थित करते हुए हितोपदेशी भगवान् वृषभदेव इस प्रकार उपदेश देने लगे।

महामाना वपुष्मन्तो वयस्सत्त्वगुणान्विताः।
कथमन्यस्य संकाह्या यूयं भद्रा द्विपा इव।। (114)

महा अभिमानी और उत्तम शरीर को धारण करनेवाले तथा तारुण्य अवस्था, बल और गुणों से सहित तुम लोग उत्तम हाथियों के समान दूसरों के संवाह्य अर्थात् सेवक (पक्ष में वाहन करने योग्य सवारी) कैसे हो सकते हो?

भङ्गिना किमु राज्येन जीवितेन चलेन किम्।
किं च भो यौवनोन्मादैरैश्वर्यबलदूषितैः।। (115)

हे पुत्रो, इस विनाशी राज्य से क्या हो सकता है? इस चंचल जीवन से क्या हो सकता है? और ऐश्वर्य तथा बल से दूषित हुए इस यौवन के उन्माद से क्या हो सकता है।

किं बलैर्बलिनां गम्यैः किं हार्यैर्वस्तुवाहनैः।
तृष्णाग्निबोधनैरेभिः किं धनैरिन्धनैरिव।। (116)

जो बलवान् मनुष्यों के द्वारा जीती जा सकती है, ऐसी सेनाओं से क्या प्रयोजन है? जिनकी चोरी की जा सकती है ऐसे सोना, चाँदी, हाथी, घोड़ा आदि पदार्थों से क्या प्रयोजन है? और ईंधन के समान तृष्णारूपी अग्नि को प्रज्वलित करने वाले इस धन से भी क्या प्रयोजन है?

भुक्त्वापि सुचिरं कालं यैर्न तृप्तिः क्लमः परम्।
विषयैस्तैरलं भुक्तैर्विषमिश्रैरिवाशनैः।। (117)

चिरकाल तक भोग कर भी जिन से तृप्ति नहीं होती, उलटा अत्यन्त परिश्रम ही होता है ऐसे विष मिले हुए भोजन के समान इन विषयों का उपभोग करना व्यर्थ है।

किं च भो विषयास्वादः कोऽप्यनास्वादितोऽस्ति वः।
स एव पुनरास्वादः किं तेनास्त्यशितंभवः।। (118)

हे पुत्रो, तुमने जिसका कभी आस्वादन नहीं किया हो ऐसा भी क्या कोई विषय बाकी है? यह सब विषयों का वही आस्वाद है जिसका कि तुम अनेक बार आस्वादन (अनुभव) कर चुके हो फिर भला तुम्हें इनसे तृप्ति कैसे हो सकती है?

यत्र शस्त्राणि मित्राणि शत्रवः पुत्रबान्धवाः।
कलत्रंसर्वभोगीणा धरा राज्ये धिगीदृशम्।। (119)

जिसमें शत्रु मित्र हो जाते हैं, पुत्र और भाई वगैरह शत्रु हो जाते हैं तथा सब के भोगने योग्य पृथिवी ही स्त्री हो जाती है ऐसे राज्य को धिक्कार हो।

भुनक्तु नृपाशार्दूलो भरतो भरतावनिम्।
यावत्पुण्योदयस्तावत्तत्रालं वोऽतितिक्षया।। (120)

जब तक पुण्य का उदय है तब तक राजाओं में श्रेष्ठ भरत इस भरत क्षेत्र की पृथिवी का पालन करें इस विषय में तुम लोगों का क्रोध करना व्यर्थ है।

तेनापि त्याज्यमेवेदं राज्यं भङ्गि यदा तदा।
हेतोरशाश्वतस्यापास्य युध्यध्वे वत किं मुधा।। (121)

यह विनश्वर राज्य भरत के द्वारा भी जब कभी छोड़ा ही जावेगा इसलिए इस अस्थिर राज्य के लिए तुम लोग व्यर्थ ही क्यों लड़ते हो।

तदलं स्पर्द्धया दुध्वं यूयं धर्ममहातरोः।

दयाकुसुममम्लानि यत्तन्मुक्तिफलप्रदम्।। (122)

इसलिए ईर्ष्या करना व्यर्थ है, तुम लोग धर्मरूपी महावृक्ष के उस दयारूपी फूल को धारण करो जो कभी भी म्लान नहीं होता और जिसपर मुक्तिरूपी महाफल लगता है।

पराराधनदैन्योनं परैराराध्यमेव यत्।

तद्वो महाभिमानानां तपो मानाभिरक्षणम्।। (123)

जो दूसरों की आराधना से उत्पन्न हुई दीनता से रहित है बल्कि दूसरे पुरुष ही जिसकी आराधना करते हैं ऐसा तपश्चरण ही महा अभिमान धारण करनेवाले तुम लोगों के मान की रक्षा करनेवाला है।

दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या दयेयं प्राणवल्लभा।

इति ज्याय स्तपोराज्यमिदं श्लाघ्यपरिच्छदम्।। (124)

जिसमें दीक्षा ही रक्षा करनेवाली है, गुण ही सेवक है, और यह दया ही प्राणप्यारी स्त्री है इस प्रकार जिसकी सब सामग्री प्रशंसनीय है ऐसा यह तपरूपी राज्य ही उत्कृष्ट राज्य है।

इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्यं परं निर्वेदमागताः।

महाप्रवाज्यमास्थाय निष्क्रान्तोस्ते गृहाद्वनम्।। (125)

इस प्रकार भगवान् के वचन सुनकर वे सब राजकुमार परम वैराग्य को प्राप्त हुए और महादीक्षा धारण कर घर से वन के लिए निकल पड़े।

निर्दिष्टां गुरुणा साक्षादीक्षां नववधूमिव।

नवा इवा वराः प्राप्य रेजुस्ते युवपार्थिवाः।। (126)

साक्षात् भगवान् वृषभदेव के द्वारा दी हुई दीक्षा को नयी स्त्री के समान पाकर वे तरुण राजकुमार नये वर के समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे।

या कचग्रहपूर्वेण प्रणये नातिभूमिगा।

तया पाणिगृहीत्येव दीक्षया ते धृतिं दधुः।। (127)

उनकी वह दीक्षा किसी विवाहिता स्त्री के समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार विवाहिता स्त्री कचग्रह अर्थात् केश पकड़कर बड़े प्रणय अर्थात् प्रेम से समीप

आती है उसी प्रकार वह दीक्षा भी कचग्रह अर्थात् केशलोंच कर बड़े प्रणय अर्थात् शुद्ध नयों से उनके समीप आयी हुई थी इस प्रकार विवाहित स्त्री के समान सुशोभित होनेवाली दीक्षा से वे राजकुमार अन्तः करण में सुख को प्राप्त हुए थे।

तपस्तीव्रमथासाद्य ते चकासुर्नृपर्षयः।

स्वतेजोरुद्धविश्वासा ग्रीष्मम‌को शवो यथा।। (128)

अथानन्तर जिन्होंने अपने तेज से समस्त दिशाओं को रोक लिया है ऐसे वे राजर्षि तीव्र तपश्चरण धारण कर ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की किरणों के समान अतिशय देदीप्यमान हो रहे थे।

तेऽतितीव्रैस्तपोयोगस्तनूभूतां तनुं दधुः।

तपोलक्ष्म्या सुमत्कीर्णमिव दीप्तां तपोगुणैः।। (129)

वे राजर्षि जिस शरीर को धारण किये हुए थे वह तीव्र तपश्चरण से कृश होने पर भी तप के गुणों से अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था और ऐसा मालूम होता था मानो तपरूपी लक्ष्मी के द्वारा उकेरा ही गया हो।

स्थिताः सामयिके वृत्ते जिनकल्पविशेषिते।

ते तेपिरे तपस्तीव्रं ज्ञानशुद्धयुपबृंहितम्।। (130)

वे लोग जिनकल्प दिगम्बर मुद्रा से विशिष्ट सामायिक चारित्र में स्थित हुए और ज्ञान की विशुद्धि से बढ़ा हुआ तीव्र तपश्चरण करने लगे।

वैराग्यस्य परां कोटीमारूढास्ते युगेश्वराः।

स्वासाच्चक्रुस्तपोलक्ष्मीं राज्यलक्ष्म्यामनुत्सुकाः।। (131)

वैराग्य की चरम सीमा को प्राप्त हुए उन तरुण राजर्षियों ने राज्यलक्ष्मी से इच्छा छोड़कर तपरूपी लक्ष्मी को अपने वश किया था।

तपोलक्ष्म्या परिष्वक्ता मुक्तिलक्ष्म्यां कृतस्पृहाः

ज्ञानसंपत्प्रसक्तास्ते राजलक्ष्मीं विसस्मरुः।। (132)

वे राजकुमार तपरूपी लक्ष्मी के द्वारा आलिंगित हो रहे थे, मुक्तिरूपी लक्ष्मी में उनकी इच्छा लग रही थी और ज्ञानरूपी सम्पदा में आसक्त हो रहे थे। इस प्रकार वे राज्यलक्ष्मी को बिलकुल ही भूल गये थे।

द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धमधीत्यैते महाधियः।

तपो भावनयात्मानमलंचक्रुः प्रकृष्टया।। (133)

उन महाबुद्धिमानों ने द्वादशागरूप श्रुतस्कन्ध का अध्ययन कर तप की उत्कृष्ट भावना से अपने आत्मा को अलंकृत किया था।

स्वाध्यायेन मनोरोधस्ततोऽक्षाणां विनिर्जयः।

इत्याकलय्य ते धीराः स्वाध्यायधियसादधुः।। (134)

स्वाध्याय करने से मन का निरोध होता है और मन का निरोध होने से इन्द्रियों का निग्रह होता है यही समझकर उन धीर-वीर मुनियों ने स्वाध्याय में अपनी बुद्धि लगायी थी।

सज्जन V/S दुर्जन

(चालः चौपाई.../क्या मिलिए... सायोनारा... वैष्णव जन तो तेने कहिए...)

महान् जन तो तेने कहिये रे, जो महान् लक्ष्य धारे रे!
महापुरुष हेतु विश्वकुटुम्ब है, हर जीव जिनेन्द्र सम रे।। (ध्रुव)
इससे विपरीत क्षुद्रजन होते, संकीर्ण स्वार्थ/(लक्ष्य) युक्त रे!
इस हेतु ही हर भाव-काम करते, अन्य प्रति असंवदेनशील रे!!
गुणग्रहण व दोषहरण हेतु, महाजन प्रयत्नशील है।
इससे विपरीत तुच्छजन, दोषग्रहण गुणहरणशील है।। (1)
आत्मविश्लेषण व आत्मशोधन, करते महान् जन रे!
परनिन्दा-अपमान वैर-विरोध, करते दुष्ट-दुर्जन रे!!
गाय, हंस व सुफल वृक्ष सम, होते सज्जन परोपकारी है।
मच्छर, जोंक व किंपाकफल सम, होते दुर्जन परअपकारी है।। (2)
गुण-गुणी व दोष-दोषी से सीखते, सदा महान् जन रे!
गुण न सीखते दादागिरी करते, रावण कंस सम दुर्जन रे!!
सादा जीवन उच्चविचार सहित, होते महान् पुरुष रे!
ढोंगा जीवन नीचविचार सहित, होते नीच पुरुष रे!! (3)
शान्त, सरल, सौम्य, निर्मल, निर्द्वन्द्व होते सुगुणी जन रे!

इससे विपरीत अशान्त, विषम, दुषित होते कुगुणी रे!!
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ भाव से युक्त उदारभावी रे!
इनसे रिक्त विपरीत भाव युक्त होते अनुदारभावी रे!! (4)
श्रीफल, आम्र, बादाम, द्राक्षा, सम होते सज्जन रे।
किंपाक, गांजा, धतुरा, मद्य, तम्बाकू, सम होते दुर्जन रे।।
दुर्जन भी सज्जन हो सकते, आत्मिकगुण ग्रहण से।
भव्य भगवान्, पतित पावन बनते, आत्मिकगुण ग्रहण से।। (5)
सुगुण सुभाव प्रगट हेतु ही, शिक्षा-दीक्षा, धर्म, ध्यान है!
इस हेतु ही ''सूरी कनकनन्दी'', करते ध्यान-अध्ययन रे!! (6)

ग.पु.का. सागवाड़ा, दि-25/11-2020, प्रातः 7.00

सज्जन दुर्जन वर्णन

वक्ताकूतास्तु बहवः कवयोऽन्ये स्वभावतः।
स्वल्पा यथा पलाशाद्या आम्राद्याश्च त्रिविष्टपे।। (27)

जिस प्रकार पलाशादिक वृक्ष जगत में बहुत है और आम्रादिक वृक्ष अल्प हैं, उसी प्रकार इस जगत में कुटिल अभिप्राय वाले अर्थात् कुटिलहृदयवाले कवि स्वभावतः बहुत हैं और सरल अभिप्रायवाले कवि अल्प हैं।

सन्ति सन्तःकियन्तोऽत्र काव्यदूषणवारकाः।
स्वार्ण मलं यथा नित्यं शोधयन्ति धनञ्जयाः।। (28)

जैसे अग्नि सदा सोने का मल दूर करती है, वैसे ही काव्यमल को दूर करनेवाले कितने ही सज्जन इस जगत में है।

असन्तश्च स्वभावेन परार्थ दूषयन्त्यहो।
दिवान्धा द्वादशात्मानं यथा दूषणदूषिताः।। (29)

जिस तरह दूषणों से दूषित उल्लू पक्षी सूर्य को दोष देते हैं, उसी तरह दुष्टपुरुष स्वभाव से ही दूसरे की कृति को (काव्य को) दोष देते हैं।

वह्नयो दाहका नूनं तृषादुःखनिवारकाः।
स्वर्ण मलं यथा नित्यं सन्तः सन्ति च भूतले।। (30)

इस भूतल में जिसतरह अग्नि सोने के मल को दूर करती है, उसी तरह सज्जपुरुष तृष्णाजन्य दुःख को दूर करते हैं।

यथा मत्ता न जानन्ति हेयाहेयविवेचनम्।

तथा खलाः खलं लोकं कुर्वन्ति खलु केवलम्।। (31)

जैसे मत्तपुरुष ग्राह्य अग्राह्य का कुछ विचार नहीं करते, वैसे ही दुष्ट पुरुष अच्छे बुरे का विचार नहीं करते हैं, परंतु निश्चय से वे लोगों को दुष्ट ही बनाते हैं।

पयोधरा धरां धृत्या धरन्त्यम्बुप्रदानतः।

सज्जनास्तु जनान्सर्वांस्तथा सन्तथ्यशिक्षया।। (32)

जैसे मेघ जल देकर पृथ्वी को शान्त करते हैं, वैसे ही सज्जन सभी लोगों को सम्यक् हितोपदेश से हितकार्य में स्थापन करते हैं।

सर्पो विषकणं दत्ते सुधां चामृतदीधितिः।

खलोऽसाताय कल्पेत सज्जनस्तु हिताप्तये।। (33)

जैसे सर्प विषकण देता है, वैसे ही दुष्टजन लोगों को दुःख देते हैं और सज्जन उनका हित करते हैं।

खलेतरस्वभावोऽयं ज्ञातव्यो ज्ञानकोविदैः।

अलं तेन विचारेण वयं लघु हितैषिणः।। (34)

इस प्रकार सज्जन दुर्जनों का स्वभाव ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य है। अस्तु, इस विषय का इतना ही विचार पर्याप्त है, क्योंकि हम थोड़े में ही हित चाहने वाले हैं।

एकान्तवासी, मितभाषी व प्राज्ञ के गुण

(असाधारण लोकों के असाधारण गुण जो साधारण लोकों से विपरीत)

(चालः 1. आत्मशक्ति... 2. क्या मिलिए...)

जो होते एकान्तवासी मितभाषी-प्राज्ञ, वे होते अनेक गुणगण युक्त।
उन्हें न मानना चाहिए निष्क्रिय अज्ञ, असामाजिक, दंभी, एकलखोर नीच।।
वे होते मौलिक, ईर्ष्या-स्पर्द्धा रिक्त, आत्मसम्मानयुक्त, सक्रिय, शान्त।
आत्मनिर्भर, शोध-बोध-प्राज्ञ, बुद्धिलब्धि, संवेदनशील, (कृतज्ञ) लक्ष्ययुक्त।। (1)

रहस्यवादी, भविष्यज्ञाता, दक्षतायुक्त, पर से अप्रभावी, अन्धविश्वासरिक्त।
मंथरा, शकुनी सम न कुचारित्र युक्त, स्वपरविश्वहितकारी भावना युक्त।।
स्वपरगुण-दोष से शिक्षा वे लेते, पर निन्दा-अपमान से दूर रहते।
गाय, हंस, मधुमक्खी समान होते, मच्छर, जोंक सम दुर्भाव से रहित होते।। (2)
सकारात्मक विचार कल्पनाशील होते, आत्मानुशासी, शालीन, नैतिक होते।
प्रत्युपकारी दूरदृष्टि सम्पन्न होते, भीड़, प्रदर्शन, दंभ से रहित होते।।
ज्यादा सोचते व कम बोलते, स्वचारित्र से अन्य को शिक्षा देते।
सादाजीवन उच्चविचार सहित होते, संकीर्ण कट्टरता से विरक्त होते।। (3)
ईर्ष्या, घृणा, वैर-विरोध न करते, उदार, समन्वय निष्पक्षपाती होते।
आत्मविश्वासी, दृढ़संकल्पी, निर्द्वन्द्व, आत्मविश्लेषणकारी आत्मसंबोधी होते।।
जिससे अन्य से अनावश्यक न बोलते, स्वयं के द्वारा स्वयं को उपदेश देते।
समता-शान्ति व आत्मतृप्ति पाते, जिससे वे प्रज्ञाशील रचनात्मक (उत्पादक) होते।। (4)
अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा न करते, संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित होते।
फैशन-व्यसन, दिखावा से रहित होते, अन्तरंग गुणों को विकसित करते।।
ध्यान-अध्ययन, मनन, चिन्तन करते, सुगुणी से मित्रता, दुर्गुणी से न करते।
समय शक्ति बुद्धि का सदुपयोग करते, प्रमाद आलस्य से वे दूर रहते।। (5)
ऐसे लोक ही सृजनशील होते, तीर्थंकर, बुद्ध, वैज्ञानिक, संत होते।
लेखक, दार्शनिक, समाजसुधारक होते, 'कनकसूरी' को उक्तगुण बाल्यकाल से भाते।।
अधिसंख्यजन उक्त गुणों से रिक्त होते, जिससे उक्त गुणी को दोष मानते।
जिससे उनकी निन्दा-अपमानादि करते, तीर्थंकरादि महान् पुरुषों के साथ भी करते।। (6)

(यह कविता यूट्यूब से भी प्रेरित है)

ग.पु.का. सागवाड़ा, दि-16-12-2020, प्रातः 7.08

संदर्भ-

पल भर के लिए कल्पना करें! आप अपने जीवन को किस तरह बदलेंगे, अगर आपको पूरा विश्वास हो कि आप कोई भी चीज़ हासिल कर सकते हैं, जिसे आप सचमुच चाहते हो? आप अपने लिए कौनसे लक्ष्य तय करेंगे? अगर आपको

खुद पर इतना गहरा विश्वास हो कि किसी तरह की असफलता का डर न रह जाए, तो आप किस चीज का सपना देखने की हिम्मत करेंगे?

आत्मविश्वास के बारे में अद्भुत बात यह है कि आप अपने आत्मविश्वास को इस सीमा तक विकसित कर सकते हैं कि आपके मन से हर डर निकल जाता है। आपको कोई बाधा नहीं रोक सकती, चाहे कुछ भी हो जाए। यह कैसे किया जाता है, इसे सीखा जा सकता है।

ज़्यादातर लोग जीवन में शून्य या बहुत कम आत्मविश्वास के साथ शुरुआत करते हैं। बाद में अपनी खुद की कोशिशों के फलस्वरूप वे बहादुर और आत्मविश्वासी ही बन जाते हैं। अगर आप वही चीजें करते हैं, जो दूसरे आत्मविश्वास स्त्री-पुरुष करते हैं, तो आप भी उन्हीं भावनाओं का अनुभव करेंगे और आपको भी वही परिणाम मिलेंगे।

(आत्मविश्वास की बुनियाद यह है कि आप खुद को पसंद करें और बिना किसी शर्त के मूल्यवान व सार्थक इंसान मानें। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं हैं। आप खुद को जितना ज़्यादा पसंद करते हैं, अपना जितना ज़्यादा सम्मान करते हैं और खुद को जितना अच्छा इंसान समझते हैं, आपको खुद पर उतना ही ज्यादा भरोसा होगा। आपका आत्म-गौरव जितना ज्यादा ऊंचा होता है, आपको सही समय पर सही सोचने, कहने और करने की अपनी योग्यता पर उतना ही ज्यादा विश्वास होगा।)

डॉ. नेथेनियल ब्रान्डन ने आत्म-गौरव को ''आपके मन में आपकी प्रतिष्ठा'' कहा था। आपके मन में आपकी प्रतिष्ठा जितनी बेहतर होती है, आप खुद को उतना ही ज्यादा पसंद करेंगे। अपने जीवनमूल्यों के सामंजस्य में जीवन जीकर आप अपने मन में अपनी बेहतरीन प्रतिष्ठा बनाते हैं। आपके मूल्य जितने ज़्यादा स्पष्ट होते हैं, आप इस बारे में जीतने ज्यादा स्पष्ट होते हैं कि आप किसमें विश्वास करते हैं और किसके पक्ष में खड़े हैं, इस बात की उतनी ही ज्यादा संभावना है कि आप उनका अभ्यास करेंगे। ऐसा करने पर आप खुद को ज्यादा पसंद करेंगे और खुद का ज्यादा सम्मान करेंगे। आप खुद को जितना ज्यादा पसंद करते हैं और अपना

जितना ज्यादा सम्मान करते हैं, आपको शांति और आत्मविश्वास का उतना ही ज्यादा गहरा अहसास होगा।

आपका आत्म-गौरव आपकी भावनाओं को तय करता है। आप किसी भी क्षेत्र में अपने बारे में कैसा महसूस करते हैं, यह आपके हर काम से पहले आता है और हर कार्य में आपके प्रदर्शन की भविष्यवाणी करता है। आपका आत्म-गौरव आपके व्यक्तित्व का ऊर्जा स्रोत या परमाणु भट्ठी है। आत्म-गौरव, आपकी स्फूर्ति, उत्साह और व्यक्तिगत चुंबकीयता के स्तरों को तय करता है। उच्च आत्म-गौरव वाले लोग अपने हर काम में ज्यादा सकारात्मक, ज्यादा पसंद करने योग्य और ज्यादा प्रभावी होते हैं।

आप जो भी करते हैं, लगभग हर कार्य या तो अपने आत्म-गौरव को हासिल करने या बढ़ाने के लिए करते हैं या फिर अपने आत्म-गौरव को नुकसान से बचाने के लिए करते हैं। आप जो भी करते या कहते या सोचते हैं, उसका आपके आत्म-गौरव पर असर होता है, या तो सकारात्मक या फिर नकारात्मक। आप जो सबसे सहायक कार्य कर सकते हैं, वह है अपने काम और व्यक्तिगत जीवन में उच्च आत्म-गौरव को कायम रखना।

अध्याय दो में आत्म-गौरव की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा बताई गई है, ''आप खुद को कितना ज्यादा पसंद करते हैं।'' इसका मतलब है कि आप एक महत्वपूर्ण और सार्थक इंसान के रूप में अपना कितना सम्मान करते हैं और खुद को कितना मूल्यवान समझते हैं। उच्च आत्म-गौरव वाले लोग खुद के बारे में और अपने जीवन के बारे में खुश व आत्मविश्वासी महसूस करते हैं। जब आप अपने बारे में अच्छा महसूस करते हैं, तो आप में वह सर्वश्रेष्ठ इंसान बनने की प्रवृत्ति होगी, जो आप संभवतः बन सकते हैं।

आत्म-गौरव का आपका स्तर दरअसल आपकी ''मानसिक फिटनेस'' का पैमाना है। यह इस बात को तय करता है कि रोज़मर्रा कि ज़िंदगी के अवश्यंभावी उतार-चढ़ावों से निबटने में आप कितने स्वस्थ और लचीले हैं। आपका आत्म-गौरव तय करता है कि आप अपने और अपनी गतिविधियों के बारे में कितना अच्छा महसूस करते हैं। यह आपकी मानसिक शांति और आंतरिक संतुष्टि के स्तर को नियंत्रित करता है।

आपका आत्म-गौरव आपके स्वास्थ्य और ऊर्जा के स्तरों से करीबी रूप से जुड़ा हुआ है। उच्च आत्म-गौरव वाले लोग शायद ही कभी बीमार होते हैं और उनमें ऊर्जा व उत्साह का एक अथाह प्रवाह नजर आता है, जो उन्हें उनके लक्ष्यों की ओर आगे धकेलता है।

आप खुद को कितना ज्यादा पसंद करते हैं और खुद का कितना ज्यादा सम्मान करते हैं, इसी से दूसरों के साथ आपके संबंधों की गुणवत्ता तय होती है। आप खुद को जितना ज्यादा पसंद करते हैं, आप दूसरे लोगों को उतना ही ज्यादा पसंद करेंगे और वे भी आपको उतना ही ज्यादा पसंद करेंगे। वास्तव में, जब आपका आत्म गौरव किसी तरह से कम हो जाता है, तो दूसरे लोगों के साथ आपका तालमेल सबसे पहले प्रभावित होता है।

अपने सर्वश्रेष्ठ स्तर पर प्रदर्शन करने और अपने बारे में जबर्दस्त महसूस करने के लिए आपको आत्म-गौरव बनाना और क़ायम रखना होता है। जिस तरह आप खान-पान और व्यायाम पर ध्यान देकर अपनी शारीरिक फ़िटनेस की जिम्मेदारी लेते हैं, उसी तरह आपको अपने विचारों व भावनाओं पर ध्यान देकर अपनी मानसिक फिटनेस की भी पूरी जिम्मेदारी लेने की ज़रूरत है।

आत्म-गौरव बढ़ाने में लोगों की मदद करने के लिए असंख्य पुस्तकें और लेख लिखे गए हैं। बहरहाल, एक आसान फार्मूला है जिसे आप सीख सकते हैं और जिसका आप अभ्यास कर सकते हैं जो आत्म-गौरव बढ़ाने के सभी महत्वपूर्ण तत्वों को शामिल करता है। शिखर मानसिक प्रदर्शन सुनिश्चित करने के लिए आप इन रणनीतियों का दैनिक इस्तेमाल कर सकते हैं।

आत्म-गौरव बढ़ाने के लिए छह तत्वों की जरूरत होती है। ये छह तत्व हैः लक्ष्य, मानदंड, सफलता के अनुभव, दूसरों से तुलना, मान्यता और पुरस्कार। आइए, हम इन पर एक-एक करके नजर डालते हैं।

आप खुद को कितना ज्यादा पसंद करते हैं और अपना कितना सम्मान करते हैं, इस बात पर आपके लक्ष्यों का सीधा प्रभाव पड़ता है। अपने लिए बड़े, चुनौतीपूर्ण लक्ष्य तय करने और उन्हें हासिल करने की लिखित कार्ययोजना बनाने

भर से ही दरअसल आपका आत्म-गौरव बढ़ जाता है और बेहतर हो जाता है। लक्ष्य ही आपको आपके बारे में बेहतर महसूस कराने लगते हैं।

आत्म-गौरव या खुशी की परिभाषा है-''किसी सार्थक आदर्श या लक्ष्य की क्रमशः प्राप्ति।'' आत्म-गौरव की अवस्था का आनंद आप तब लेते हैं, जब आप कदम-दर-कदम किसी ऐसी चीज की तरफ बढ़ते हैं, जो आपके लिए महत्वपूर्ण है। इस वजह से यह महत्वपूर्ण है कि आपके पास जीवन के हर पहलू में स्पष्ट लक्ष्य हो और आप उन्हें हासिल करने की दिशा में लगातार काम करें। हर बढ़ते कदम से आपका आत्म-गौरव बढ़ता है और आप ज्यादा सकारात्मक व शक्तिशाली महसूस करते हैं।

आत्म-गौरव बढ़ाने का दूसरा हिस्सा यह है कि आप उन स्पष्ट मानदंडों और मूल्यों को तय करें, जिनके प्रति आप समर्पित है। उच्च आत्म-गौरव वाले स्त्री-पुरुष इस बारे में बहुत स्पष्ट होते हैं कि वे किसमें विश्वास करते हैं। आत्मविश्वास और आत्म-गौरव कि बुनियाद यह स्पष्ट विचार है कि आप किसके पक्ष मे खड़े होंगे और किसके पक्ष मे खड़े नहीं होंगे।

स्थायी आत्म-गौरव तभी संभव हैं, जब आपके लक्ष्य और आपके मूल्य सामंजस्य मे हो, आदर्श रूप से एक ही दिशा में हो और उनमें कोई विरोधाभास न हो। लोगों को तनाव ज़्यादातर मामलों में तब होता है, जब वे विश्वास तो एक चीज में करते हैं, लेकिन वे दूसरी चीज़ करने की कोशिश करते हैं, जो उस विश्वास के विपरीत होती है। जब आप अपने लक्ष्यों और मूल्यों को एक दूसरे के सामंजस्य में ले आते हैं, तो आप अपने बारे में अद्भुत महसूस करते हैं। आपको ऊर्जा और स्वास्थ्य का सैलाब महसूस होता है। तभी आप सच्ची प्रगति करना शुरू करते हैं।

आत्म-गौरव बढ़ाने वाला तीसरा तत्व है सफलता के अनुभव। अपने लक्ष्यों को मापने योग्य बनाएँ। आपको राह में मिलने वाली छोटी-बड़ी सफलताओं का हिसाब रखना चाहिए। लक्ष्य तय करने, उसे छोटे-छोटे हिस्सों में तोड़ने और फिर उन हिस्सों में से एक या अधिक को पूरा करने के काम से ही आप विजेता जैसा महसूस करने लगते हैं। सफलता की वजह से आपका आत्म-गौरव बढ़ जाता है।

लेकिन याद रखें, आप उस लक्ष्य पर निशाना नहीं मार सकते, जिसे आप देख ही न सकते हो। आप विजेता जैसा महसूस नहीं कर सकते, जब तक कि आप स्पष्टता से वे मानदंड तय न कर ले, जिनके आधार पर आप अपनी सफलता को आँकने वाले हैं और अपने लक्ष्य हासिल करने वाले हैं।

जब आप इनमें से पहले मिल के पत्थर पर पहुंचते हैं, तो आप अपने बारे में बेहतरीन महसूस करते हैं। आप विजेता जैसा महसूस करते हैं। जब आप दूसरे मिल के पत्थर तक पहुंचते हैं, तो आपका आत्मविश्वास और आत्म-गौरव बढ़ जाता है। प्रदर्शन करने की आपकी योग्यता बेहतर हो जाती है। आप अगली चुनौती के बारे में रोमांचित और उत्साही महसूस करने लगते हैं।

जिन लोगों के पास लक्ष्य नहीं होते, उनका आत्म-गौरव कम होता है। इसका कारण यह है कि वह प्रबल व्यक्तित्व बनाने वाली इस शक्ति का इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। उनके पास स्पष्ट लक्ष्य ही नहीं होते हैं, जिन पर वे निशाना साध सकें। इसके अलावा उनके पास उस अंतिम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अंतरिम लक्ष्य या पैमाने नहीं होते हैं। पैमानों और आकलन के मानदंड वाले लक्ष्य तय करने और योजनाएँ बनाने का काम ही आत्म-गौरव को बढ़ा देता है और आत्मविश्वास तथा उर्जा में वृद्धि करता है।

आत्म-गौरव का चौथा घटक है दूसरों से तुलना। हारवर्ड के लियॉन फ़ेस्टिगंर ने ''सामाजिक तुलना'' का सिद्धांत दिया है। उनका निष्कर्ष था कि जब हम यह तय करना चाहते हैं कि हम कितना अच्छा कर रहे हैं, तो हम अपनी उपलब्धियों और खुद की तुलना समाज से नहीं, बल्कि अपनी जान-पहचान के दूसरे लोगों से करते हैं। विजेता जैसा महसूस करने के लिए हमें पक्का पता होना चाहिए कि हम अपने ही जैसी स्थिति वाले किसी परिचित जितना अच्छा या उससे बेहतर कर रहे हैं, जिसके साथ हम तादात्म्य स्थापित कर सकें। जब आप अपने क्षेत्र या सामाजिक दायरे के दूसरे लोगों से अपनी सकारात्मक तुलना कर सकते हैं, तो आप खुद को ज़्यादा पसंद करते हैं और प्रतिस्पर्धा के अपने क्षेत्र में विजेता जैसा महसूस करते हैं।

सफल लोग वे होते हैं, जो अपनी तुलना दूसरे सफल लोगों से करते हैं

और पहले से बेहतर प्रदर्शन करने की लगातार कोशिश करते रहते हैं। वे उनके बारे में पढ़ते हैं, उनके प्रदर्शन का अध्ययन करते हैं और फिर एक-एक क़दम करके उनसे आगे निकलने के लिए काम करते हैं। अंततः सफल लोग उस बिंदु पर पहुँच जाते हैं जहाँ उनकी प्रतिस्पर्धा में कोई दूसरा नहीं रह जाता है। तब वे खुद के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं और अपनी पुरानी उपलब्धियों से अपने वर्तमान प्रदर्शन की तुलना करते हैं। यह तब होता है, जब वे शिखर पर पहुँच जाते हैं और अपने कमजोर प्रतिस्पर्धियों को पीछे छोड़ चुके होते हैं।

आत्म-गौरव बढ़ाने की पाँचवी आवश्यकता यह है कि आप जिन लोगों का सम्मान करते हैं वे आपकी उपलब्धियों को मान्यता दें। अपने बारे में सचमुच अच्छा महसूस करने के लिए आपको उन लोगों की प्रशंसा और मान्यता की जरूरत होती है, जिनका आप सम्मान और प्रशंसा करते हैं, जैसेः आपका बॉस, आपके सहकर्मी, आपका जीवनसाथी और आपके सामाजिक दायरे के लोग।

वास्तव में आत्म-गौरव की एक बहुत अच्छी परिभाषा है, ''आप खुद को कितना प्रशंसनीय मानते हैं।'' या ''प्रशंसा करने योग्य।'' जब भी किसी उपलब्धि के लिए आपको किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की मान्यता और प्रशंसा मिलती है, तो आपका आत्म-गौरव बढ़ जाता है। आपको गर्व और खुशी महसूस होती है। आप और ज़्यादा तथा बेहतर करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित हो जाते हैं।

आत्म-गौरव बढ़ाने की छठी आवश्यकता यह है कि आपको अपनी उपलब्धियों के लिए पुरस्कार दिया जाए।

आपके आत्मविश्वास और शांत विश्वास के नज़रिये की बदौलत आप दूसरे लोगों को ज्यादा आकर्षक लगेंगे। वे आपके आस-पास रहना चाहेंगे, आपके लिए दरवाजा खोलना चाहेंगे और ऐसे अवसर उपलब्ध कराना चाहेंगे जो उस स्थिति में नहीं होता, अगर आप अपने बारे में उतना ज़बर्दस्त महसूस नहीं करते, जितना कि इस वक्त करते हैं।

प्रायः दूसरों के साथ अपने संबंधों में लोगों में आत्मविश्वास की कमी होती है, क्योंकि वे दूसरों की तुलना में अपना कम आकलन करते हैं। कई बार आप अपने कामों और बातों के बारे में संकोची हो जाते हैं, और कई बार आपको डर होता है कि

लोग आपको पसंद नहीं करेंगे या उस तरह स्वीकार नहीं करेंगे, जिस तरह आप चाहते हैं। आप कुछ महत्त्वपूर्ण चीजें कर सकते हैं, जिनसे दूसरों के साथ आरामदेह और आत्मविश्वासी अंदाज़ में अच्छी तरह मिल-जुलकर काम करने की आपकी योग्यता बेहतर हो जाएगी।

शुरुआत में जब आप अपने लक्ष्यों और मूल्यों को स्पष्ट कर लेते हैं, खुद पर मेहनत करते हैं और अपने चुने हुए क्षेत्र में अच्छा काम करते हैं, तो आपमें स्वाभाविक रूप से आत्म-गौरव और आत्मविश्वास के ज्यादा ऊँचे स्तर होंगे। आप खुद को ज़्यादा पसंद करेंगे और आप दूसरे लोगों को पसंद व स्वीकार करेंगे। आप इस बारे में कम संवेदनशील होंगे कि वे क्या सोच रहे होंगे या नहीं सोच रहे होंगे। आप उनके साथ अपनी बातचीत में ज़्यादा सकारात्मक और ध्यानपूर्ण होंगे। जो लोग खुद को सचमुच पसंद करते हैं, वे दूसरों के साथ संबंधों में बहुत आत्मविश्वासी होते हैं। हालाँकि वे दूसरों के नज़रियों और रायों पर ध्यान देते हैं, लेकिन वे उनसे ज्यादा प्रभावित नहीं होते हैं।

दूसरों के साथ बातचीत में याद रखें कि लोग ज़्यादातर समय खुद के बारे में ही सोचते हैं। आप सामने वाले व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करके, सच्चे सवाल पूछकर और जवाबों को गौर से सुनकर संकोच की अपनी भावनाओं से छुटकारा पा सकते हैं।

लोगों को प्रभावित करने की कोशिश के बजाय उनसे प्रभावित होने के कारण खोजें। आपमें लोग रुचि लें, यह कोशिश न करें। इसके बजाय उनमें सच्ची रुचि दिखाएँ। सक्रिय और संलग्न श्रोता बनें। आप सामने वाले व्यक्ति पर जितना ध्यान केंद्रित करते हैं, आप उतने ही ज्यादा आरामदेह और आत्मविश्वासी महसूस करेंगे। आपका संकोच काफूर हो जाएगा और आप तनावरहित व खुश महसूस करेंगे।

याद रखें कि कोई आपके विचारों या भावनाओं को तब तक प्रभावित नहीं कर सकता, जब तक कि कोई ऐसी चीज़ न हो जो आप उनसे चाहते हैं या कोई ऐसी न हो, जो आप चाहते हैं कि वे न करें। जैसे ही आप निर्लिप्तता का भाव ले आते हैं और अपने मन में निर्णय लेते हैं कि आप सामने वाले से कुछ नहीं चाहते हैं या किसी चीज़ की अपेक्षा नहीं रखते हैं, तो आप पाएँगे कि आपके आत्मविश्वास को विचलित करने की उनकी योग्यता काफी कम हो जाती है। वही लोग मानवीय

संबंधों में सबसे सफल होते हैं, जो दूसरों से शांत, स्वस्थ निर्लिप्तता का अभ्यास करते हैं। हालाँकि वे बातचीत में दोस्ताना और संलग्न होते हैं, लेकिन वे दूसरों के व्यवहार को यह तय करने की अनुमति नहीं देते हैं कि वे अपने बारे में कैसा सोचते हैं और महसूस करते हैं।

आत्मविश्वास के ऊँचे स्तर को विकसित करने और कायम रखने के जबर्दस्त लाभ होते हैं। असली सवला यह है, ''ऐसा क्यों है कि ज़्यादातर लोगों में ऐसा आत्मविश्वास नहीं है, जो उन्हें खुश, स्वस्थ, समृद्ध जीवन जीने में समक्ष बनाए?''

दो बुनियादी कारण हैं। मानव प्रसन्नता के महान शत्रु हमेशा वही रहे हैं : डर और शंका एक साथ यात्रा करते हैं और हर मोड़ पर मानव प्रसन्नता के साथ हस्तक्षेप करते हैं। बाक़ी किसी भी चीज़ से बढ़कर हमारे डर और शंकाएँ हमारे आत्म-गौरव और आत्मविश्वास को कमज़ोर कर देती हैं। इन्हीं की वजह से हम अपनी संभावनाओं तथा खुद के बारे में नकारात्मक संदर्भ में सोचते हैं। जैसा मास्लो ने कहा था , हम खुद को ''सस्ते में बेचने'' लगते हैं और वे तमाम कारण गिनाने लगते हैं कि कोई चीज़ हमारे लिए संभव क्यों नहीं हो सकती।

शंका, डर और चिंता का एकमात्र सच्चा तोड़ कर्म है। यह उन सभी नकारात्मक भावों का इलाज है, जो हमारे आत्मविश्वास को ध्वस्त करते हैं। आपका चेतन मन एक समय में केवल एक ही विचार रख सकता है, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक। जब आप ऐसे सुनियोजित, उद्देश्यपूर्ण कर्म में संलग्न होते हैं, जो आपके मूल्यों के सामंजस्य में होता है, आपके लक्ष्यों की दिशा में होता है, और आप अपनी योग्यताओं का अधिकतम इस्तेमाल करते हैं, तो आपके डर और शंकाएँ गायब हो जाती हैं। आप अपने बारे में ज़्यादा सकारात्मक और आत्मविश्वासी महसूस किए बिना नहीं रह सकते।

आपके आत्मविश्वास और आत्म-गौरव को चेतन रूप से और जान-बूझकर बढ़ाना आपके लिए जितना महत्त्वपूर्ण है, उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण संभवतः कुछ भी नहीं है। आत्मविश्वास के ज़्यादा ऊँचे स्तर आपके सामने असीमित संभावनाओं का संसार खोल देंगे। आप जिस प्रकार के आत्मविश्वासी व्यक्ति बनना चाहते हैं, उस

तरह चलकर, बात करके, सोचकर और काम करके आप अपने आत्मविश्वास को बढ़ा सकते हैं।

इस तरह काम करें, मानो असफल होना असंभव हो। इस तरह काम करें, मानो आपमें आत्मविश्वास का अटल स्तर पहले से ही है। लगातार खुद से पूछते रहें, ''अगर मुझे पता हो कि मैं असफल नहीं हो सकता, तो वह कौन सी एक बड़ी चीज़ है, जिसका सपने देखने की मैं हिम्मत करूँगा?'' आपका जवाब जो भी हो, अगर आप उसके सपने देख सकते हैं और अगर आपमें इसे हासिल करने का आत्मविश्वास है, तो आपको वह चीज़ मिल सकती है।

साधु-संतों को आहार देने वाले गृहस्थ अधिक सरल, मृदु, त्यागी और दानी होते हैं: धर्माचार्य

पुनर्वास कॉलोनी के विमललाथ दिगंबर जैन मंदिर में संसघ विराजित वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी महाराज ने प्रवचन में व्यक्ति में भावों की कलुषितता और उसके दुष्प्रभाव के बारे में बताते हुए प्राणी मात्र के प्रति सदैव परिष्कृत अच्छे भाव रखने की सीख दी। आचार्य ने कहा कि कलुषितता ही एक तरह की हिंसा है जो लोभ, क्रोध, मान, माया, मिथ्यात्व आदि से आती है। कर्म सिद्धांत और आध्यात्मिक दृष्टि से लोभ, राग सबसे बड़ा पाप, परिग्रह, प्रमाद है। इसलिए ऐसे लोभ को दूर करके जो पवित्र भक्ति भावना से आहार देता है वह अवश्य अहिंसक, धर्मात्मा, त्यागी और दानी है।

आचार्य ने कहा कि साधु-संतों को आहार देने वाले गृहस्थ अन्य व्यक्तियों से अधिक सरल, मृदु, दयालु, परोपकारी, निर्लोभी, त्यागी और दानी होता है। साधु-संतों को आहार दान से चारों प्रकार का दान होता है। क्योंकि क्षुधातृष्णा रूपी रोग दूर होने से आहार दान औषधी दान है। आहार करके निर्विघ्न अध्ययन करने से ज्ञानदान और आहार से जीवित रहने से अभय दान होता है। इस प्रकार आहार दान को पूजा, वैयावृत्ति सेवा, वात्सल्य भाव, त्याग दान भी कहा गया है। जो आहार दान देते हैं उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

अधिक समय देना पड़ता है और अधिक विवेक से काम करना पड़ता है। जो व्यक्ति बहुत आदर पूर्वक दान देता है उसका पापरूपी वात नाश होता है,

उसका कर्म मल नष्ट होता है, उसकी बुद्धि अधिक तेज होती है और पाप का नाश होकर पुण्य की वृद्धि होती है। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ सिद्धि का कारक है।

आदर्श आचार्य के व्यापक स्वरूप

(पंचमकाल के धर्मनायक व चतुर्विध संघ के अनुशासक)

(सिस्साणग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वन्दे)

(चालः तुम दिल की...)

हे! आचार्य धन्य हैं! आप, छत्तीसमूलगुण पालते हो।
उपाध्याय व साधु के भी, गुणगण सहित होते हो...(स्थायी)...
शिक्षा-दीक्षा अनुशासन, प्रायश्चित्त शिष्य हेतु ही करते हो।
स्वपरविश्वहित हेतु भावना भाते, किन्तु ''सिस्साणुग्गहकुसले'' होते हो।।
स्वशिष्यों को ही शिक्षा दीक्षा, अनुशासन प्रायश्चित्त देते हो।
अन्य के शिष्यों हेतु उक्त कार्य, आगम विरुद्ध न करते हो।। (1)
स्वपरमत व तात्कालीनज्ञान-विज्ञान सहित आप होते हो।
आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी, निर्वेजनी कथा हेतु ये सभी करते हो।।
परनिन्दा अपमान वैर विरोध रहित अनेकान्तमय आप होते हो।
''यद्यपि शुद्ध लोकविरुद्ध'' नहीं करते, आप लोकज्ञता गुण सहित हो।। (2)
प्रश्नसह मृदुतासह परअभिप्राय को पूर्व से ही जानते हो।
द्रव्यक्षेत्रकालभाव के अनुकूल, कथन-व्यवहार कुशल होते हो।।
अपरस्रावीगुणसह उपगुहन स्थितिकरण वात्सयल्य प्रभावना सहित हो।
निःशंकित निःकाक्षित निर्विचिकित्सा अमूढ़दृष्टि अंग सहित हो।। (3)
पंचमकाल के धर्मनायक हो, चतुर्विध संघ के अनुशासक हो।
सर्वज्ञआज्ञा के अनुपालक हो, तदनुकूल प्रवर्तन कुशल हो।।
चारों अनुयोग के समन्वयक, व्यवहार-निश्चयनय सापेक्ष से।
द्रव्यक्षेत्रकालभवभावानुसार ही, उत्सर्ग-अपवाद के परिपालक हो।। (4)
आत्मविशुद्धि ही परमलक्ष्य, अन्तरंग-बहिरंग तप-त्याग का।

ख्याति पूजालाभ प्रसिद्धिवर्चस्व, धनजनमान सम्मान से परे।।
तरण-तारण भाव आप का, विश्वमैत्री विश्वप्रेम सहित हो।
पतित पावन काम आप का, अन्त्योदय से सर्वोदय सह हो।। (5)
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे, संकल्प-विकल्प-संक्लेश परे।
संकीर्ण पंथ-मत भेदभाव परे, उदार समन्वय वीतरागत पूरे।।
ध्यान-अध्ययन, समता, सहिष्णुता, निस्पृहता तव भाव-व्यवहार।
आपके अन्तेवासी ''सूरी कनकनन्दी'' आपको वन्दन करे बारम्बार।। (6)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-27/11/2020, मध्याह्न-12.45

महान् गुणों से युक्त, गुणों की प्रधानता से शोभायमान, घोर उपसर्ग परीषह में भी स्थिरयोगी, गुणों के धारक होने से लोक में प्रभाव है जो सदा गण में प्रधान नायक पद पर आसीन रहते है, जो अलौकिक हैं अर्थात् जिनकी अलौकिक चर्या है, जो पूर्वसंचित कर्मों के विपाक से प्राप्त जन्म-जरा-मरण आदि दोषों से अप्रभावित हैं, ऐसे आचार्य भगवन्तों को मैं विधिपूर्वक दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर हस्तकमलों से शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। हे आचार्य भगवन्त! आपकी स्तुति के प्रसाद से मुझे अक्षय-अविनाशी-निर्दोष मुक्ति सुख प्राप्त हो।

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरित तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।। (1)

जो श्रुतरूपी समुद्र में पारंगत है, स्याद्वादमत जैनमत व एकान्तरूप परमत के विचार में, ज्ञान में जिनकी बुद्धि चतुर है, अति प्रखर है, सम्यक्चारित्र और तप निधियाँ है तथा जिनके पास अतिमात्र में गुण है, ऐसे आचार्यों, गुरुओं को मेरा नमस्कार हो।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरण संदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वंदे।। (2) आचार्यभक्त

जो आचार्य परमेष्ठी 12 तप, 10 धर्म, 6 आवश्यक 3 गुप्ति और 5 अचार रूप 36 मूलगुणों से पूर्ण हैं, पंचाचार-दर्शनाचार,ज्ञानाचार, चारित्राचार,तपाचार और वीर्याचार का स्वयं आचरण करते है; शिष्यों से भी आचरण करवाते हैं, शिष्यों पर अनुग्रह करने में निपुण है, ऐसे धर्माचार्य की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

गुरुभत्ति संजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।

छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।। (3)

भावार्थ–हे भव्यात्माओं! गुरुभक्ति व संयम की आराधना से जीव संसाररूपी भीषण समुद्र को पार करते हैं, व अष्टकर्मों का क्षय कर जन्म-मरण के दुःखों से छूट जाते हैं।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्नि होत्राकुलाः।

षट्कर्माभिरतास्तपोधन धनाः, साधुक्रियाः साधवः।।

शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क तेजोऽधिकाः।

मोक्षद्वार कपाट पाटनभटाःप्रीणंतु मां साधवः।। (4)

जो आचार्य परमेष्ठी व्रतरूपी मंत्रों से कर्मों का होम करते हैं, ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को देते हैं, षट् आवश्यक क्रियाओं में सदा तत्पर रहते हैं, तपरूपी धन जिनका सच्चा धन हैं, पुण्य कर्मों में कुशल है, अठारह हजार शीलों की चुनरिया जिनका वस्त्र हैं, मूल व उत्तर-गुण जिनके पास शस्त्र हैं, सूर्य और चन्द्र का तेज भी जिनके सामने लज्जित हे रहा हैं, मोक्षमंदिर के द्वार को खोलने में शूर हैं, ऐसे वे तपोधन मुझ पर प्रसन्न होवें।

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शन नायकाः।

चारित्रार्णव गंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।। (5)

भावार्थ – सम्यक्ज्ञान व दर्शन के स्वामी, चारित्र पालन में समुद्रवत् गंभीर, मोक्षमार्गोपदेशक आचार्यगुरुदेव हमारी रक्षा करें।

प्राज्ञःप्राप्तसमस्त शास्त्र हृदय, प्रव्यक्तलोकस्थितिः।

प्रास्ताशःप्रतिभापर प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।

प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनो हारी परानिन्दया।

ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणानिधिः, प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः।। (6)

विद्वान्, समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ, लोकज्ञ, निस्पृह, प्रतिभावान्/समय सूचकतामें पारंगत, समभावी, प्रश्नों के पूर्व उत्तर ज्ञाता, बहु प्रश्नों को सहने में समर्थ, दूसरों के मन को हरने वाले/मनोज्ञ, पर निन्दा से रहित, मधुर व स्पष्ट वक्ता, गुण निधि ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने।

परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ।

बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा।

यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्।। (7)

पूर्णज्ञान, शुद्ध आचरण, परोपदेशक, भव्यों को समीचीन पथ में लगाना, विद्वन्मन्य, विनयवान्, मार्दवता, लोकज्ञता, निस्पृहता गुण जिनमें हैं वे मुनियों के स्वामी ही सज्जनों के गुरु आचार्य हो सकते हैं, दूसरे अन्य कोई नहीं।

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियोधर्मकथाप्रसक्तः।

सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्तचित्तो बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः।। (8)

जो शुद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, सुन्दर, सुडौल, रूपवान् हैं, इन्द्रियविजेता हैं, धर्म-कथाओं के उपदेशक हैं, सुख, ऋद्धि आदि लाभ में आसक्त रहित है ऐसे यति आचार्य है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

विजितमदनकेतुं निर्मलं निर्विकारं,

रहितसकलसंगं संयामासक्त चित्तं।

सुनयनिपुणभावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चम्,

जननमरणभीतं सद्गुरु नौमि नित्यम्।। (9)

कामदेव के विजेता, शुद्ध, विकार रहित, समस्त परिग्रह के त्यागी, द्रव्य-भाव संयम या इन्द्रिय-प्राणी संयम में मन को लगाने वाले, समीचीन नयों के वर्णन में निपुण, पूर्ण तत्वज्ञ, जन्म-मृत्यु से भयभीत सच्चे निर्ग्रंथ गुरुओं को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

सम्यग्दर्शन मूलं, ज्ञानस्कंधं चरित्रशाखाढ्यम्।

मुनिगणविहगाकीर्ण-माचार्य महाद्रुमम् वन्दे।। (10)

आचार्य परमेष्ठी को एक विशाल वृक्ष की उपमा दी गई हैं। वह आचार्यरूपी वृक्ष कैसा है-सम्यग्दर्शन उसकी जड़, ज्ञान उसका स्कन्ध है, चारित्र-विविध प्रकार के सामायिक आदि चारित्र इसकी शाखाएँ हैं, मुनिरूपी पक्षीगण इसमें सदा धर्म्यध्यान में लीन रहकर चहकते रहते हैं ऐसे इस आचार्य रूपी महावृक्ष को मैं नमस्कार करता हूँ।

साचार-श्रुत-जलधीन्-प्रतीर्य शुद्धोरुचरण- निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग - कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।। (3)

जो आचाराङ्ग सहित पूर्ण द्वादशांग श्रुतरूपी समुद्र में पारंगत हो, निर्दोष, शुद्ध पंचाचार के पालन करने में सदा तत्पर रहते हैं, ऐसे आचार्य भगवन्तों के पुनीत चरण युगल को मैं अपने सिर पर धारण करता हूँ। उन्हें भक्ति से सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

मिथ्या-वादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वन्सि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय।। (4)

उपाध्याय परमेष्ठी स्वसमय पर समय के ज्ञाता, नित्य धर्मोपदेश में निरत रहते हैं उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनों के प्रकरण को सुनते ही मिथ्यावादियों का मान गलित हो जाता है, अज्ञान, अंधकार विलीन हो जाता है। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की शरण में मैं भी जाता हूँ। आपके चरण-कमलों के सम्पर्क से, शरणार्थी के पापों का क्षय हो।

सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका-मेय-बोध-सम्भूताः।
भूरि-चरित्र-पताकास्ते साधु-गणास्तु मां पान्तु।। (5)

''दिगम्बर साधुओं का शरीर चैत्यगृह है'' जो सम्यग्दर्शन, रूपी दीपक को प्रकाशित कर भव्य जीवों के अनादि-कालीन मिथ्यात्व के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं। जो साधुगण जीवादि नौ पदार्थों के ज्ञान से सम्पन्न हैं, जिनकी उत्कृष्ट चारित्र-रूपी ध्वजा लोक में फहरा रही है, उन साधुगण/महासाधुओं की शरण में मैं जाता हूँ, ये साधुसमूह मेरी रक्षा करें।

जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधु-वरानमल गुण गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कार-पदै-स्त्रि-सन्ध्य-मभिनौमि-मोक्ष-लाभाय।। (6)

जो अनन्त निर्मल गुणों से शोभायमान हैं ऐसे अरहन्त सिद्ध आचार्य-उपाध्याय तथा उत्तम साधु इन पञ्च परमेष्ठियों को मैं मोक्ष की प्राप्ति के लिये णमोकार मन्त्र रूप पाँच पदों के द्वारा तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करता हूँ। अर्थात् अनन्त गुणों के समुद्र पञ्चपरमेष्ठी की आराधना मुक्ति की प्राप्ति के लिये एकमात्र अमोघ कारण है।

वक्ता के लक्षण

वक्ता व्यक्तं वदेद्वाक्यं वाग्मी धीमान् धृतिंकरः।
शुद्धाशयो महाप्राज्ञो व्यक्तलोकस्थितिः पटुः।। (45) (पा.पु)
प्राप्तशास्त्रार्थसर्वस्व प्रास्ताशः प्रशमाङ्कितः।
जितेन्द्रियो जितात्मा च सौम्यमूर्तिः सुदृक् शुभः।। (46)
तीर्थतत्त्वार्थविज्ञानी षण्मतार्थविचक्षणः।
नैयायिकः स्वान्यमतवादिसेवितशासनः।। (47)
सव्रतो व्रतिभिः सेव्यो जिनशासनवत्सलः।
लक्षणैर्लक्षितो दक्ष सुपक्षः क्षितिपैः स्तुतः।। (48)
सदा दृष्टोत्तरः श्रीमान्सुकुलो विपुलाशयः।
सुदेशजः सुजातिश्च प्रतिभाभरभूषणः।। (49)
विशिष्टोऽनिष्टानिर्मुक्तः सम्यग्दृष्टिः सुमुष्टवाक्।
सर्वेष्टस्पष्टगमको गरिष्ठो हृष्टमानसः।। (50)
वादीशो वादिवारेण वन्दितः कविशेखरः।
परनिन्दातिगः शास्ता गुरुः सच्छीलसागरः।। (51)

वाक्यों का उच्चार स्पष्ट करनेवाले, वाग्मी, युक्तियुक्तभाषण करने में चतुर, बुद्धिमान्, संतोष उत्पन्न करनेवाला, निर्मल अभिप्रायवाला, महाचतुर, लोकव्यवहार का ज्ञाता, प्रवीण, शास्त्रों का मार्ग का ज्ञाता, निस्पृह, प्रशान्तकषायी, जितेन्द्रिय, जितात्मा-संयमी, सौम्य, सुंदरदृष्टियुक्त, कल्याणरूप, श्रुतज्ञान को धारण करनेवाला, जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता, बौद्ध, सांख्य मीमांसकादि छह मतों के पदार्थों का ज्ञाता, न्यायपूर्वक प्रतिपादन करनेवाला, जैन विद्वान् और अन्य विद्वानों को जिसका उपदेश प्रिय लगता है ऐसा, व्रतयुक्त और व्रतिमान्य, जैनमत में प्रेम रखनेवाला, सामुद्रिक लक्षणों से युक्त, स्वपक्ष-सिद्धि करने में तत्पर, आगमोक्त पक्ष का प्रतिपादक, राजमान्य, श्रोता के प्रश्न का उत्तर जिसके मन में तत्काल प्रगट होता है, सुन्दर और कुलीन, उदारचित्त, आर्यदेश में जन्मा हुआ, उत्तम जाति में पैदा हुआ, नई नई कल्पना जिसके मन में उत्पन्न होती है, शिष्टचारी, निर्व्यसनी, सम्यग्दृष्टि,

मधुर बोलनेवाला, आगममान्य विषयों को स्पष्ट करनेवाली बुद्धि का धारक, सम्मान्य, प्रसन्नचित्तवाला, वादियों का प्रभु, वादिओं के समूह से वंदित, (मान्य) श्रेष्ठ कवि, परनिंदा से सदा दूर रहनेवाला, हितोपदेशी, तथा शीलसागर, सुस्वभाव, व्रतरक्षण, ब्रह्मचर्य और सद्गुणपालन, इन गुणों का सागर श्रेष्ठ वक्ता होता है।

श्रोता के लक्षण

श्रोता प्रशस्यते शीललीलालङ्कृतविग्रहः।
सद्भिः सुदर्शनः श्रीमान्नानालक्षणलक्षितः।। (52)
दाता भोक्ता व्रताधिष्ठो विशिष्टजनजीवनः।
पूर्णाक्षः पूर्णचेतस्को हेयादेयार्थदृक् शुचिः।। (53)
शुश्रूषाश्रवणाधारो ग्रहणे धारणे स्मृतौ।
ऊहापोहार्थविज्ञानी सदाचाररतश्च सः।। (54)
सत्कलाकुशलः कौल्यो गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः।
विवेकी विनयी विद्वांस्तत्त्वविद्विमलाशयः।। (55)
सावधानो विधानज्ञो विबुधो बन्धुरः सुधीः।
दयादत्तिप्रधानश्च जिनधर्मप्रभावकः।। (56)
सदाचारो विचारज्ञो धर्मज्ञो धर्मसाधनः।
क्रियाग्रणीः सुगीर्मान्यो महतां मानवर्जितः।। (57)

जिसका शरीर शील से भूषित हुआ हो, जो सम्यग्दृष्टि, शोभायुक्त, सामुद्रिक नानासुलक्षणों से युक्त शरीरवाला, दाता, भोक्ता, व्रत में तत्पर, विशिष्ट जनों को (धार्मिक जनों को) आश्रय देनेवाला, आंख कान वगैरह इंद्रियों से परिपूर्ण, स्थिरमनवाला, ग्राह्यग्राह्य पदार्थों का विचार करनेवाला, पवित्र, निर्लोभी, शास्त्र सुनने की इच्छा रखनेवाला, शास्त्रश्रवण करनेवाला, सुना हुआ ग्रहण करनेवाला तथा उसे कालान्तर में भी न भूलनेवाला, स्मरणशक्तियुक्त, विचार करनेवाला और दूषण निवारण करके पदार्थ का स्वरूप जाननेवाला, सदाचार में तत्पर, उत्तम कलाओं में गानादिककलाओं में कुशल, कुलीन, गुरु की आज्ञा का पालन करनेवाला, विवेकी, विनयी, विद्वान् तत्त्वस्वरूप जाननेवाला, निर्मल अभिप्रायवाला,

सावधान रहनेवाला, कार्य को जाननेवाला, सम्यग्ज्ञानी, सुंदर स्वपरहित की बुद्धि रखनेवाला, दयादान देनेवालों में मुख्य, जिनधर्म की प्रभावना करनेवाला, सदाचारी, विचारवान्, धर्म के स्वरूप का ज्ञाता, धर्म साधनेवाला, धर्मकार्य करने में प्रमुख, मधुर और हितकर भाषाण करनेवाला, और गर्वरहित, ऐसे श्रोता की सज्जन प्रशंसा करते हैं।

शुभाशुभादिभेदेन श्रोतारो बहवो मताः।
हंसधेनुसमाः श्रेष्ठा मुच्छुकाभाश्च मध्यमाः।। (58)
मार्जाराजशिलासर्पकङ्कच्छिद्रघटैः समाः।
चालिनीदंशमहिषजलौकाभाश्च तेऽधमाः।। (59)
असच्छ्रोतरि निर्णाशमुक्तं शास्त्रं भजेद्यथा।
जर्जरे चामपात्रे वा पयः क्षिप्तं कियत्स्थिति।। (60)
सदग्रे कथितं शास्त्रं गुरुणा सार्थकं भवेत्।
सुभूमौ पतितं बीजं फलवज्जायते यथा।। (61)

शुभ श्रोता, अशुभ श्रोता इत्यादिक श्रोताओं के अनेक भेद हैं। हंस और गाय के स्वभाव वाले श्रोता श्रेष्ठ है, क्योंकि वे उपदेश में ग्राह्यतत्त्व को लेते हैं और त्याज्य को छोड़ते हैं। मिट्टी और तोता के स्वभाववाले श्रोता मध्यम है औरर बिल्ली, बकरा, पत्थर, सर्प, बगुला, सच्छिद्र घट चालनी, मच्छर, और जोंक के समान जिनका स्वभाव है वे श्रोता अधम माने गये हैं। अधम श्रोताओं को शास्त्र सुनाने से शास्त्र का नाश होता है। जीर्ण अथवा कच्चे घट में रखा हुवा पापी कितने कालतक रहेगा? जिस तरह उत्तम खेत में बोया हुआ बीज विपुल फल देनेवाला होता है, उसी तरह सज्जन श्रोता के आगे उत्तम गुरू का कहा हुआ शास्त्र सफल होता है।

अपरिस्साई णिव्वावओ य णिज्जावओ पहिदकित्ती।
णिज्जवणगुणोवेदो एरिसओ होदि आयरिओ।। (420)

गा.-अपरिस्रावी, निर्वापक, निर्यापक, प्रसिद्ध कीर्तिशाली और निर्यापन गुण से युक्त ऐसा आचार्य होता है।

आयारं पंचविहं चरदि चरावेदि जो णिरदिचारं।
उवदिसदि य आयारं एसो आयारवं णाम।। (421)

गा.-पाँच प्रकार के आचार का जो अतिचार लगाये बिना पालन करता है तथा दूसरों को पाँच प्रकार के निरतिचार पालन में लगाता है, और आचार का उपदेश देता है यह आचारवान् नामक गुण है।

टी.-इसका अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ रूप से और अर्थरूप से स्वयं आचारांग को जानता है। स्वयं पाँच प्रकार के आचार का पालन करता है और दूसरों से पालन कराता है इस तरह पाँच आचारवान् है। पाँच प्रकार के स्वाध्याय में लगना ज्ञानाचार है, जीवादि तत्त्वों के श्रद्धानरूप परिणत होना दर्शनाचार है। हिंसादि से निवृत्ति रूप परिणति चारित्राचार है। चार प्रकार के आहार का त्याग, भूख से कम भोजन करना, भिक्षा के लिये जाते समय गृह आदि का परिणाम करना, रसों का त्याग, कायक्लेश, एकान्त में निवास इत्यादि तप नामक आचार है, तप में अपनी शक्ति को न छिपाना वीर्याचार है। ये पाँच प्रकार के आचार हैं।

दूसरे प्रकार से आचारवत्त्व को कहते हैं-

दसविहठिदिकप्पे वा हवेज्ज सो सुट्ठिदो सयायरिओ।
आयारवं खु एसो पवयणमादासु आउत्तो।। (422)

गा.-जो आचार्य सदा दस प्रकार के स्थितिकल्प में सम्यक् रूप से स्थित है वह आचारवान् है। वह आचार्य प्रवचन की माता समिति और गुप्तियों में तत्पर रहता है।

दस कल्पों का कथन

आचेलक्कुद्देसियसे ज्जाहररायपिंड किरियम्मे।
वदजेट्ठ पडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो।। (423)

गा.-आचेलक्य, औद्देशिकका त्याग, शय्या गृह का त्याग, राजपिण्ड का त्याग, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मास और पर्युषणा ये दस कल्प है।

टी.-चेल वस्त्र को कहते हैं। चेल का ग्रहण परिग्रह का उपलक्षण है। अतः समस्त परिग्रह के त्याग को आचेलक्य कहते हैं। दस धर्मों में एक त्याग नामक धर्म है। समस्त परिग्रह से विरति को त्याग कहते है वही अचेलता भी है। अतः अचेल यति त्याग नामक धर्म में प्रवृत्त होता है। जो निष्परिग्रह है वह अकिंचन नामक धर्म में तत्पर होता है। परिग्रह के लिये ही आरम्भ में प्रवृत्ति होती है। जो

परिग्रह का त्याग कर चुका वह आरम्भ क्यों करेगा। अतः उसके असंयम कैसे हो सकता है? तथा जो परिग्रह रहित है वह सत्य धर्म में भी सम्यक् रूप से स्थित होता है। क्योंकि परिग्रह के निमित्त ही दूसरे से झूँठ बोलना होता है। बाह्य परिग्रह क्षेत्र आदि और अभ्यन्तर परिग्रह रागादि के अभाव में झूँठ बोलने का कारण नहीं है। अतः बोलने पर अचेल मुनि सत्य ही बोलता है। अचेल के लाघव भी होता है। अचेल के अदत्त का त्याग भी सम्पूर्ण होता है क्योंकि परिग्रह की इच्छा होने पर बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने में प्रवृत्ति होती है। अन्यथा नहीं होती। तथा रागादि का त्याग होने पर भावों की विशुद्धि रूप ब्रह्मचर्य भी अत्यन्त विशुद्ध होता है। परिग्रह के निमित्त से क्रोध होता है। परिग्रह के अभाव में उत्तम क्षमा रहती है। मैं सुन्दर हूँ, सम्पन्न हूँ इत्यादि मद अचेल के नहीं होता अतः उसके मार्दव भी होता है। अचेल अपने भाव को विना किसी छल कपट के प्रकट करता है अतः उसके आर्जव धर्म भी होता है, क्योंकि माया के मूल परिग्रह का उसने त्याग किया है। यतः वस्त्र आदि परिग्रह के त्याग में तत्पर मुनि विराग भाव को प्राप्त होकर शब्द आदि विषयों में आसक्त नहीं होता। तथा परिग्रह से मुक्त होने से शीत, उष्ण डांस, मच्छर आदि परीषहों को सहता है। अतः वस्त्र त्याग को स्वीकार करने से घोर तप भी होता है। इस प्रकार अचेलता के उपदेश से संक्षेप से दस प्रकार के धर्मों का कथन होता है।

अथवा अचेलता गुण की प्रशंसा अन्य प्रकार से कहते हैं। अचेलता में संयम की शुद्धि एक गण है। पसीना, धूलि और मेल से लिप्त वस्त्र में उसी योनि वाले और उसके आश्रय से रहने वाले त्रस जीव तथा सूक्ष्म और स्थूल जीव उत्पन्न होते हैं, वस्त्र धारण करने से उनको बाधा पहुँचती है यदि कहोगे कि ऐसे जीवों से संवद्ध वस्त्र को अलग कर देंगे तो उनकी हिंसा होगी, क्योंकि उन्हें अलग कर देने से वहाँ मर जायेंगे। जीवों से संसक्त वस्त्र धारण करने वाले के उठने, बैठने, सोने, वस्त्र को फाड़ने, काटने, बाँधने, वेष्ठित करने, धोने, कूटने, और धूप में डालने पर जीवों को बाधा होने से महान् असंयम होता है। जो अचेल है उसके इस प्रकार का असंयम होने से संयम की विशुद्धि होती है। दूसरा गुण है इन्द्रियों को जीतना। जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या मंत्र आदि से रहित दृढ़

प्रयत्न-खूब सावधान रहता है उसी प्रकार जो अचेल होता है वह भी इन्द्रियों को वश में करने का पूरा प्रयत्न करता है। ऐसा न करने पर शरीर में विकार हुआ तो लज्जित होना पड़ता है। अचेलता का तीसरा गुण कषाय का अभाव है। चोरों के डर से वस्त्र को गोबर आदि के रस से लिप्त करके छिपाने पर कथंचित् मायाचार करना होता है अथवा चोरों को धोखा देने के लिए कुमार्ग से जाना पड़ता है या झाड़ झंखाड़ में छिपना होता है। मेरे पास वस्त्र हैं ऐसा अहंकार होता है। यदि कोई बलपूर्वक वस्त्र छीने तो उसके साथ कलह करता है। वस्त्रलाभ होने से लोभ होता है। इस प्रकार वस्त्र धारण करने वालों के ये दोष हैं। वस्त्रत्याग कर अचेल होने पर इस प्रकार के दोष उत्पन्न नहीं होते और ध्यान तथा स्वाध्याय में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता।

2. श्रमणों के उद्देश से बनाये गये भोजनादि को औद्देशिक कहते हैं। अधःकर्म आदि के भेद से उसके सोलह प्रकार हैं। उसका त्याग दूसरा स्थितिकल्प है। कल्प में कहा है-प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के तीर्थ में सोलह प्रकार का उद्दिष्ट छोड़ने योग्य है। यह दूसरा स्थितिकल्प है।

3. 'शय्याधर' शब्द से तीन कहे जाते हैं-जो वसति बनाता है, दूसरे के द्वारा बनाई गई वसति को टूटने पर या उसका एक हिस्सा गिर जाने पर जो उसकी मरम्मत कराता है, जो न करता है न मरम्मत कराता है केवल देता है कि यहाँ ठहरिये। उनका पिण्ड अर्थात् भोजन, उपकरण अथवा प्रतिलेखना आदि शय्या धर पिण्ड कहाता है। उसका त्याग तीसरा स्थितिकल्प है। शय्याधर का पिण्ड ग्रहण करने पर वह धर्म के फल के लोभ से छिपाकर आहार आदि की योजना कर सकता है। अथवा जो दरिद्र या लोभी होने से आहार देने में असमर्थ है वह ठहरने का स्थान नहीं देगा क्योंकि वसति में ठहराकर आहार न देने पर लोक मेरी निन्दा करेंगे कि इसकी वसति में यतिगण ठहरे और इस अभागे ने उन्हें आहार नहीं दिया। तथा आहार और वसति देने वाले पर यति का स्नेह हो सकता है कि इसने हमारा बहुत उपकार किया है। किन्तु शय्याधर का आहार ग्रहण न करने पर उक्त दोष नहीं होते। 4 राजपिण्ड का ग्रहण न करना चतुर्थ स्थितिकल्प है। राज शब्दों इक्ष्वाकु आदि कुल में उत्पन्न हुओं का ग्रहण किया जाता है। जो 'राजते' शोभित

होता है या जनता का रंजन करता है वह राजा है। राजा के समान सम्पत्तिशाली भी राजा कहलाता है उसका पिण्ड अर्थात् जिस पिण्ड का वह स्वामी होता है, वह राजपिण्ड है। उसके तीन भेद हैं-आहार, अनाहार और उपधि। अशन आदि के भेद से आहारके चार भेद हैं। तृणों का फलक आसन आदि अनाहार है। प्रतिलेखन, वस्त्र पात्र को उपधि कहते हैं।

4. चारित्र में स्थित साधु के द्वारा भी महान् गुरुओं की विनय सेवा करना पाँचवाँ कृतिकर्म नामक स्थितिकल्प है।

6 जीवों के भेद-प्रभेदों को जानने वाले को ही नियम से व्रत देना चाहिए। यह छठा स्थितिकल्प है। जो अचेलता में स्थित हो, उदिष्ट और राजपिण्ड का त्याग करने में तत्पर हो, गुरु की भक्ति करने वाला हो, विनयी हो, वही व्रत देने के योग्य होता है। कहा है-

'जो अचेलकपने में स्थित है और उदृष्टि आदि दोषों का सेवन नहीं करता, गुरु का भक्त और विनीत है वह सदा व्रतों को धारण करने का पात्र होता है।' यह व्रत देने का क्रम है-गुरुजनों के स्वयं रहते हुए आचार्य स्वयं स्थित होकर सामने स्थित विरत स्त्रियों को श्रावक श्राविका वर्ग को व्रत प्रदान करें। तथा अपने वाम देश में स्थित विरतों को व्रत प्रदान करे। कहा है-

'विरत स्त्रियों को और श्रावक वर्ग को अपने सामने स्थित करके और विरत पुरुषों को अपने वाम भाग में स्थापित करके गणि व्रत प्रदान करे।' इस प्रकार जानकर तथा श्रद्धा करके पापों से विरत होना व्रत है। वृत्तिकरण छादन, संवर और विरति, ये सब शब्द एकार्थक है। कहा है-'जानकर और स्वीकार करके पापों से विरत होना व्रत है। वृत्तिकरण, छादन, संवर विरति ये सब एकार्थक है।'

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में रात्रिभोजन त्यागनामक छठे व्रत के साथ पाँच महाव्रत होते हैं। प्रमादयुक्तभाव के सम्बन्ध से प्राणि के प्राणों का वियोग करना हिंसा है और उससे विरति अहिंसा व्रत है। झूठ बोलने से जीव दुःखी होते हैं ऐसा मानकर दयालु पुरुष का सत्य बोलना दूसरा व्रत है। जिसमें 'यह मेरा है' ऐसा संकल्प है उस द्रव्य के चले जाने पर जीव दुःखी होते हैं। इसलिए उस पर दया करके बिना दी हुई वस्तु के ग्रहण से विरत होना तीसरा व्रत है।

सरसों से भरी हुई नली में तपाई हुई लोह की कील के प्रवेश की तरह योनिद्वार में स्थित अनेक जीवों को लिंग के प्रवेश से पीड़ा होती है। उस पीड़ा को दूर करने के लिए 'राग का तीव्र अभिनिवेश महान् कर्मबन्ध का मूल है' ऐसा जानकर और श्रद्धा करके मैथुन से विरत होना चतुर्थ व्रत है। परिग्रह छह कार्यों के जीवों को पीड़ा पहुंचाने का मूल है और ममत्वभाव में निमित्त है ऐसा जानकर समस्त परिग्रह का त्याग पाँचवाँ व्रत है। उन्हीं पाँच व्रतों का पालन करने के लिए रात्रि भोजन का त्याग छठा व्रत है। अहिंसाव्रत का विषय सब जीव हैं अर्थात् सब जीवों की हिंसा का त्याग उसमें है। बिना दी हुई वस्तु का त्याग और परिग्रह का विषय भी सब द्रव्य हैं। अर्थात् अचौर्यव्रती विना दिया हुआ कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं लेता जिसका कोई स्वामी है। परिग्रह का त्यागी भी सब द्रव्यों का त्याग करता है। किन्तु शेष व्रत द्रव्यों के एकदेश को विषय करते हैं। कहा है-

'प्रथम व्रत में सब जीव, तीसरे और अचौर्यव्रत में सब द्रव्य तथा शेष महाव्रत द्रव्यों के एकदेश में होते हैं।'

7. चिरकाल से दीक्षित और पाँच महाव्रतों की धारी आर्यिका से तत्काल दीक्षित भी पुरुष ज्येष्ठ होता है। इस प्रकार पुरुष की ज्येष्ठता सातवाँ स्थितिकल्प है। पुरुषत्व कहते हैं संग्रह, उपकार और रक्षा करने में समर्थ होना। धर्म पुरुष के द्वारा कहा गया है इसलिए पुरुष की ज्येष्ठता है। इसलिए सब आर्यिकाओं को साधु की विनय करनी चाहिए। यतः स्त्रियाँ लघु होती है, परके द्वारा प्रार्थना किये जाने योग्य होती हैं। दूसरे से अपनी रक्षा की अपेक्षा करती हैं। पुरुष ऐसे नहीं होते इसलिए पुरुष की ज्येष्ठता है। कहा है-'यतः स्त्री लघु होती है, दूसरे के द्वारा प्रसाध्य होती है, प्रार्थनीय होती है, डरपोक होती है, अरक्षणीय होती है इसलिए पुरुष ज्येष्ठ होता है।'

8. अचेलता आदि कल्प में स्थित साधु के यदि अतिचार लगता है तो उसे प्रतिक्रमण करना चाहिए। यह आठवाँ स्थितिकल्प है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छह प्रकार का प्रतिक्रमण होता है। भट्टिणी, भतृदारिका इत्यादि अयोग्य नाम का उच्चारण करने पर उसका परिहार करना नाम प्रतिक्रमण है। असंयत मिथ्यादृष्टि जीव के प्रतिबिम्ब की पूजा आदि करनेवाला जो उसका प्रतिक्रमण करता है वह स्थापना प्रतिक्रमण है। सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद

से तीन प्रकार का द्रव्य होता है उसका परिहार द्रव्य प्रतिक्रमण है। जो क्षेत्र त्रस और स्थावर जीवों से भरा है, स्वाध्याय और ध्यान में विघ्न करनेवाला है उसका परिहार क्षेत्र प्रतिक्रमण है। सन्ध्या के समय, स्वाध्याय समय तथा असमय में गमन आगमन आदि का परिहार कालप्रतिक्रमण है। मिथ्यात्व असंयम, कषाय और योग से निवृत्ति भावप्रतिक्रमण है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर का धर्म प्रतिक्रमण सहित है अर्थात् प्रतिक्रमण करना ही चाहिए और मध्य के बाईस तीर्थंकर दोष लगने पर ही प्रतिक्रमण का उपदेश करते हैं। आलोचना दैवसिक, रात्रिक, इत्तिरिय, भिक्षाचर्या, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सावत्सरिक, उत्तमार्थ-ये दस आलोचनाकल्प हैं।

दैवसिक प्रतिक्रमण, रात्रिक प्रतिक्रमण, इत्तिरिय, भिक्षाचर्या, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ ये प्रतिक्रमणके भेद हैं। आदि और अन्तिम तीर्थंकर के द्वारा कहे पाँच महाव्रतरूप धर्म में और अन्य तीर्थंकरों के द्वारा कहे चार यमरूप धर्म में प्रतिक्रमण के काल का नियम कहा है। जब साधु अतिचार लगाता है तब प्रतिक्रमण आध्यात्मिक दर्शन है। कहा है-

चौबीस तीर्थंकरों में से मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक नहीं है। दोष लगने पर ही प्रतिक्रमण करते हैं। इसी बात को इन गाथाओं में कहा है। शब्दादि विषयों में प्रवृत्ति होने पर आदि और अन्तिम तीर्थंकरों के साधु प्रतिक्रमण करते ही हैं। मध्यम तीर्थंकरों के साधु करते भी हैं और नहीं भी करते।

ईर्यासमिति, गोचरी और स्वप्न आदि में अतिचार लगे या न लगे। किन्तु प्रथम तीर्थंकर और अन्तिम तीर्थंकर के शिष्य सब प्रतिक्रमण दण्डकों को पढ़ते हैं अर्थात् अतिचार नहीं लगने पर भी उन्हें प्रतिक्रमण करना होता है।

मध्यम बाईस तीर्थंकरों के शिष्य दृढ़ बुद्धिवाले, एकाग्रचित्त और अव्यर्थ लक्षवाले होते हैं। इसलिए अपने आचरण की गर्हा करने से शुद्ध होते हैं। किन्तु प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर शिष्य चंचल चित्त होने से अपने अपराधों को लक्ष में नहीं लेते। इसलिए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरने सबके लिए प्रतिक्रमण करने का उपदेश दिया है। इसमें अन्ध घोड़े का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे घोड़े के अन्धे होने पर अनजान वैद्यपुत्र ने अपने पिता के अभाव में उसपर सब औषधियों का

प्रयोग किया घोड़ा ठीक हो गया। इसी तरह अपने दोषों से अनजान साधु भी प्रतिक्रमण से शुद्ध होता है।

9. (छह ऋतुओं में एक-एक महीना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है।) एक स्थान में चिरकाल ठहरने पर नित्य ही उद्गमदोष लगता है। उसे टाला नहीं जा सकता। तथा एक ही स्थान में बहुत समय तक रहने से क्षेत्र से बँध जाने का, सुखशीलता, आलसीपना, सुकुमारता की भावना तथा जाने हुए से भिक्षा ग्रहण करने के दोष लगते हैं।

10. पज्जोसमण नामक दसवाँ कल्प है। उसका अभिप्राय है वर्षाकाल के चारमासों में भ्रमण त्यागकर एक ही स्थान पर निवास करना। उस काल में पृथिवी स्थावर और जंगम जीवों से व्याप्त रहती है। उस समय भ्रमण करने पर महान् असंयम होता है। तथा वर्षा और शीतवायु के वहने आत्मा की विराधना होती है। वापी आदि में गिरने का भय रहता है। जलादि में छिपे हुए ठूंठ, कण्टक आदि से अथवा जल कीचड़ आदि से कष्ट पहुँचता है। इसलिए एक सौ बीस दिन तक एकस्थान पर रहना उत्सर्गरूप नियम है। कारणवश कम या अधिक दिन भी ठहरते हैं। आषाढ़ शुक्लादशमी को ठहरनेवाले साधु आगे कीर्तिक की पूर्णिमा के पश्चात् तीस दिन ठहर सकते हैं। वर्षा की अधिकता, शास्त्रपठन, शक्ति का अभाव, वैयावृत्य करने के उद्देश से एकस्थान पर ठहरने का यह उत्कृष्टकाल है। इस बीच में यदि मारी रोग फैल जाये, दुर्भिक्ष पड़ जाये या गच्छका विनाश होने के निमित्त मिल जायें तो देशान्तर चले जाते हैं क्योंकि वहाँ ठहरने पर भविष्य में रत्नत्रय की विराधना हो सकती है।

आषाढ़ की पूर्णमासी बीतने पर प्रतिपदा आदि के दिन देशान्तर गमन करते हैं। इस तरह बीस दिन तक कम होते हैं। इस अपेक्षा काल की हीनता होती है। यह दसवाँ स्थितिकल्प है।

विशेषार्थ–श्वेताम्बर परम्परा में भी ये ही दस कल्प माने गये हैं। किन्तु उनमें से चार स्थितकल्प हैं और छह अस्थितकल्प हैं। शय्यातर पिण्ड, चातुर्याम, पुरुष की ज्येष्ठता और कृतिकर्म ये चार कल्प स्थित हैं। अर्थात् मध्यम बाईस तीर्थंकरों के साधु और महा विदेहों के साधु शय्यातर पिण्ड ग्रहण नहीं करते,

चतुर्याम रूप धर्म का पालन करते हैं, पुरुष की ज्येष्ठता पालते है अर्थात् चिरदीक्षित आर्यिका भी उसी दिन के दीक्षित साधु को नमस्कार करती है। तथा सब कृतिकर्म करते हैं। आचेलक, औद्देशिक, प्रतिक्रमण, राजपिण्ड, मास और पर्युषण ये छह कल्प मध्यम तीर्थंकरों के तथा महाविदेह के साधुओं के लिए अनवस्थित हैं। यदि वस्त्र धारण करने से वस्त्र को लेकर रागद्वेष उत्पन्न होता है तो अचेल रहते हैं अन्यथा सचेल रहते हैं। साधुओं के उद्देश से बनाया भोजन उद्दष्टि होने से सदोष होता है। किन्तु उक्त तीर्थंकरो और महाविदेहों के साधु अपने उद्देश से बना भोजन नहीं लेते। अन्य साधुओं के उद्देश से बना भोजन ले लेते है प्रतिक्रमण भी दोष लगने पर करते हैं, अन्यथा नहीं करते। राजपिण्ड में यदि कहे गये दोष होते हैं तो ग्रहण नहीं करते। यदि एक क्षेत्र में रहने पर दोष न हो तो पूर्वकोटी काल भी रहते हैं। दोष हो तो मास पूर्ण नहीं होने पर भी चल देते हैं। पर्युषणा में भी यदि वर्षा में विहार करने पर दोष हो तो एक क्षेत्र में रहते हैं दोष न हो तो वर्षाकाल में भी विहार करते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में प्राकृत में दसवें कल्प का नाम 'पज्जोसवणा' है उसका संस्कृत रूप पर्युषणाकल्प है। इसी से भादों के दश लक्षण पर्व को पर्यूषण पूर्व भी कहते है। श्वेताम्बर परम्परा में भी इसका उत्कृष्ट काल आसाढ़ी पूर्णिमा से कार्तिकी पूर्णिमा तक चार मास है। जघन्य काल सत्तर दिन है। भाद्रपद शुक्ला पंचमी से कार्तिक की पूर्णिमा तक सत्तर दिन होते हैं। सम्भवतः इसी से दिगम्बर परम्परा में पर्युषण पर्व भाद्रपद शुक्ला पंचमी से प्रारम्भ होता है। इस काल में साधु विहार नहीं करते।

गुरु सेवा का फल

पिता माता भ्राता प्रिय सहचरी सुनू निवहः।
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभट रथाश्वः परिकरः।।
निमज्जंतं जन्तुं नरक कुहरे रक्षितुमलम्।
गुरो धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः।। (15) सिंदूर प्रकरण

इस श्लोक में बताया है कि संसारी जीवों को धर्म गुरु ही कुमार्ग और सन्मार्ग बताकर धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निर्वृत्ति कराने वाले होते हैं बिना गुरु के जितने

भी लौकिक जन हैं वे जीव की रक्षा करने में समर्थ नहीं होते हैं। नरक बिल में जब जीव दुःखों के समुद में गमन होता है तब किसी का बल नहीं चलता है ऐसी अवस्था में उसको सम्बोधन करने वाले गुरु ही होते हैं। इस पंचम काल में गुरु ही उद्धार करने वाले हैं वे ही निःस्वार्थ होते हैं अन्यजन का जब तक स्वार्थ सधता है तब तक ही हाँ में हाँ मिलाते हैं।

जो प्राणी नरकों के बिल में पड़े हुए हैं उनको उभारने में गुरु के अलावा अन्य कोई समर्थ नहीं है। कथं? पिता भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है, माता भी समर्थ नहीं, पुत्रों का समूह भी रक्षा करने में समर्थ नहीं और जो प्रियालापिनी स्त्री है वह भी समर्थ नहीं है। इसी प्रकार रथ, हाथी, घोड़े, सैनिक और योद्धागण भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है सेवक समूह भी प्राणी को नरक पतन से नहीं बचा सकता है। एक गुरु मात्र ही लोक में जीव को दुर्गतियों से बचाने में समर्थ है। गुरु में क्या विशेषता है? गुरु धर्म को प्रकट करने तथा पाप और पुण्य में भेद करने तथा अधर्म व पाप से बचाने का मार्ग दिखाने में समर्थ है। अतः हे भव्य प्राणी! गुरु के उपदेश से अधर्म व पापों का त्याग कर धर्म और पुण्य प्रवृत्ति करो जिससे नरक में पतन नहीं होता है बल्कि वे सुगति के भाजन बन जाते हैं।

णरलियगण गमण पडिह छए कए तह पएसिणा रण्णा।
अमर विमाणं पत्तं तं आइरियप्पभावेणं।। (1)

उपरोक्त गाथा का अर्थ पहले टीका में आ गया है। हे भव्य प्राणी! इस प्रकार जानकर मन में विवेक लाकर नरक पतन से रक्षा करने वाले गुरु की सेवा करो। जो सेवा करते हैं उनको पुण्य की प्राप्ति होती है।

गुरु की आज्ञा का माहात्म्य

किं ध्यानेन भवत्यवशेष विषयत्यागै स्तपोभिः कृतं।
पूर्णं भावनयाऽलमिद्रिय दमैः पर्याप्तमाप्तागमैः।।
किंत्वेकं भव नाशनं कुरु गुरु प्रीत्या गुरोः शासनं।
सर्वे येन बिना विनाथ बलवत् स्वार्थाय नालं गुणाः।। (16)

हे भव्य! गुरु की आज्ञा के बिना यदि ध्यान किया तो कुछ भी लाभ नहीं होता है बल्कि हानि विशेष होती है। सम्पूर्ण पंचेन्द्रियों की विषय वासनाओं का त्याग कर

देने से तथा मन को रोकने से ही ध्यान होता है। गुरु की आज्ञा बिना सम्पूर्ण विषय वासनाओं का त्याग करने पर कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है। अनशन, ऊनोदर, रस परित्याग, व्रतपरिसंख्यान, कायक्लेश तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग इस प्रकार बारह प्रकार के तपों को किया और शरीर को कृश बना दिया। छः उपवास, आठ उपवास, दश उपवास, पक्ष, मास, चातुर्मासोपवास और सिंहनिष्क्रीडितादि अनेक तपों के बिना गुरु की आज्ञा के करने से कोई लाभ नहीं हुआ। शुभ भाव से पूर्ण हो गया, पंचेन्द्रियों के और मन के विषयों को भी बहुत प्रकार से रोका फिर देव, शास्त्र, सिद्धान्त शास्त्रादि पढ़ने से भी पर्याप्त पूर्ण हो गए तो क्या लाभ हुआ? कुछ भी नहीं। अत्यंत गाढ़ वात्सल्य से अथवा बड़े आदर से एक गुरु के शासन का पालन कर अथवा गुरु की आज्ञा का पालन भाव सहित कर! गुरु का शासन कैसा है? संसार के परिभ्रमण का नाश करने वाला है। एक गुरु के शासन के अभाव में पूर्व में कहे गये सब गुण निरर्थक होते हैं। जिस प्रकार एक सेनापति के अभाव में सैन्यबल युद्ध जीतने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार गुरु की आज्ञा के बिना किए गए अनुष्ठान सब निष्फल होते हैं इसलिए गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करो।

कल्पसूत्र में कहा है-असणवा, आहारेत्तए, उच्चारपासवणं वा परिट्टवेद्धए, सज्जयं वा करित्तए, धम्म जागरियं, व जागरित्तए, जो से कप्पइ, अणापुच्छित्तं, भिरकु इच्छेद्या अन्नापयं तवो कम्मं, उवसंपजित्ताणं, विहरित्तए। हे भव्य प्राणी। इस प्रकार जानकर मन में विवेक लाकर गुरु सेवा करनी चाहिए।

क्षेमंकर राजा की कथा

एक समय की बात है कि धारा नगरी में क्षेमंकर राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम क्षेमश्री था ये दोनों ही श्री जैन मत धारक शुभ भाव से युक्त थे। एक दिन राजा व रानी विचरण करते हुए जंगल में गए वहाँ पर एक वयोवृद्ध मुनि राज ध्यान में लवलीन थे। राजारानी ने उनको तीन प्रदक्षिणा दी और पूजा कर नमस्कार किया। गुरु से प्रार्थना की हे देव! हम संसारी प्राणियों को संसार के दुःखों से छूटने का उपाय बतलाइये? यह सुन निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्य ने उनको उपदेश दिया कहा कि देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों की भक्ति समान भाव से करो। इनकी भक्ति करने से संसार के दुःखों से शीघ्र ही मुक्ति मिलती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

राजा-रानी उन मुनिराज के परम भक्त हो गए। मुनिराज जिस प्रकार कहते थे वैसा ही राजा-रानी आचरण करते थे तथा उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। रोगी, वृद्ध मुनियों की वैयावृत्ति करने में तत्पर हुए। उनके शरीर का मर्दन करना, उनका संयमोपकरण और शौचोपकरण आदि दान देने की शुभ किया करने लगे। इस प्रकार वैयावृत्ति करने में तत्पर थे कि उनको रोग हो गया तब वे गुरु की आज्ञा बिना औषधि भी ग्रहण नहीं करते हैं। यह देख लोग कहते हैं कि देखो ये महाराज कितने निष्ठुर है कि औषधि लेने के लिए भी आज्ञा नहीं देते हैं। एक दिन इस बात को सुनकर गुरु को विचार आया और भक्तों को साथ लेकर जंगल में गए। वहाँ पर एक बामी के ऊपर एक सर्प बैठा था। उनको देखकर गुरु ने कहा-वत्स! इस सर्प को शीघ्र ही पकड़ो। तब राजा दौड़कर गया। ऐसा देखकर लोग कहने लगे कि क्या यह गुरु का कर्त्तव्य है कि सर्प को पकड़वाना किन्तु राजा ने गुरु आज्ञा का निःशंक होकर पालन किया। सर्प को जैसे ही पकड़ने लगा वैसे ही सर्प ने काटा तब भी उसने पकड़ना नहीं छोड़ा तब पुनः दुबारा भी काट लिया। वह देखकर मुनिराज बोले-हे भद्र! छोड़ दो, आ जाओ। राजा ने सर्प पकड़ना छोड़ दिया जिससे राजा का रोग नष्ट हो गया और राजा ने भी गुरु के पास जाकर दीक्षा लेकर उग्र तप किया। उग्र तप से कर्म शृंखलाओं को तोड़कर केवलज्ञान को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त किया। अतः हे भव्य प्राणी! जिस प्रकार राजा ने गुरु की आज्ञा का पालन किया तो राजा मुक्ति को प्राप्त हुआ उसी प्रकार तुम भी गुरु की आज्ञा का पालन करो, पालन करने से अशुभ कर्मफल जल जाते हैं और विशेष पुण्य की तथा पुण्य से अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

गुरु (आचार्य, संघनायक) की अनुमति बिना

नवीन धार्मिक कार्य भी चतुर्विध संघ नहीं कर सकते हैं तो धर्म बाह्य, धर्म विरुद्ध कार्य कर ही नहीं सकते।

गुरु (आचार्य, संघनायक) के बिना स्व संघ व चतुर्विध संघ व्रत, नियम, स्वाध्याय आदि नवीन धार्मिक कार्य प्रारम्भ नहीं कर सकते हैं तथा मलत्याग, मूत्र विसर्जन के हेतु भी गुरु को या संघस्थ निकटस्थ अन्य साधु आदि को बोलकर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि धार्मिक कार्य भी बिना गुरु अनुमति के प्रारम्भ नहीं कर सकते हैं तब धर्म बाह्य, धर्म विरुद्ध कोई भी कार्य कैसे कर सकते हैं? कदापि नहीं

कर सकते हैं। यदि कोई करता है और गुरु निषेध नहीं करते हैं मौन रहते हैं, प्रायश्चित्त नहीं देते तो उसमें गुरु भी दोषी है।

विशेष परिज्ञान हेतु भगवती आराधना, मूलाचार, प्रायश्चित्त-ग्रन्थ, समता साधक मुमुक्षु श्रमण की साधना व श्रमण संघ संहिता (दोनों ग्रन्थ आचार्य कनकनन्दी द्वारा संकलित रचित) आदि ग्रन्थ अध्ययन करें।

गुण-गुणी को जलाने वाली ईर्ष्या

(ईर्ष्या को धिक्कार!)

(चालः 1.माइन-माइन... 2.सुनो-सुनो हे दुनिया 3.शायद मेरी...)

ईर्ष्या रे! ईर्ष्या रे! तू तो बता, तेरी विचित्र गाथा।
सुगुणी-उपकारी प्रति तू क्यों करती हो द्वेष, ईर्ष्या।।
हाय हाय हाय रे! ईर्ष्या, धिक् धिक् धिक् रे! ईर्ष्या।। (स्थायी)
तेरे अन्दर समाहित है घृणा द्वेष दंभ मोह माया।
स्वयं को तू निर्दोष मानती; सुगुणी, उपकारी को भी नीचा।।
अन्य की उन्नति-प्रशंसा-महानता से तुम्हें होता विद्वेष।
जिससे तुझे जलन होती; जिससे तुझे न मिले संतोष।। (1)
इस के कारण गुण-गुणी को; चाहती हो नीचा दिखाना।
मंथरा, शकुनी, (नीली) लोमड़ी, गोमुख व्याघ्र सम करो दुर्भावना।।
अन्य के घर जलाकर प्रकाश चाहती हो यथा नीरो सम्राट सम।
अन्य के दुःख संकट देखकर तू होती हो अति प्रसन्न।। (2)
गुण-गुणी निन्दा, अपमान से तू करती है रौद्रध्यान।
हिंसानन्द, मृषानन्दमय कुभाव-व्यवहारमय तेरे तन-मन।।
इसलिए तेरे जो होते अनुयायी उन का जीवन होता व्यर्थ।
तन-मन-आत्मा से अस्वस्थ दुर्बल न कर जाते सही पुरुषार्थ।। (3)
इसलिए वे व्यक्ति परिवार, समाज से न पाते समादर।
किसी भी क्षेत्र में न कर पाते, विकास लौकिक से ले धर्म तक।।
उनकी संगति भी ईर्ष्यालु करते, यथा व्यसनी की करे व्यसनी।

पाप व पापी की प्रशंसा करते; ऐसे होते हैं वे कुज्ञानी।। (4)
गुण-गुणी की प्रशंसा न करते न बनते उपकारी के कृतज्ञ।
यथा वेश्यागामी वेश्या को चाहे, सती को न देता सम्मान।।
महापुरुष तक को वे वैरी मानकर, उनको देते नानाविध कष्ट।
तीर्थंकर, बुद्ध, ईसा, मीरा, लिंकन, समाज सुधारक बने के दृष्टान्त।। (5)
ऐसे जीव मरकर तिर्यंच नारकी या (पापानुबन्धी पुण्य से) बनते नीच देव।
वहाँ भी वे और भी अधिक कुभाव (व्यवहार) वशीभूत होकर कुदेव।।
आगम, अनुभव, मनोविज्ञान विश्व साहित्य से किया ये वर्णन।
अतः रे! ईर्ष्या तेरे नाशन हेतु 'कनक' बढ़ाये आत्मिक गुण।। (6)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-7/12/2020, रात्रि-7.58

ईर्ष्या, तू न गई मेरे मन से

मेरे घर के दाहिने एक वकील रहते है, जो खाने पीने में अच्छे है। दोस्तों को भी खूब खिलाते है और सभा सोसाइटियों में भी भाग लेते हैं। बाल बच्चों से भरा पूरा परिवार नौकर भी सुख देने वाले और पत्नी भी अत्यन्त मृदुभाषिणी। भला एक सुखी मनुष्य को और क्या चाहिए। मगर वे सुखी नहीं है। उनके भीतर कौन- सा दाह है, इसे मैं भली-भाँति जानता हूँ। दरअसल उनके बगल में जो बीमा एजेन्ट है उनके वैभव की वृद्धि से वकील साहब का कलेजा जलता रहता है। वकील साहब को भगवान ने जो कुछ दे रखा है, वह उनके लिए काफी नहीं दिखता। वह इस चिन्ता में भुने जा रहे हैं कि काश एजेन्ट की मोटर, उसकी मासिक आय और उसकी तड़क-भड़क मेरी भी हुई होती।

ईर्ष्या का यही अनोखा वरदान है । जिस मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या घर बना लेती है, वह उन चीजों से आनन्द नहीं उठाता जो उसके पास मौजूद हैं, बल्कि उन वस्तुओं से दुःख उठाता है जो दूसरों के पास हैं। वह अपनी तुलना दूसरों के साथ करता है और इस तुलना में अपने पक्ष के सभी अभाव उसके हृदय पर दंश मारते है। दंश के इस दाह को भोगना कोई अच्छी बात नहीं है। मगर ईर्ष्यालु मनुष्य करे भी तो क्या? आदत से लाचार होकर उसे यह वेदना भोगनी ही पड़ती है।

एक उपवन को पाकर भगवान को धन्यवाद देते हुए उसका आनन्द नहीं लेना और बराबर इस चिन्ता में निमग्न रहना कि इससे भी बड़ा उपवन क्यों नहीं मिला। यह ऐसा दोष है जिससे ईर्ष्यालु व्यक्ति का चरित्र भी भयंकर हो उठता है। अपने अभाव पर दिन-रात सोचते वह सृष्टि की प्रक्रिया को भूलकर विनाश में लग जाता है और अपनी उन्नति के लिए उद्यम करना छोड़कर वह दूसरों को हानि पहुंचाने को ही अपना श्रेष्ठ कर्तव्य समझने लगता है।

ईर्ष्या की बेटी का नाम निन्दा है, जो व्यक्ति ईर्ष्यालु होता है वही बुरे किस्म का निन्दक भी होता है। दूसरों की निन्दा वह इसलिए करता है कि इस प्रकार दूसरे लोग जनता अथवा मित्रों की आँखों से गिर जाएंगे और जो स्थान है उस पर मैं अनायास ही बैठा दिया जाऊँगा। मगर ऐसा न आज तक हुआ है और न होगा। दूसरों को गिराने की कोशिश तो अपने को बड़ाने की कोशिश नहीं कही जा सकती। एक बात और है कि संसार में कोई भी मनुष्य निन्दा से नहीं गिरता। उसके पतन का कारण सद्गुणों का हास होता है। इसी प्रकार कोई भी मनुष्य दूसरों की निन्दा करने से अपनी उन्नति नहीं कर सकता। उन्नति तो उसकी तभी होगी जब वह अपने चरित्र को निर्मल बनाए तथा गुणों का विकास करे।

ईर्ष्या का काम जलाना है मगर सबसे पहले वह उसी को जलाती है, जिसके हृदय में उसका जन्म होता है आप भी ऐसे बहुत से लोगों को जानते होंगे जो ईर्ष्या और द्वेष की साकार मूर्ति है और जो बराबर इस फिक्र में लगे रहते है कि कहीं सुनने वाला मिले और अपने दिल का गुबार निकालने का मौका मिले। श्रोता मिलते ही उनका ग्रामोफोन बजने लगता है और वे बडी ही होशियारी के साथ एक-एक काण्ड इस ढंग से सुनाते हैं मानो विश्व कल्याण को छोड़कर उनका और कोई ध्येय नहीं हो। अगर जरा अपने इतिहास को देखिए और समझने की कोशिश कीजिए कि जब से उन्होंने इस सुकर्म का आरम्भ किया है . तब से वे अपने क्षेत्र में आगे बढ़े है या पीछे हटे हैं। यह भी कि वे निन्दा करने में संयम और शक्ति का अपव्यय नहीं करते तो आज उनका स्थान कहाँ होता।

चिन्ता को लोग चिता कहते हैं। जिसे किसी प्रचंड चिंता ने पकड़ लिया है, उस बेचारे की जिन्दगी ही खराब हो जाती है, किन्तु ईर्ष्या शायद फिर चिन्ता से भी बदतर

चीज है क्योंकि वह मनुष्य के मौलिक गुणों को ही कुंठित बना डालती है।

मृत्यु शायद फिर भी श्रेष्ठ है बनिस्पत इसके कि हमें अपने गुणों को कुंठित बनाकर जीना पड़े, चिंतादग्ध व्यक्ति, समाज की दया का पात्र है किन्तु ईर्ष्या से जला -भुना आदमी जहर की चलती-फिरती गठरी के समान है जो हर जगह वायु को दूषित करती फिरती है।

ईर्ष्या मनुष्य का चारित्रिक दोष नहीं है। प्रत्युत इससे मनुष्य के आनन्द में भी बाधा पड़ती है। जब भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या का उदय होता है, सामने का सुख उसे मद्धिम-सा दिखने लगता है। पक्षियों के गीत में जादू नहीं रह जाता और फूल तो ऐसे हो जाते हैं मानो वे देखने के योग्य ही नहीं हो। आप कहेंगे कि निन्दा के बाण अपने प्रतिद्वंद्वियों को बेधकर हँसने में एक आनंद है और यह आनंद ईष्यालु व्यक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार है। मगर यह हँसी मनुष्य की नहीं, राक्षस की हँसी होती है। यह आनंद दैत्यों का आनंद होता है। ईर्ष्या का एक पक्ष सचमुच ही लाभदायक हो सकता है जिसके अधीन हर आदमी, हर जाति, और हर दल अपने को अपने प्रतिद्वंद्वी का समकक्ष बनाना चाहता है, किन्तु यह तभी संभव है जबकि ईष्या से जो प्रेरणा आती हो, वह रचनात्मक हो। अक्सर तो ऐसा ही होता है कि ईर्ष्यालु व्यक्ति यह महसूस करता है कि कोई चीज है जो उसके भीतर नहीं है। कोई वस्तु है जो दूसरों के पास है, किन्तु वह यह नहीं समझ पाता कि इस वस्तु को प्राप्त कैसे करना चाहिए और गुस्से में आकर वह अपने किसी पड़ोसी मित्र या समकालीन व्यक्ति को अपने से श्रेष्ठ मानकर उससे जलने लगता है, जबकि ये लोग भी अपने आप से शायद वैसे ही असंतुष्ट हों। आपने यही देखा होगा कि शरीफ लोग यह सोचते हुए अपना सिर खुजलाया करते हैं कि फलाँ आदमी मुझसे क्यों जलता है? मैंने तो उसका कुछ नहीं बिगाड़ा और अमुक व्यक्ति इस कदर निंदा में क्यों लगा हुआ है? सच तो यह है कि मैंने सबसे अधिक भलाई उसकी ही की है। यह सोचते है-मैं तो पाक साफ हूँ, मुझमे किसी व्यक्ति के लिए दुर्भावना नहीं, बल्कि अपने दुश्मनों की भी भलाई ही सोचा करता है। फिर ये लोग मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं? मुझमें कौन-सा वह एब है जिसे दूर करके मैं इन दोस्तों को चुप कर सकता हूँ?

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जब इस तजुर्बे से होकर गुजरे तब उन्होंने एक सूत्र

कहा- ''तुम्हारी निन्दा वही करेगा, जिसकी तुमने भलाई की है।''

और नीत्से जब इस कूचे से होकर निकला, तब उसने जोरों का एक ठहाका लगाया और कहा कि, ''यार, ये तो बाजार की मक्खियाँ हैं, जो अकारण हमारे चारों ओर भिनभिनाया करती है।''

ये सामने प्रशंसा और पीठ पीछे निन्दा किया करते है। हम इनके दिमाग में बैठे हुए हैं, ये मक्खियाँ हमें भूल नहीं सकतीं और चूँकि ये हमारे बारे में सोचा करती हैं, इसलिए ये हमसे डरती हैं और हम पर शंका भी करती हैं।

ये मक्खियाँ हमें सजा देती हैं हमारे गुणों के लिए। ये एब को तो माफकर देंगी , क्योंकि बड़ों के एब को माफ करने में भी शान है जिस शान का स्वाद लेने के लिए ये मक्खियाँ तरस रही हैं। जिनका चरित्र उन्नत है, जिनका हृदय निर्मल और विशाल है, वे कहते हैं-'' इन बेचारों की बातों से क्या चिढ़ना? ये तो खुद ही छोटे हैं।''

जिनका दिल छोटा है और दृष्टि संकीर्ण है, वे मानते हैं कि जितनी भी बड़ी हस्तियाँ हैं, उनकी निन्दा ठीक है। और जब हम प्रीति, उदारता एवं भलमनसाहत का बर्ताव करते हैं, तब भी वे यही समझते हैं कि हम उनसे घृणा कर रहे हैं और हम चाहे उनका जितना उपकार करें, बदले में हमें अपकार ही मिलेगा।

दरअसल हम जो उनकी निन्दा का जवाब न देकर चुप्पी साधे रहते हैं, उसे भी वे हमारा अहंकार समझते हैं। खुशी तो उन्हें तभी हो सकती है, जब हम उनके धरातल पर उतर कर उनके छोटेपन के भागीदार बन जाएँ।

सारे अनुभवों को निचोड़ कर नीत्से ने एक दूसरा सूत्र कहा,-''आदमी में जो गुण महान समझे जाते हैं, उन्हीं के चलते लोग उससे जलते भी हैं।''

तो ईर्ष्यालु लोगों से बचने का क्या उपाय है। नीत्से कहता है कि बाजार की मक्खियों को छोड़कर एकांत की ओर भागो। जो कुछ भी अमर तथा महान है, उसकी रचना और निर्माण बाजार के सुयश से दूर रह कर किया जाता है। जो लोग नये मूल्यों का निर्माण करने वाले होते हैं, ये बाजारों में नहीं बसते, वे शोहरत के पास भी नहीं रहते। जहाँ बाजार की मक्खियाँ नहीं भनकती, वहाँ एकान्त है।

यह तो हुआ ईर्ष्यालु लोगों से बचने का उपाय, किन्तु ईर्ष्या से आदमी कैसे बच सकता है?

ईर्ष्या से बचने का उपाय मानसिक अनुशासन है। जो व्यक्ति ईर्ष्यालु स्वाभाव का है , उसे फालतू बातों के बारे में सोचने की आदत छोड़ देनी चाहिए। उसे यह भी पता लगाना चाहिए कि जिस अभाव के कारण वह ईर्ष्यालु बन गया है, उसकी पूर्ति का रचनात्मक तरीका क्या है। जिस दिन उसके भीतर यह जिज्ञासा आएगी, उसी दिन से वह ईर्ष्या करना कम कर देगा। **(रामधारी सिंह दिनकर)**

आखिर क्या है प्यार या स्नेह से घृणा का मनोविज्ञान?

-डॉ. सत्यकांत त्रिवेदी

मेंटल हेल्थ एक्सपर्ट और सुसाइड के खिलाफ 'यस टु लाइफ' कैंपेन चला रहे हैं

बिजनेसमैन राज का वैवाहिक जीवन सही नहीं चल रहा है। बैंकर पत्नी रेणुका का अजीब व्यवहार उसकी समझ के बाहर है। राज बताता है कि स्नेह की अभिव्यक्ति-देखभाल करने पर पत्नी गुस्सा होकर अजीब व्यवहार करना शुरू कर देती है। त्योहार के दिन तो निश्चित तौर पर झगड़ा करती है। कोई भी उपहार लाने पर उसका उपयोग नहीं करती। राज की भावनाओं को ठेस पहुंचाकर वह संतुष्टि का अनुभव करती है। हंसी खुशी और सौहार्दपूर्ण वातावरण में असहज होकर घर का माहौल खराब करके उसे अच्छा महसूस होता है। उसे ये भी समझ नहीं आता कि उसका स्वास्थ्य काफी बुरे तरीके से प्रभावित हो रहा है। वह अपने इस व्यवहार की जिम्मेदारी लेने से इंकार कर देती है। यह अलग बात है कि बाहरी दुनिया के लिए वह बेहद सफल महिला है। प्यार सम्मान संवेदनशीलता को स्वीकार कर पाना कई लोगों के लिए काफी जटिल हो जाता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर इसके बहुत से कारण माने गए हैं। यह प्रक्रिया अवचेतन मष्तिष्क के स्तर पर होती है। कारणों की बात करें तो ऐसे लोगों में इनके द्वारा बचपन में स्वयं के रिजेक्शन एवं मानसिक दर्द के प्रति बनाए गए भावनात्मक कवच (साइकोलॉजिकल डिफेंस) को स्नेह नुकसान पहुंचाता है। इनमें बचपन के कटु अनुभवों, दुत्कार और अकेलेपन की भावना को प्यार सक्रिय कर देता है और वे असहज हो जाते हैं। माता-पिता कई बार अपने संबधों को जिस तरीके से निभाते हैं, वे बच्चों के मन में पति पत्नी का आदर्श मॉडल बनते जाते हैं। साथ ही साथ उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, धीमे-धीमे वे तरीके बच्चे के लिए सामान्य भावनात्मक ढाल बन जाते हैं। वे कष्ट और सुख की अनुभूति के

लिए वही तरीके अपनाते हैं, जिनका उन्होंने बचपन से अभ्यास किया होता है।

जीवनसाथी द्वारा अपनाया गया इतर तरीका न केवल भावनात्मक ठेस पहुंचाता है, बल्कि उनके मन में पेरेंट्स की उनके द्वारा रची गयी आदर्श छवि को धक्का पहुंचाता है। इसलिए साथी के प्रति इनके मन में क्रोध और शत्रुता का भाव पनपने लगता है। प्रशंसा और प्यार इन्हें फालतू या छद्म लगता है। इन्हें महसूस होता है कि इनका पार्टनर अपनी कोई गलती छिपाने के लिए ऐसा कर रहा है, क्योंकि उनके पेरेंट्स में अधिकांश समय संबंधों को ऐसे ही जिया गया होता है।

ये कई बार जानबूझ कर अपने पार्टनर्स को उकसाकर अपने पुराने अनुभवों में जीने की कोशिश करते रहते हैं। महिलाएं अपनी माता और पुरुष अपने पिता के तरीकों को कॉपी करते हैं। इनमें पर्सनालिटी डिसऑर्डर का होना बेहद सामान्य बात है। मनोवैज्ञानिक सलाह के अभाव में इनका वैवाहिक जीवन बेहद कष्टमय होता है।

सीपीआई में 180 देशों का औसत स्कोर 43, भारत को 40 अंक, बीते साल से एक कम

न्यूजीलैंड दुनिया में सबसे ईमानदार देश, भारत में भ्रष्टाचार बढ़ा, छह स्थान खिसककर 86 वें पर आया; चीन हमसे 8 स्थान ऊपर

पाकिस्तान 124 वें और बांग्लादेश 146 वें पहुंचा

देश में भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी हुई है। यह दावा ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने अपने करप्शन पर्स्पेशन इंडेक्स (सीपीआई) में किया है। उसकी ओर से जारी सूचकांक में भारत को 100 में 40 अंक दिए गए हैं, जो बीते साल से 1 कम है। इसी के साथ भारत की रैकिंग 6 स्थान गिरकर 80 से 86वीं हो गई है। जबकि न्यूजीलैंड ने दुनिया में सबसे ईमानदार देश के रूप मेंइस सूची में जगह बनाई है। उसकी कोरोना नियंत्रण को लेकर तारीफ भी की गई। रैंकिग से ये बात सामने आई कि जो देश कम भ्रष्टाचारी हैं, वहां कोरोना महामारी से ठीक तरीके से निपटा गया है। इसके आर्थिक प्रभाव भी कम हुए हैं। सूचकांक जारी करने वाली संस्था ने कहा है कि उसने भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने की दिशा में उठाए गए कदमों के जरिए दुनिया के 180 देशों की रैकिंग तैयार की है। पड़ोसी चीन को 78वें, पाकिस्तान को 124 वें और बांग्लादेश को 146वें स्थान पर रखा गया है।

दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में वेनेजुएला, यमन, सीरिया, सोमालिया और दक्षिण सूडान

कोरोना को ध्यान में रखकर तैयार की रैंकिगः संस्था 2012 से भ्रष्ट देशों की सालाना रैकिंग कर रही है। इस बार कोरोना को ध्यान में रखकर रैंकिग की है। संस्था की प्रमुख डेलिया फरेरिया रूबियो ने कहा, कोरोना सिर्फ स्वास्थ्य और आर्थिक संकट नहीं, बल्कि ये भ्रष्टाचार का संकट भी है। इससे निपटने में हम असफल साबित हो रहे हैं।

ब्रिक्सः दक्षिण अफ्रीका में सबसे कम, रूस सबसे भ्रष्टः ब्रिक्स देशों में दक्षिण अफ्रीका को 44 अंक मिले। उसकी रैकिंग 69 है। ब्राजील 38 अंकों के साथ 94वें पर, जबकि 30 अंकों के साथ रूस को 129 वां स्थान हासिल हुआ है।

कोरोना से निपटा न्यूजीलैंड इसलिए सबसे ईमानदारः सूचकांक में न्यूजीलैंड को पहला स्थान हासिल हुआ। यानी वहां सबसे कम भ्रष्टाचार है। उसकी कोरोना नियंत्रण को लेकर दुनिया ने तारीफ भी की। वहां समानता के कदम भी उठाए जा रहे हैं।

न्यूजीलैंड और डेनमार्क बराबरी पर

देश	अंक	रैंक	बीते साल
न्यूजीलैंड	88	1	1
डेनमार्क	88	2	1
फिनलैंड	85	3	3
सिंगापुर	85	4	4
स्वीडन	85	5	4
स्विटजरलैंड	85	6	4

भारत के पड़ोसी किस जगह पर हैं

देश	अंक	रैंक	बीते साल
चीन	42	78	80
पाकिस्तान	31	124	120

नेपाल	33	117	113
बांग्लादेश	26	146	146

सफलता मिले तो आभार जताना ना भूलें

–सुशील चौधरी मोटिवेशनल गुरु

आपको जो कुछ भी इस जीवन में मिला है, उसके बारे में आभार जताने से जीवन में और भी सफलता मिलने लगती है और आपको ख़ुशी भी होती है।

कॅरियर में सफलता प्राप्त करना हर व्यक्ति का पहला सपना होता है। सफलता मिलने पर सेलिब्रेट भी करता है लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि सफलता प्राप्ति में जो लोग सहयोगी बने हैं, क्या आपने उनका आभार व्यक्त किया है? यह सफलता पाने के लिए बहुत जरूरी है।

स्वयं की स्किल्स पर घमंड न करें

यदि आप यह महसूस करते हैं कि आप इतने क्षमतावान हैं कि यह सफलता आप डिजर्व करते हैं तो यह भी आपकी ग़लतफहमी हो सकती है। जिस व्यक्ति ने आपकी क्षमता या स्किल्स को पहचानकर आपको परफॉर्म करने का मौका दिया उसका आपकी सफलता में योगदान आप न भुलाएं।

दूसरों की तरक्की के बारे में भी सोचें

सफलता का दायरा बढ़ जाता है, जब हमारे अपने साथ दूसरों की तरक्की भी जुड़ जाती है। अपनी खुशियां दूसरों के साथ बांटना सीख जाते हैं। चिंतक खलील जिब्रान कहते हैं, 'मैं जब सोया हुआ था, तब सपना देखता था कि खुशी ही जिंदगी है। जब जागा तो देखा कि सेवा ही जिंदगी है। और जब सेवा करने लगा तो पाया कि सेवा ही खुशी है।'

कलाम से सीखें

इसरो में काम करते हुए डॉ. कलाम को तत्कालीन इसरो अध्यक्ष प्रो. सतीश धवन का विशेष सहयोग और मार्गदर्शन मिला। वह कलाम की विफलताओं की जिम्मेदारी स्वयं लेकर सफल मिशन का श्रय उन्हें देते थे। राष्ट्रपति बनने के बाद भी डॉ. कलाम अपनी सफलता में धवन का अहम योगदान बताते थे।

आप थैंक यू कहें

जब भी किसी फ्रेंड या कलीग को किसी काम को करने के लिए कहा जाए तो काम होने के बाद उनका शुक्रिया जरूर करना चाहिए। अपनी इस आदत से आप उनका मन मोह लेंगे एवं भविष्य में वह शख्स आपके काम से कभी इंकार नहीं करेगा। साथ ही लोगों के बीच आपकी छवि एक विनम्र इंसान की बनेगी।

सहयोग को भूल न जाना

मनुष्य की यह एक सामान्य सी आदत है कि वह स्वयं को मिले सहयोग को या अच्छी बातों को तो भूल जाता है पर यदि किसी ने उसे दुख पहुंचाया या सहयोग नहीं किया तो उसे वह उम्र भर याद रखता है। आपको चाहिए कि उन सब के प्रति ग्रटीट्यूड व्यक्त करें। जिन्होंने आपकी सफलता को संभव बनाया।

मानसिक सेहत के लिए जरूरी

मनौवैज्ञानिक शोध भी बताते है कि जो कुछ भी आपके पास है, आप उसके लिए अगर आभार व्यक्त कर पाते हैं तो आप वास्तव में वर्तमान में जी पाते हैं। कृतज्ञ बनने से न सिर्फ शरीर, बल्कि दिल की सेहत भी अच्छी रहती है। इसीलिए कृतज्ञता एक दायित्व है जिसे जरूर पूरा करना चाहिए।

थैंकफुल होने की वजहें तलाशें

कभी-कभी जिंदगी के कठिन समय में थैंकफुल होना मुश्किल हो सकता है। फिर भी कृतज्ञ रहें क्योंकि ये आपको गुस्से या परेशान करने वाले कठिन समय से गुजरने में मदद करेगा। यही वह वक्त है जब आपके लिए आभार विकसित करना और भी जरूरी होता है ताकि आप स्थिति का सामना कर सकें।

इनोवेशन में पश्चिमी देश आगे, भारत सहित 4 एशियाई देश टॉप 50 में

वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल ऑर्गेनाइजेशन ने अनुसंधान, तकनीक, उत्पादन और उद्यम से जुड़े 50 नवाचारों के आधार पर ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स रिपोर्ट जारी की। पश्चिमी देश अब भी ग्लोबल इनोवेशन में आगे हैं, जबकि मध्यम आय वाले खासकर एशियाई देशों ने प्रभावी प्रगति की है।

तकनीकी विकास के साथ इनोवेशन अब दुनिया के लिए तरक्की का नया हथियार है। इंटेलेक्चुअल ऑर्गेनाइजेशन (डब्ल्यूआइपीओ) की हालिया रिपोर्ट से पता चलता है कि इनोवेशन पर निवेश से आर्थिक सुधारों को गति मिली है। नवाचार पर निवेश के मामले में स्विट्ज़रलैण्ड, स्वीडन और अमरीका उच्च आय वर्ग में शीर्ष पर हैं। उच्च मध्यम आय वाले देशों में चीन, मलेशिया और बुल्गारिया हैं, जबकि निम्न मध्य आय वर्ग में वियतनाम, यूक्रेन और भारत शीर्ष पर हैं। इसी तरह तंजानिया, रवांडा और मलावी जैसे अफ्रीकी देश निम्न आय वर्ग में शीर्ष पर हैं।

ग्लोबल इनोवेटर्स पर नजर

2011 के बाद से स्विट्जरलैंड नवाचार सूचकांक में शीर्ष पर है। स्वीडन दूसरे स्थान पर आ गया, जबकि अमरीका दूसरे से तीसरे स्थान पर फिसल गया। 2018 में दूसरे स्थान पर रहा नीदरलैंड्स पांचवे स्थान पर चला गया। स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड ने शिक्षा, पर्यावरण व बौद्धिक संपदा में इनोवेशन कर अपनी मजबूती बरकरार रखी है।

एशियाई देशों ने सुधारी रैंकिंग

भारत, चीन, वियतनाम और फिलीपींस ने शीर्ष 50 में अपनी जगह बना ली है। शीर्ष 30 में चीन एकमात्र मध्य आय वाली अर्थव्यवस्था है। सिंगापुर के बाद दक्षिण कोरिया 2020 में शीर्ष दस में जगह बनाने वाला दूसरा एशियाई देश बन गया।

किस क्षेत्र में आगे

स्विट्जरलैंडः ज्ञान सृजन में इनोवेशन में पहला और ग्लोबल ब्रांड वैल्यू में दूसरा स्थान।

अमरीकाः एंटरटेनमेंट-मीडिया, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर में खर्च व बौद्धिक संपदा में पहला।

चीनः पेटेंट पंजीकरण में अव्वल।

वियतनामः उच्च प्रौद्योगिकी निर्यात में दूसरे स्थान पर।

भारतः सूचना और संचार प्रौद्योगिकी सेवा में अव्वल।

तंजानियाः प्रिंटिंग और अन्य मीडिया में 23वां स्थान।

आय वर्ग के अनुसार रैंकिंग

देश	रैंकिग	
स्विट्रलैंड	01	
स्वीडन	02	(उच्च आय वर्ग)
अमरीका	03	

देश	रैंकिग	
चीन	14	
मलेशिया	33	(उच्च-मध्य आय)
बुल्गारिया	37	

देश	रैंकिग	
वियतनाम	42	
यूक्रेन	45	(निम्न-मध्य आय)
भारत	48	

देश	रैंकिग	
तंजानिया	88	
रवांडा	91	(निम्न आय वर्ग)
मलावी	11	

वेल्स सरकार की रिपोर्ट में गांधी पर नस्लभेदी टिप्पणी करने का आरोप

ब्रिटेन के वेल्स में हटाई जा सकती हैं महात्मा गांधी और विंस्टन चर्चिल की प्रतिमाएं, रिपोर्ट में दावा-इनमें कई दोष मौजूद थे

वर्ल्ड वॉर में जीत दिलाने वाले चर्चिल को साम्राज्यवाद का समर्थक कहा गया, बंगाल अकाल का दोषी भी बताया

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी और दूसरे विश्व युद्ध में मित्र देशों को जीत दिलाने में अहम भूमिका निभाने वाले तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल की प्रतिमाएं ब्रिटेन के कुछ हिस्से से हटाई जा सकती हैं। ऐसा वेल्स सरकार की एक रिपोर्ट में किए दावों के कारण हो सकता है।

रिपोर्ट में कई प्रतिष्ठित लोगों पर सवाल उठाए हैं और मांग की गई है कि कई

महान माने जाने वाले लोगों के गुण-दोष की पूरी समीक्षा की जाए। यह रिपोर्ट ब्लैक लाइव्स मैटर कैंपेन के बीच में आई है। इसमें कहा गया है कि महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत लोगों के खिलाफ नस्लभेदी रवैया रखते थे। साथ ही ब्रह्मचर्य पर किए उनके प्रयोगों को महिला विरोधी बताया गया है। वहीं, चर्चिल के बारे में कहा गया है कि उन्होंने भले ही ब्रिटेन को जीत दिलाई थी लेकिन, वे वेल्स के कुछ खास इलाकों में बिल्कुल पसंद नहीं किए जाते। चर्चिल साम्राज्यवाद के समर्थक थे और अपनी नस्ल को श्रेष्ठ बताते थे। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को खत्म करने का विरोध किया और बंगाल में पड़े अकाल के दौरान पर्याप्त राहत देने में विफल रहे थे। वेल्स में चर्चिल के नाम पर 15 सड़कें हैं साथ ही उनकी दो प्रतिमाएं वहां मौजूद हैं। गांधी की प्रतिमा भी वेल्स में मौजूद है। शोध टीम का नेतृत्व करने वाले ग्योर लेगेल ने बताया कि कुछ विवादास्पद स्मारक संग्रहालयों में स्थानांतरित किए जा सकते हैं। मुझे चीजों को नष्ट करने का मामला नहीं दिख रहा है।

क्यों लगते हैं गांधी पर नस्लभेदी होने के आरोप

गांधी पर आरोप लगाए जाते हैं कि उन्होंने अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान 1903 में लिखा था कि वहां श्वेत लोगों को प्रमुख नस्ल होना चाहिए। साथ ही उन्होंने यह भी कहा था ब्लैक लोग समस्या पैदा करते हैं, गंदे होते हैं और जानवरों की तरह रहते हैं। इन्हीं आरोपों के कारण पहले घाना की एक यूनिवर्सिटी के कैंपस से गांधी की प्रतिमा हटा ली गई थी। इस विषय पर रामचंद्र गुहा सहित कई इतिहासकारों का कहना है कि गांधी ने ये बातें तब लिखीं जब वे काफी युवा थे। बाद में उनके अंदर बदलाव आए और उसके बाद वे आजीवन नस्लभेद के विरोध में रहे ।

आत्मविश्वास से कर्म करो, परिणाम दैव पर छोड़ दोः आचार्य कनकनंदी

पुनर्वास कॉलोनी के विमलनाथ दिगंबर जैन मंदिर में धर्माचार्य ने दिए प्रवचन

पुनर्वास कॉलोनी के विमललाथ दिगंबर जैन मंदिर में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी महाराज ने प्रवचन में जीवन में सकारात्मक सोच और उसके महत्त्व के

बारे में बताया। आचार्य ने कहा कि लोग हमेशा प्रयत्न नहीं करना ही संतोष समझ लेते हैं। कई लोग संतोष की आड़ में अपनी अकर्मण्यता को छिपा लेते है। वास्तव में संतोष का अर्थ प्रयत्न न करना नहीं बल्कि प्रयत्न करने के बाद जो भी मिल जाए उसमें प्रसन्न रहना है। आचार्य ने कहा कि प्रयत्न करने में, उद्यम करने में और पुरुषार्थ करने में असंतोषी रहना चाहिए। प्रयास के अंतिम पायदान तक एक क्षण के लिए भी लक्ष्य को नहीं भूलना होगा। तुम क्या हो यह तुम्हारी सफलता से पता चलना चाहिए।

आचार्य ने कहा कि कर्म करते समय सब कुछ मुझ पर ही निर्भर है इस आत्मविश्वास से कर्म करो, लेकिन कर्म करने के बाद सब कुछ दैव पर ही निर्भर है इस भाव से समर्पित होकर परिणाम में जो प्राप्त हो उसे प्रेम से स्वीकार कर लेना चाहिए। आचार्य ने कहा कि दुःख में सुख, हानि में लाभ और प्रतिकूलताओं में भी अवसर खोज लेना ही सकारात्मक दृष्टिकोण है। जीवन में ऐसी कोई बाधा नहीं जिससे कुछ प्रेरणा न ली जा सके। मार्ग में पड़े हुए पत्थर को कई लोग मार्ग की बाधा मान लेते हैं लेकिन सकारात्मक लोग उसी पत्थर को सीढ़ी बनाकर ऊपर भी चढ़ सकते है। जीवन का आनन्द वही लोग उठाते हैं, जिनका सोचने का तरीका सकारात्मक होता है।

स्वशुद्धात्मा वैभव प्राप्ति हेतु-
समता-शान्ति-निस्पृहता की साधना करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1. यमुना किनारे... 2. भातुकली...(मराठी)

मुझे छोड़कर मेरा अस्त्वि मेरे अतिरिक्त अन्य में न स्थित।
द्रव्य-गुण-पर्याय सभी अशुभ-शुभ-शुद्धमय मुझ में ही संभव।।
मैं हूँ जीव, उपयोगमय, अमूर्ति, कर्त्ता, सदेह परिमाण, मुझ में स्थित।
भोक्ता व संसारी तथाहि सिद्ध, स्वभाविक गति मुझ में ही अवस्थित।। (1)
व्यवहार से दश प्राण मुझ में स्थित, निश्चय से भावप्राणमय चेतना स्वरूप।
उपयोग दर्शनज्ञान क्षायोपशमिक से ले क्षायिक तक तुझ में ही अवस्थित।।

मूर्तिक कर्मउदय से भले व्यवहार से, अभी देहादि से बना हूँ मूर्तिक।
तथापि द्रव्य-भाव-नो कर्म रहित से, निश्चय से मैं अमूर्तिक ज्ञायक।। (2)
व्यवहार से पुद्गलकर्म के कर्त्ता किन्तु निश्चय से रागादि भावकर्म के।
शुद्धनय से स्वशुद्ध भाव के कर्त्ता, तथाहि मैं भोक्ता तीनों भाव के।।
संसार में स्वदेह परिमाण से स्थित; निश्चय से असंख्यात प्रदेश मम।
संकोचविस्तार गुण के कारण स्वदेह प्रमाण होता किन्तु लोकाकाश प्रमाण प्रदेश।। (3)
व्यवहार से चौदह मार्गणा-गुणस्थान, कर्म सापेक्ष से होना संभव।
''सव्वेसुद्धाहुसुद्धणया'' से मैं हूँ, निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द।।
व्यवहार से अष्टकर्म होने पर भी, अष्टकर्म परे अष्टगुणमय हूँ।
व्यवहार से ''विग्रहगतौकर्मयोगः'' है निश्चय से ''अविग्रहा जीवस्य'' स्वरूप।। (4)
अतएव मैं हूँ जीवद्रव्य इसलिए ''सद्द्रव्यलक्षणं'' से मैं हूँ परमसत्य।
''उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्'' से, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में मैं ही स्थित।।
इस दृष्टि से मैं ही सत्य-द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ-गुण-धर्म मुझ में स्थित।
अतः मैं हूँ स्वयंभू, सम्पूर्ण, स्वावलम्बी, मौलिक, स्वानुशासी, स्वतंत्र।। (5)
''द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं'' अनुसार मम भाव-व्यवहार मम/(आत्म) द्रव्य आश्रित।
''द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धि द्रव्यस्य, सिद्धिश्चरणस्यसिद्धै'' रूप से करूँ प्रवृत्त।।
''चारित्तं खलुधम्मो धम्मो सो सम्मोति णिद्दिठं'' के अनुसार ममधर्म है समता।
अतएव विभाव परभाव व परद्रव्य से, रखूँ निस्पृहता वीतरागता।। (6)
आगम अनुभव व मनोविज्ञान से, जानूँ-मानूँ-ध्याऊँ-अनुकरण करूँ।
स्व-शुद्धात्मा वैभव प्राप्त करने हेतु, 'कनक' समता-शान्ति-निस्पृहता को साधूँ।।
जिस-जिस अंश में समता-शान्ति, निस्पृहता बढ़ रही उत्तरोत्तर।
उस-उस अंश में आत्मविशुद्धि, आत्मशक्ति बढ़ रही उत्तरोत्तर।। (7)
इस से मेरी श्रद्धा-प्रज्ञा कार्यक्षमता बढ़ रही है उत्तरोत्तर।
इससे स्व-पर विश्व कल्याण भावना-प्रभावना बढ़ रही उत्तरोत्तर।। (8)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-30-12-2020 रात्रि-8.43 व 10.42

(यह कविता आर्यिका सुनिधिमती व ब्र.संध्या के कारण बनी)

संदर्भ-

जीव के नौ विशेष गुण

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।

भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। (2) द्र.सं.

Jiva is characterised by upayoga, is formless and an agent, has the same extent as its own body, is the enjoyer (of the fruits of Karma), exists in samsara, is Sidhha and has a characteristic up ward motion.

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम गाथा में जीव द्रव्य का प्रथम निर्देश होने से इस दूसरी गाथा में आचार्य श्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्य श्री ने इसी ग्रंथ में नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में किया है इसलिए यहां केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे हैं-

1.जीव-जो शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य रुप भाव प्राण से जीता है एवं व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

2.उपयोगमय-शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सम्पूर्ण निर्मल केवलज्ञान एवं केवल दर्शन रुप उपयोग से सहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोपशमिक ज्ञान एवम् दर्शन से युक्त है उसे उपयोग मय कहते हैं।

3.अमूर्तिक-संसारी जीव व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण मूर्तिक होते हुए भी निश्चय नय से जीव कर्म निरेपक्ष है इसलिए अमूर्तिक है।

4.कर्त्ता-शुद्ध नय से जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तथापि व्यवहार नय से जीव योग एवम् उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्त्ता भी है।

5.स्वदेह परिमाण-निश्चय नय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात

प्रदेशी होते हुए भी शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

6.भोक्ता-शुद्ध निश्चय नय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ कर्म से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

7.संसार में स्थित-यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार से रहित है तथापि अशुद्ध नय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भव रुपी पंचविध संसार में रहता है।

8.सिद्ध-यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

9.स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला-यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊँचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चय नय से स्वभाव रुप से इसमें ऊर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय उर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे-चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं, भट्ट तथा चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक ही मानते हैं।

सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्त्ता नहीं मानता है। नैयायिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को ह्रदय कमल में स्थित बट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौध दर्शन क्षणिक वादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्वपूर्वोपार्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले आत्मा को सदा सर्वदा मुक्त मानते हैं। भट्ट और चार्वाक दार्शनिक आत्मा को सिद्ध नहीं मानते हैं। उपर्युक्त दार्शनिक जीव को स्वभाविक उर्ध्वगमन वाला नहीं मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों को निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।

ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स।। (3)

According to Vyavahara Naya, that is called Jiva, which is possessed of four Pranas viz. Indriya (the senses), Bal (force), Ayu (life) and Ana-pana (respiration) in the three periods of time viz, the present, the past and the future), and according to Nischaya Naya that which has consciousness is called jiva.

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है, और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

श्रद्धा से मानकर ज्ञान से जानकर एवं आचरण से माना हुआ, जाना हुआ कार्य का सम्पादन होता है। अर्थात् विश्वसनीय एवं ज्ञात लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ के माध्यम से लक्ष्य बिन्दु में पहुँचकर लक्ष्य की पूर्ति कर लेते हैं। कुन्द-कुन्द स्वामी ने चारित्र पाहुड़ में कहा भी है-

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।

णाणस्स पिच्छियस्स स समवण्णा होइ चारित्तं।। (3)

जो जानता है वह ज्ञान है जो देखता है वह दर्शन है, ज्ञान एवं दर्शन समापन्न या समायोग में चारित्र होता है।

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।

तिण्हि वि सोहणत्थे जिण भणियं दुवियं चारित्तं।। (4)

वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप तीन भाव जीव के अक्षय, अनन्त, स्वभाव स्वरूप हैं। इन तीनों भावों की विशुद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहार एवं निश्चय दो प्रकार चारित्र कहे हैं।

सम्मत्त चरण शुद्धा संजम चरणस्स जइ व सुपसिद्धा।

णाणी अमूढ़ दिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं।। (3)

सम्यक्त्व सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों से रहित सम्यक्त्व गुण से अलंकृत जो होता है वह सम्यक् चारित्र से विशुद्ध होता है। वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र चतुर्थ गुणस्थान में होता है। चरणानुयोग अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र नहीं होने पर भी अष्ट मद, शंकादि अष्ट दोष, षट् अनायतन आदि का त्याग एवं निशंकआदि अष्ट अंग, संवेगादि अष्ट गुणादि सहित होना ही इस गुणस्थान सम्बन्धी चारित्र है इसको ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्वाचरण सहित जो महामुनीश्वरों का महाव्रतादि रूप संयमाचरण से अत्यन्त प्रकृष्ट रूप से सर्वलोक सुप्रसिद्ध है। ऐसे महान् चारित्र साधक निर्वाण को स्वल्प काल में ही प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर चारित्र मुख्य होने पर भी सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की समग्रता भी कहा गया है।

सीलं रक्खताणं दंसण-सुद्धाण दिढ चरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्त चित्ताणं।। (12)

जो शील के संरक्षक हैं दर्शन से विशुद्ध हैं दृढ़ चारित्रनिष्ठ हैं विषय वासना से विरक्त चित्त वाले हैं उनके लिये निर्वाण ध्रुव सुनिश्चित है।

राग द्वेष त्याग आत्मस्थ होना धर्म

राय रोस वे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियइ जो पंचम गइ णेइ।। (48) यो.सा.
राग द्वेष दोनों को त्यागकर, जो आत्मा में करते वास।
उसी को जिनेन्द्र ने धर्म कहा, जो पंचमगति कराये प्राप्त।।
राग द्वेष दोनों अधर्म है, दोनों के त्याग से होता धर्म।
समता शान्ति वीतरागता धर्म है, इससे मिले पंचमगति निर्वाण।।
अन्यथा न होता धर्म है भले बाह्य में करे क्रियाकाण्ड।
भूसा से न यथा मिले चावल, राग द्वेष से न मिले तथा धर्म।।
मोह क्षय से मोक्ष मिलता है, राग-द्वेष दोनों ही होते मोह।
मोह क्षोभ विहीन से होता समभाव, समभाव से आत्मा में होता वास।

मिथ्यात्व की शक्ति एवं मिथ्यात्व का कार्य का वर्णन वीरसेन स्वामी ने निम्न प्रकार से किया है-

सूत्र-(सव्वतिव्वाणुभागा मिच्छतस्स उक्कस्साणुभागुदीरणा अणंताणुबं-धीणमण्णदरा उक्कस्माणुभागुदीरणा तुल्ला अणंत गुण हीणा।) (ज.ध. पु.९९)

सबसे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा तीव्र अनुभाग वाली है। अर्थात् सबसे तीव्र शक्ति से संयुक्त है उससे अनंतानुबंधियों की अन्यतर (कोई एक) उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा परस्पर समान होकर मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा से अनंत गुणी हीन है।

शंका-मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा सबसे तीव्र क्यों है?

समाधान-''सव्व दव्व विसय सद्दहण गुण पडिबंधत्तादो।''

अर्थ-सर्व द्रव्य विषय श्रद्धान गुण का प्रतिबंधन मिथ्यात्व कर्म करता है।

मिच्छत्तपच्चयो खलु बन्धो उवसाम यस्स बोधव्वो।
उवसंते सासणे तेण परं होदि भयणिज्जो।। (धवला)

मिथ्यात्व का उपशांत अवस्था में और सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व निमित्तक बंध नहीं होता है, अन्य स्थान में भजनीय है।

मेरा अभिप्राय यह नहीं की मिथ्यात्व से ही बंध होता है कषाय आदि से नहीं। मिथ्यात्व से भी बंध होता है और कषाय आदि से भी बंध होता है परन्तु मिथ्यात्व को जैसे बंध प्रक्रिया में अकिंचित्कर मानते हैं मैं वैसे कषाय आदि को अकिंचित्कर नहीं मानता हूँ। आगमोक्त जो विधि है वह मेरे लिए मान्य है। मेरा कोई व्यक्ति विशेष प्रति या किसी के मत प्रति राग या द्वेष नहीं है, परन्तु वस्तु स्वरूप का निर्णय करना ही मेरा लक्ष्य हैं।

मोहक्षय करने वाला दुःख क्षय करता है

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण।। (88) (प्रवचनसार)

He, who destroys delusion, attachment and aversion, after having grasped the discourse of the jina, escapes from all miseries within a short time.

आगे यह प्रकट करते हैं इस दुर्लभ जैन के उपदेश को प्राप्त करके भी जो

कोई मोह-राग-द्वेषों को नाश करते हैं, वे ही सर्व दुःखों का क्षय करके निज स्वभाव को प्राप्त करते हैं।

(जो) जो कोई भव्य जीव (जोण्हमुवदेसं उवलद्ध) जैन के उपदेश को पाकर (मोहरागदोसे णिहणदि) मोह राग-द्वेष को नाश करता है (सो) वह (अचिरेण कालेण) अल्पकाल में ही (सव्वदुखमोक्खं पावइ) सर्व दुःखों से छूट जाता है।

विशेष यह है कि जो कोई भव्य जीव एकेन्द्रिय से विकलेन्द्रिय, फिर पंचेन्द्रिय फिर मनुष्य होना इत्यादि दुर्लभपने की परंपरा को समझकर अत्यंत कठिनता से प्राप्त होने वाले जैन तत्त्व के उपदेश को पाकर मोह राग द्वेष से विलक्षण अपने शुद्धात्मा के निश्चल अनुभव रूप निश्चय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से अविनाभूत वीतराग चारित्र रूपी तीक्ष्ण खड्ग को मोह राग द्वेष शत्रुओं के ऊपर पटकता है वही वीर पुरुष परमार्थ रूप अनाकुलता लक्षण को रखने वाले सुख से विलक्षण सब दुःखों का क्षय कर देता है यह अर्थ है।

समीक्षा-आत्म स्वरूप से विपरीत परिणमन करने वाला कर्म मोहनीय कर्म है। दर्शन मोहनीय कर्म जीव के दर्शन, ज्ञान, चारित्र, गुण को विपरीत करता है तो चारित्र मोहनीय कर्म आत्म स्वरूप में रमण करने के लिए बाधक स्वरूप बनता है। इसलिए मोह कर्म से युक्त जीव आत्म स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाता है, जिसके कारण वह विभिन्न दुःखों को प्राप्त करता है, परन्तु जो सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित उपदेश से दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय कर्म को नष्ट कर लेता है, वह भावात्मक मोक्ष को प्राप्त करके समस्त दुःखों को नष्ट करके शाश्वतिक अनंत सुख को प्राप्त कर लेता है।

आचार्यश्री ने मोह क्षय से दुःख क्षय एवं सुख की उपलब्धि कहा है, इसका कारण यह है कि मोह क्षय होने पर अन्य तीन घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं एवं अघातिया कर्म अनंत चतुष्टय को घातने के लिए असमर्थ हो जाते हैं। कहा भी है-

एवं तत्त्वपरिज्ञानाद्विरक्तस्यात्मनो भृशम्।
निरास्रवत्वाच्छिन्नायां नवायां कर्मसन्ततौ।। (1) राजवार्तिकम्
पूर्वार्जितं क्षपयतो यथोक्तैः क्षयहेतुभिः।
संसारबीजकात्स्र्येन मोहनीयं प्रहीयते।। (2)

इस प्रकार तत्त्व परिज्ञान करके अत्यंत विरक्त आत्मा आस्रव रहित होने से नूतन कर्मसंतति के नष्ट हो जाने पर पूर्वोक्त कारणों के द्वारा पूर्वार्जित कर्मों का क्षय कर संसार के बीजभूत मोहनीय कर्म को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है।

ततोऽन्तराज्ञानघ्न-दर्शनाघ्नान्यनन्तरम्।

प्रदीयन्तेऽस्य युगपत्त्रीणि कर्माण्यशेषतः।। (3)

गर्भसूच्यां विनष्टायां यथा तालो विनश्यति।

तथा कर्मक्षयं याति मोहनीये क्षयं गते।। (4)

उसके बाद ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय, ये तीनों कर्म अशेष रूप से एक साथ नष्ट हो जाते हैं। जैसे-गर्भसूची-मस्तकछत्र के (या जड़ के) नष्ट हो जाने पर (नष्ट होते ही) तालवृक्ष नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नष्ट होते ही शेष तीन घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं।

ततः क्षीणचतुः कर्मा प्राप्तोऽथाख्यातसंयमम्।

बीजबन्धननिर्मुक्तः स्नातकः परमेश्वरः।। (5)

इसके बाद चार घातिया कर्मों का नाश कर अथा (यथा) ख्यात संयम को प्राप्त और बीज बंधन (कर्मबीज बंधन) से निर्मुक्त आत्मा स्नातक परमेश्वर बन जाता है।

शेषकर्मफलापेक्षः शुद्धो बुद्धो निरामयः।

सर्वज्ञः सर्वदर्शी न जिनो भवति केवली।। (6)

शेष चार अघातिया कर्मों का उदय रहते हुए भी आत्मा शुद्ध-बुद्ध निरामय सर्वज्ञ, सर्वदर्शी केवली जिन हो जाता है। मोह-क्षय के क्रम का वर्णन उत्तराध्ययन में निम्न प्रकार से किया है-

जहा य अण्डप्पभवा बलागा, अण्डं बलागप्पभवं जहा य।

एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयन्ति।। (6) उत्तराध्ययन

जिस प्रकार अण्डे से बलाका (बगुली) पैदा होती है और बलाका से अण्डा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मोह का जन्म स्थान तृष्णा है और तृष्णा का जन्म स्थान मोह है।

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।

कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं ज जाई मरणं वयन्ति।। (7)

कर्म के बीज राग और द्वेष है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह कर्म जन्म और मरण का मूल है और जन्म एवं मरण ही दुःख है।

दुक्खं हेय जस्स न होई मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।

तण्हा हया जस्स न होइ लाहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।। (8)

उसने दुःख को समाप्त कर दिया है, जिसे मोह नहीं है। उसने मोह को मिटा दिया, जिसे तृष्णा नहीं है। उसने तृष्णा का नाश कर दिया है, जिसे लोभ नहीं है। उसने लोभ को समाप्त कर दिया है, जिसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, अर्थात् जो आकिंचन्य है।

पातञ्जलियोगदर्शन में भी अविद्या (मोह) के अभाव से कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि होती है ये कहा है। यथा-

तद्भावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।। (25)

उक्त अविद्या के नाशरूप अभाव होने से हेय दुःख का हेतु जो बुद्धि के साथ पुरुष का संयोग उसका अभाव होना अर्थात् मोक्ष कहा जाता है और वह होना ही दृशिरूप पुरुष का कैवल्य अर्थात् मोक्ष है।

भेद विज्ञान से मोह क्षय होता है

णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तिणाहिसंबद्धं।

जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि।। (89) (प्र.सा.)

He, who really knows his soul as constitued of knowledge and others as only related with it as substances, effects the destruction of delusion.

आगे सूचित करते हैं कि अपने आत्मा और पर के द्वारा भेद विज्ञान से मोह का क्षय होता है-(जो) कोई (णिच्छयदो) निश्चय के द्वारा भेद ज्ञान को आश्रय करके (जदि) यदि (णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तगणाहिसंबंद्ध जाणदि) अपने ज्ञान-स्वरूप आत्मा को अपने ही शुद्ध चैतन्य द्रव्य से संबंधित तथा अन्य चेतन-

अचेतन पदार्थों को यथायोग्य अपने से भिन्न चेतन-अचेतन द्रव्य से जानता है या अनुभव करता है (सो मोहक्खयं कुणदि) वही, मोह रहित परमानंदमयी एक स्वभाव रूप शुद्धात्मा से विपरीत मोह का क्षय करता है।

जीव तब तक अहित को स्वीकार करता है जब तक अहित का ज्ञान नहीं होता है। अहित का परिज्ञान तब तक नहीं होता है, जब तक जीव मोह अथवा अंधकार रूपी अज्ञान से व्याप्त रहता है। जिस प्रकार अंधकार में सर्प को भी रस्सी (रज्जू) मानकर प्रयोजन वश स्वीकार कर देता है, परन्तु प्रकाश होते ही उसे परिज्ञान हो जाता है कि यह सर्प है। यह मेरे लिए अपकारी है तब वह तत्क्षण उस सर्प को त्याग कर लेता है। इसी प्रकार जीव जब अज्ञान एवं मोह रूपी अंधकार से व्याप्त रहता है तब तक वह पर द्रव्य को स्व द्रव्य मानकर स्वीकार कर लेता है, परन्तु जब स्व द्रव्य को एवं पर द्रव्य को निश्चय से जान लेता है, तब वह मोह को क्षय करता है। यदि ज्ञान होते हुए भी मोह का क्षय नहीं करता है, वह यथार्थ से ज्ञान नहीं है।

चक्खुस्स दंसणस्स य सारो, सप्पादि दोस परिहरणं।
चक्खू होइ णिरत्थ दट्ठूण बिले पंडतस्स।। (12) भ.आश.

चक्षु से देखने का सार सर्प आदि दोषों से दूर रहना है। देखकर भी आगे वर्तमान (विद्यमान) साँप के बिल में गिरने वाले मनुष्य की आँख व्यर्थ है।

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी णवं च णादियदि।
णाणेण कुणदि चरणं तम्हा णाणे हवे विणओ।। (मूलाचार)

ज्ञानी जानता है, ज्ञानी छोड़ता है और ज्ञानी नवीन कर्म को नहीं ग्रहण करता है, ज्ञान से चारित्र का पालन करता है, इसलिये ज्ञान में विनय होवें। जिस हेतु से ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा जानता है। गति अर्थ वाले धातु ज्ञान, गमन और प्राप्ति अर्थ वाले होते हैं ऐसा व्याकरण का नियम है। अतः यहाँ 'गच्छति' का जानना और प्राप्त करना अर्थ किया है, जिससे ज्ञानी पाप की वंचना-परिहार करता है और नवीन कर्मों से नहीं बंधता है तथा ज्ञान से चारित्र को धारण करता है इसलिये ज्ञान में विनय करना चाहिए।

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।
णाणेण कुणदि णायं णाणं णाणविणीदो हवदि एसो।। (368) मूलाचार

ज्ञान शिक्षित करता है, ज्ञान गुणी बनाता है, ज्ञान पर को उपदेश देता है, ज्ञान से न्याय किया जाता है, इस प्रकार यह जो करता है वह ज्ञान से विनयी होता है।

ज्ञान शिक्षते विद्योपादानं करोति ज्ञान गुणयति परिवर्तनं करोति। ज्ञानं परस्मै उपदिशति प्रतिपादयति। ज्ञानेन करोति न्यायमुष्ठानं य एवं करोति ज्ञान विनीतो भवत्येष इति।

ज्ञान विद्या को प्राप्त करता है। ज्ञान अवगुण को गुण रूप से परिवर्तित करता है। ज्ञान पर को उपदेश का प्रतिपादन करता है। ज्ञान से न्याय-सत्प्रवृत्ति करता है। जो ऐसा करता है वह ज्ञान विनीत होता है।

न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानपूर्वकं लभते।

ज्ञानान्तर मुक्तं चारित्राराधनं तस्मात्।। (38) पुरुषार्थ

अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं होता है। इसलिए सम्यग्ज्ञान के अनंतर चारित्राराधना का कथन किया गया है।

''णाणम्मि असंतमि चरित्तं वि न विज्जए।'' व्यवहार भाष्य

जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ चारित्र भी नहीं रहता।

''सव्व जगुज्जोलयकरं नाणं, नाणेण नज्जए चरणं।।''

ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही मनुष्य को कर्त्तव्य का बोध होता है।

''सुमस्स आराहणयाए णं अन्नाण खवेई।'' उत्तराध्ययन

ज्ञान की आराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करता है।

''विन्नाणेणं समगम्म धम्मसाहणमिच्छिउं।'' उत्तराध्ययन

विज्ञान के द्वारा धर्म के साधनों का उचित निर्णय करना चाहिए।

पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।

अण्णाणी किं काही किंवा वाहिइ छेय पावगँ।। दशवैकालिक

पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिए उसके उपरांत सम्यग्ज्ञान के अनुसार दया पालन करना चाहिए अर्थात् सम्यग्चारित्र पालन करना चाहिए। इसी प्रकार चारित्र संपूर्ण संयमियों को आचरण करने योग्य है। अज्ञानी क्या कभी इस प्रकार श्रेय (आचरणीय) पापात्मक अश्रेय जान सकता है अर्थात् बिना ज्ञान करणीय-अकरणीय

का विवेक नहीं होने से अज्ञानी यथार्थ चारित्र पालन नहीं कर सकता है। इसलिए कहा है-

''बिन जानेते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।''

सम्यग्ज्ञान की महानता का वर्णन करते हुए अमृत कलश में बताते है कि-

भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।। (7)

जो अनंतानंत सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। जो बंधे हुए है वे भेद विज्ञान के अभाव के कारण बंधे हुए हैं। इसलिए कविवर दौलतराम जी ने छहढाला में कहा है-

ज्ञान समान न आन जगत् में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण।। (चतुर्थढाल)

भेद विज्ञान, जैनागम से होता है

तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु।
अभिगच्छदु इच्छदि णिम्मोहिं जदि अप्पणो अप्पा।। (90) (प्र.सा.)

तथाहि-यदिदं मम चैतन्यं स्वपरप्रकाशकं तेनाहं कर्त्ता शुद्धज्ञानदर्शनभावं स्वकीय-मात्मानं जानामि, परं च पुद्गलादिपंचद्रव्यरूपं शेषजीवान्तरं च पररूपेण जानामि, ततः कारणादेकापवरक प्रबोधितानेकप्रदीप्रकाशेष्वेव संभूयावस्थितेष्वपि सर्वद्रव्येषु मम सहजशुद्धचिदानन्दैकस्वभावस्य केनापि सह मोहो नास्तीत्यभिप्रायः।।

आगे पूर्व सूत्र में जिस स्व-पर के भेद विज्ञान की बात कही है, वह भेद-विज्ञान जिन आगम के द्वारा सिद्ध हो सकता है, ऐसा कहते हैं-

(तम्हा) क्योंकि पहले यह कह चुके है कि स्व-पर के भेद विज्ञान से मोह का क्षय होता है इसलिये (जिणमग्गादो) जिन आगम (दव्वेसु) शुद्धात्मा आदि छः द्रव्यों के मध्य में से (गुणैः) उनके उन गुणों के द्वारा (आदं परं च) आत्मा की और परद्रव्य को (अहिगच्छदु) जाने (जदि) यदि (अप्पा) आत्मा (अप्पणो) अपने भीतर (णिम्मोहं) मोह रहित भाव को (इच्छदि) चाहता है।

विशेष यह है कि जो यह मेरा चैतन्य भाव अपने को और पर को प्रकाशमान

करने वाला है उसी की सहायता करके मैं शुद्ध ज्ञानदर्शन भाव को अपना आत्मा रूप जानता हूँ तथा पर जो पुद्गल आदि पाँच द्रव्य हैं तथा अपने जीव के सिवाय अन्य सर्व जीव हैं, उन सबको पररूप से जानता हूँ। इस कारण से जैसे एक घर में जलते हुए अनेक दीपकों का प्रकाश हैं किन्तु सबका प्रकाश अलग-अलग है। इसी ही तरह सर्व द्रव्यों के भीतर में मेरा सहज शुद्ध चिदानंदमय एक स्वभाव अलग है उसका किसी के साथ मोह नहीं है, यह अभिप्राय है।

मोह का क्षय करने के प्रति अभिमुख बुध-जन इस जगत् में निश्चय से आगम में कथित अनंत गुणों में से किन्हीं गुणों के द्वारा-जो गुण अन्य (द्रव्य) के साथ योग (संबंध) रहित होने से असाधरणता को धारण करके विशेषत्व को प्राप्त हुए हैं, उनके द्वारा अनंत द्रव्य परंपरा में स्व-पर के विवेक को प्राप्त करो (मोह का क्षय करने के इच्छुक पंडितजन आगम कथित अनंत गुणों में असाधारण लक्षणभूत गुणों के अनंत द्रव्य परंपरा में ''यह स्वद्रव्य है यह परद्रव्य है'' ऐसा विवेक करो), जो कि इस प्रकार है-

सत् और अकारण होने से स्वतः सिद्ध, अन्तर्मुख और बहिर्मुख प्रकाश वाला होने से स्व-पर का ज्ञायक, ऐसा जो यह मेरे साथ संबंध वाला मेरा चैतन्य है तथा जो (चैतन्य) समान-जातीय अथवा असमान जातीय अन्य द्रव्य को छोड़कर मेरे आत्मा में ही वर्तता है उस (चैतन्य) के द्वारा मैं अपने आत्मा को सकल त्रिकाल में ध्रुवत्व का धारक द्रव्य जानता हूँ, इस प्रकार पृथक् रूप से वर्तने वाले स्वलक्षणों के द्वारा जो अन्य द्रव्य को छोड़कर उसी द्रव्य में वर्तते हैं उनके द्वारा-आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और अन्य आत्मा को सकल त्रिकाल में ध्रुवत्व-धारक द्रव्य के रूप में निश्चित करता हूँ (जैसे चैतन्य लक्षण के द्वारा आत्मा को ध्रुव द्रव्य के रूप में जाना, उसी प्रकार अवगाह हेतुत्व, गति हेतुत्व इत्यादि लक्षणों से जो कि स्वलक्षणभूत द्रव्य के अतिरिक्त अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते उनके द्वारा आकाश धर्मास्तिकाय इत्यादि को भिन्न-भिन्न ध्रुव द्रव्यों के रूप में जानता हूँ) इसलिए न मैं आकाश हूँ, न धर्म हूँ, न अधर्म हूँ, न काल हूँ, न पुद्गल हूँ और न आत्मान्तर (अन्य आत्मा) हूँ क्योंकि मकान के एक ही कमरे में जलाये गये अनेक दीपकों के प्रकाश की भाँति, इकट्ठे (एक क्षेत्रावगाही) रहने वाले द्रव्यों में भी मेरा चैतन्य, निजस्वरूप से अच्युत ही रहता

हुआ, मुझको पृथक् जानता (प्रगट करता) है। इस प्रकार निश्चित किया है। स्व-पर का विवेक जिसने-ऐसे आत्मा के वास्तव में विकार को उत्पन्न करने वाले मोहांकुर का प्रादुर्भाव नहीं होता।

समीक्षा-अनादि काल से जीव मोह से पराभूत होने के कारण स्व-पर भेद-विज्ञान से रहित होता है, इसीलिये वह स्व को स्वरूप में एवं पर को पर रूप में नहीं जानता है, नहीं मानता है, नहीं आचरण करता है। इस भेद ज्ञान की प्रक्रिया के लिए जिसने इस प्रक्रिया को पूर्ण रूप से करके सर्वज्ञ हितोपदेशी बना है, उसके उपदेश की आवश्यकता ही नहीं है परन्तु अनिवार्यता भी हैं। जिस प्रकार स्वयं के मुख दर्शन के लिए दर्पण की आवश्यकता है, उसी प्रकार स्व-स्वरूप के दर्शन के लिए जिनागम रूपी दर्पण की आवश्यकता है।

ऑक्सफैम की 'द इनइक्वलिटी वायरस' रिपोर्ट-महामारी के दौरान असमानता और बढ़ी

देश के 100 अमीरों ने महामारी के 9 महीने में जितना कमाया उसे गरीबों में बांट दें तो हर व्यक्ति को 94 हजार रुपए मिल जाएंगे

अमीरों ने नुकसान की भरपाई 9 महीने में कर ली, जबकि गरीबों को ऐसा करने में 10 साल लगेंगे

दुनिया में कोरोना संक्रमितों का आंकड़ा 10 करोड़ के करीब है, जबकि 21 लाख से ज्यादा लोगों की मौत हो चुकी है। वही मानव जीवन पर 100 साल के सबसे बड़े संकट में भी अमीरों की संपत्ति बेतहाशा बढ़ी है। महामारी के 9 महीनों में देश के शीर्ष 100 अमीरों की कमाई करीब 13 लाख करोड़ रुपए बढ़ी। अगर इसे देश के 13.8 करोड़ गरीबों में बांटा जाए, तो हर व्यक्ति को करीब 94,000 रुपए मिलेंगे।

यह खुलासा ऑक्सफैम की 'द इनइक्वलिटी वायरस' नाम की रिपोर्ट में हुआ है। इसके मुताबिक महामारी में आर्थिक, सामाजिक असमानता भी बढ़ी है। रिपोर्ट के मुताबिक 18 मार्च से 31 दिसंबर तक दुनिया में गरीबों की संख्या 50 करोड़ बढ़ी है। जबकि अरबपतियों की संपत्ति 284 लाख करोड़ रुपए बढ़ गई है। रिपोर्ट में सुपर रिच लोगों पर ज्यादा टैक्स लगाने की सिफारिश की गई है। इसके मुताबिक

अगर देश के 954 अमीर परिवारों पर 4% संपत्ति कर लगा जाए, तो देश की जीडीपी 1% बढ़ सकती है।

अंबानी की 1 घंटे की कमाई इतनी, कि आम आदमी को 10 हजार साल लगेंगे

रिलायंस के मुकेश अंबानी ने एक घंटे में जितनी कमाई की, उसमें अकुशल कर्मचारी को 10 हजार साल लग जाएंगे। मार्च में अंबानी की संपत्ति 2.7 लाख करोड़ रुपए थी। अक्टूबर में यह 5.7 लाख करोड़ हो गई। यानी हर घंटे 69 करोड़ बढ़ी। वहीं असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी 178 रुपए है। ऐसे में 69 करोड़ कमाने में 10 हजार साल लगेगें।

10 अमीरों की कमाई में धरती के हर व्यक्ति को फ्री वैक्सीन लगा सकते हैं

दुनिया के 10 सबसे अमीरों की संपत्ति जितनी बढ़ी, उतने में धरती के हर व्यक्ति को कोरोना की फ्री वैक्सीन लगा सकते हैं। वहीं भारत के शीर्ष 11 अमीरों ने जितना पैसा कमाया, उसमें मनरेगा स्कीम या स्वास्थ्य मंत्रालय का 10-10 साल का खर्च पूरा किया जा सकता है।

9.2 करोड़ नौकरियां गई, अप्रैल 2020 में हर घंटे 1.70 लाख लोग बेरोजगार हुए

सबसे ज्यादा नुकसान अकुशल श्रमिकों को हुआ। देश के 12.2 करोड़ श्रमिकों में से 9.2 करोड़ यानी करीब 75% की नौकरी गंवानी पड़ी। अप्रैल 2020 में तो हर घंटे 1.70 लाख लोगों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

लेसन्स फ्रॉम ग्रेट थिंकर्स

जन्म-640 बीसी निधन-558 बीसी

जीने के साथ सीखते भी जाना चाहिए

-सोलोन

राजनेता, व्यवस्थापक व कवि थे। इन्हें राजनीतिक, आर्थिक व नैतिक पतन के खिलाफ कानून बनाने के प्रयास के लिए याद किया जाता है।

1. कानून मकड़ जाल की तरह होता है। जब कोई कमजोर और बीमार जीव फंसता है तो मारा जाता है, जबकि शक्तिशाली और बलवान जाल तोड़कर भाग जाता है।

2. जिसे आज्ञा का पालन करना आता है, वो आदेश भी दे सकता है।

3. जीने के साथ लगातार सीखते भी जाना चाहिए। इस भरोसे पर नहीं रहना चाहिए कि उम्र अपने साथ बुद्धि भी लेकर आएगी।

4. आप जो भी करते हैं, उसमें अंत सबसे महत्त्वपूर्ण है।

5. बिना बुद्धि और समझ के अमीर लोग, सुनहरी ऊन वाली भेड़ों की तरह हैं।

6. कसम से ज्यादा भरोसा चरित्र की कुलीनता पर करना चाहिए।

7. न्याय देर से मिलेगा, लेकिन मिलेगा जरूर।

8. दोस्त की अकेले में निंदा और भीड़ में सराहना कीजिए।

9. किसी भी कार्य को करते हुए, वजह को मार्गदर्शक बनाइए।

10. पैसा कमाने की चाह होनी चाहिए, लेकिन गलत तरीके से नहीं।

11. यदि चीजें सही चल रही हैं, तभी धर्म और कानून से कुछ फायदा है, वरना इनके होने से कोई फायदा नहीं।

मम-शत्रु-मित्र मैं ही हूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:-पायोजी मैंने....)

जाना है मैंने मेरे शत्रु व मित्र.....2
मेरे शत्रु व मित्र मैं हूँ, भले कोई बाह्य निमित्त। (ध्रुव)
मेरा हित जब मैं करता हूँ, तब मैं होता हूँ स्व-मित्र।
मम अहित जब करता हूँ, जब मैं बनूँ स्व-अमित्र।। (1)
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, जब मैं करूँ आत्माविश्वास।
इससे युक्त जब परहित-विश्व हित, चाहूँ तब मैं स्व का मित्र।। (2)
इस हेतु रागद्वेष मोह त्यागूँ, तथाहि ईर्ष्या तृष्णा घृणा द्वन्द्व।
दबाव प्रलोभन भय विद्वेष, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व शून्य।। (3)
समता शान्ति आत्मविशुद्धि व उत्तमक्षमादि दशधा धर्म।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ, अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य सह।। (4)
इससे विपरीत जब होते भाव, व्यवहार कथन तब मैं स्व अमित्र।
पर अहित भले करूँ या न करूँ, स्व का करूँ अवश्य ही अहित।। (5)
आत्महित सहित परहित करूँ, आत्महित मुक्त न पर हित।
बुझा हुआ दीपक न बन सकता पर प्रकाशी तथाहि हित-अहित।। (6)
मैं हूँ आत्मा स्वयंभू स्वतन्त्र मम, ही मम कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता।
आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष हेतु भी निश्चय से कर्त्ता भोक्ता।। (7)
मेरा ये स्वभाव जो जाने माने आचरे वे न मम शत्रु या मित्र।
मम ये स्वभाव जो न जाने-माने-आचरे वे न मम शत्रु या मित्र।। (8)

क्षीयन्तेऽत्रैव रागा धास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिचन्न मे शत्रुर्न च प्रियः।। (25) स.तं.
मामपश्यन्नय लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।। (26)

आगम-अनुभव कर्म सिद्धान्त, मनोविज्ञान से 'कनक' जाने ये सत्य।
कुज्ञानी मोही इसे न जाने अतः उनके भाव व्यवहार कथन असत्य।। (9)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा- 01/01/2021 रात्रि-8.47

संदर्भ-

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।। (8) द्रव्य.

According to Vyavahara Naya is the dear performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the dear perfomer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the dear) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्त्तृत्वभावों का वर्णन किया गया है।

व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी कर्त्ता है। निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृति, अहं प्रवृति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ तो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिणमन है, उसी का कर्तृत्वपना यहाँ पर कहा गया है न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। (18)

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।

मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदाराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार मांस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्‌गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।

ण दु तेसिं खलु कत्ता व विणा भूदा दु कत्तारं।। (60)

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादिभावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्यकर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है, यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। (121)

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब इस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है। ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका

कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्यकर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।। (86)
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।। (87)

यद्यपि जीव के रागद्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीव कर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किंतु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपुर्यक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।
पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। (88)

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है। व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के रागद्वेष निमित्त पाकर कर्मपरमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म उत्पन्न होते हैं परंतु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो
जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है। यदि एकान्ततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्मबंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं

अनुभव विरुद्ध है। निश्चय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुन्दकुन्दाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।।

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयो' के विचारों को न जानता हुआ शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है-द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुन्दकुन्द स्वामी बताते हैं-

''निश्चयेन जीवकर्मणाश्चैककर्तत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुद्धयत इत्यत्रोक्तम्।''

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।
काले विभुज्जमाणा सहुदुक्खं दिंति भुंजन्ति।। (67)

आगे शिष्य ने जो पूर्वपक्ष किया था कि बिना किए हुए कर्मों का फल जीव किस तरह भोगता है उसी का उत्तर नय विभाग से जीव फल को भोगता है ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्‌गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणायें जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती है, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों को मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एकस्वरूपभाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव रागद्वेष-मोहादि

रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्याचारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानन्दमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। (69)

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है। इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्त्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।
रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।। (988)

संसार में जो जो जीव जिस जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब रागद्वेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।। (9) द्रव्य. सं.

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery as fruits of Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चयनय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धांतानुसार-

To every action, there is an equal and opposite reaction.

अर्थात् जहाँ क्रिया है, वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया भी होती है एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा और उसमें बबूल की ही फलियाँ लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊगेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिए कहते है **"As you sow, sow you reap"** अर्थात् जैसा बोयेगें वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है।

यत्प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्माशुभं व शुभं।
यद्दैव यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम्।।

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पाप कर्म का एवं शुभभाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है-
कर्म प्रधान विश्व करिराखा।
जो जस करहि फलहि तस चाखा।।
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थक तदां।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा किए गए शुभ एवं अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जाएगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन्।
विचार यन्नेवमनन्य मानसः परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (3)

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पाँचों इन्द्रियों के विषयों में उत्पन्न सुख एवं दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अंतरंग में सुख तथा सुख को उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म रूप पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष तथा विषाद रूप सुख-दुःख को भोगता है और शुद्ध निश्चयनय से रत्नत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनंद रूप सुखामृत को भोगता है।

क्या सचमुच में यही विकास है?

–सचिन कुमार जैन

सामाजिक शोधकर्ता, विश्लेषक और अशोका फैलो

हमारे आसपास एक शब्द की बड़ी गूंज सुनाई दे रही है और वह शब्द है 'विकास'। दूसरी तरफ तमाम रिपोर्ट्र्स आ रही हैं जो सोचने पर विवश करती हैं कि क्या यही विकास है? यह सभी के लिए है? कई सवाल घिर आते हैं, मसलन एक तरफ तो बम्पर उत्पादन से गोदामों में इतना अनाज भरा हुआ है कि साल भर पूरे देश का पेट आराम से भर सकते हैं, वहीं दूसरी तरफ पोषण व स्वास्थ्य रिपोर्ट में पोषण स्तर पहले से बुरा पाते हैं, मानव विकास सूचकांक में नीचे खिसक जाते हैं तो लैंगिक समानता के मानकों पर 112 वें नंबर पर पहुंच जाते हैं। ऐसे में क्यों न कुछ पल ठहरकर इस 'विकास' शब्द के बारे में सोच लिया जाना चाहिए?

'इशोपनिषद' में बराबरी से और सबके लिए विकास की अवधारणाओं की विशुद्ध भारतीय दृष्टि मिलती है, जिसका जिक्र महात्मा गांधी 'मेरे सपनों का भारत' में भी करते हैं। यह अलग बात है कि इसे ठीक प्रभाव से अपनाया नहीं जा सका। अब जबकि 'धर्म' शब्द बार-बार सुनाई पड़ता है, तब भी 'बराबरी के विकास' का विमर्श कहीं गायब लगता है।

स्वास्थ्य के मोर्चे पर हालात

हाल ही में राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की पांचवीं रिपोर्ट में देश के 22 राज्यों के स्वास्थ्य और पोषण मानक सामने आए हैं। कुपोषण भारत का एक राष्ट्रीय शर्म का विषय रहा है। रिपोर्ट के विश्लेषण से पता चलता है कि पिछले

सर्वेक्षण की तुलना में हमने कोई खास प्रगति नहीं की है, बल्कि कई राज्यों में स्थिति पहले से ज्यादा ख़राब हो गई है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या आर्थिक विकास या आधारभूत संरचनाओं जैसे सड़क, भवन बनवाने को ही विकास माना जाना चाहिए, बिना मानवीय और पर्यावरणीय मानकों के क्या हम विकास शब्द से न्याय कर पा रहे हैं? ताजा आंकड़ों को पिछले सर्वेक्षण से मिलाकर देखें तो 22 में से केवल एक राज्य नगालैंड है जिसने अपने यहां हर साल कम वजन के बच्चों में 2.6 प्रतिशत की कमी की है, जम्मू कश्मीर और हिमाचल प्रदेश ऐसे राज्य हैं जहां 1.1 प्रतिशत की दर से कुपोषण कम हुआ है, बाकी सारे राज्य शून्य प्रतिशत से कम की दर पर अटके हुए हैं। कुपोषण की गंभीर स्थिति भी चार राज्यों से बढ़कर 14 राज्यों में हो गई है। 13 राज्य ऐसे हैं जहां गंभीर कुपोषण (वास्टिंग) घटने की जगह बढ़ गया है।

20 करोड़ लोग मनोरोगों के शिकार

भारत में अब लगभग बीस करोड़ से भी अधिक लोग मानसिक रोगों से ग्रसित हैं और यह नई सामाजिक स्वास्थ्य महामारी का रूप ले रही है। इंडियन जर्नल ऑफ साइक्रेटी के मुताबिक इससे बचने के लिए 'मेंटल हेल्थ केयर एक्ट-2017' लागू करने के लिए 94,073 करोड़ रुपए की जरूरत है। लेकिन वित्त वर्ष 2020 में केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए केवल पचास करोड़ रुपए का प्रावधान किया था।

मानव विकास सूचकांक में फिसले

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा जारी मानव विकास रिपोर्ट 2020 के अनुसार मानव विकास सूचकांकों में भारत 129वें स्थान से गिरकर 131वें स्थान पर पहुंच गया है। ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स दुनिया में लैंगिक आधार पर समानता व सम्मान के नजरिए से देशों की रैंकिंग प्रस्तुत करता है। ताजा रिपोर्ट में भारत का 153 देशों में 112वां स्थान है। एक भेदभाव आधारित दुनिया विकास का आदर्श नहीं बन सकती है।

दुनिया में भारत किस नंबर पर?

94 वें नंबर- वैश्विक भुखमरी सूचकांक में

131 वें नंबर- मानव विकास सूचकांक में
168 वां नंबर- समग्र पर्यावरण प्रदर्शन
142 वां नंबर- विश्व प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक
139 वां नंबर- स्वच्छता और पेयजल सूचकांक
148 वां नंबर- जैव विविधता
145 वां नंबर- प्रदूषक तत्वों का उत्सर्जन सूचकांक

(स्रोत : यूएनडीपी, यूएनईपी, येल विश्वविद्यालय-ईपीआई 2020 की रिपोर्ट्स)

नागरिकों की सम्पन्नता के मामले में हमारी अर्थव्यवस्था 148वें स्थान पर

स्टेटिस्टिक टाइम्स में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के हवाले से बताया गया है कि वर्ष 2020 की स्थिति में सात सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएं हैं-अमेरिका (20.8 लाख डॉलर), चीन (15.22 लाख डॉलर), जापान (5.1 लाख डॉलर), जर्मनी (3.78 लाख डॉलर), ब्रिटेन (2.64 लाख डॉलर), भारत (2.59 लाख डॉलर) और फ्रांस (2.55 लाख डॉलर)। लेकिन प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर पता चलता है कि वास्तव में नागरिकों की सम्पन्नता के मामले में इन देशों के अलावा कई ऐसे देश हैं, जो इस सूची में नहीं दिखते लेकिन कहीं ज्यादा संपन्न हैं, जैसे मकाओ, लक्जमबर्ग, सिंगापुर, आयरलैंड, स्विट्ज़रलैंड आदि। इसका मतलब यह है कि भारत की 1.35 अरब जनसंख्या के कारण सकल घरेलू उत्पाद के मामले में भले ही देश छठी अर्थव्यवस्था दिखाई देता है, लेकिन हमारी प्रति व्यक्ति जीडीपी तो महज़ 1877 डॉलर प्रति व्यक्ति है। इस तरह नागरिक सम्पन्नता के मान से भारत की अर्थव्यवस्था 148वें स्थान पर आती है, छठे स्थान पर नहीं।

पर्यावरण की भी अनदेखी

पर्यावरणीय पक्षों को देखे बिना विकास को किस तरह से देखा जाएगा? 'ग्लोबल एलांयस आन हेल्थ एंड पॉल्युशन' के मुताबिक विश्व में 83 लाख लोगों की प्रदूषण के कारण मृत्यु हुई है। इनमें से 23 लाख लोग भारत के हैं। यह दुनिया में सबसे ज्यादा है। स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2020 के मुताबिक दुनियाभर में 2019 में 67 लाख लोगों की मृत्यु वायु प्रदूषण के कारण हुई। इनमें 18 लाख चीन में और 16 लाख भारत में दर्ज हुई। ऐसे में विकास की बयार में पर्यावरण कहां जाकर ठहरेगा?

इसका क्या कोई विकल्प है?

महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था कि 'भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं।' इसे विकास के संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए। हमारा विकास केवल संसाधनों के उलीचे जाने से नहीं होना चाहिए। महात्मा गांधी की यह बात भी याद आती है कि 'यह धरती सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लेकिन एक भी व्यक्ति के लालच को पूरा नहीं कर सकती।' सोचना चाहिए कि क्या विकास का कोई ऐसा तरीका हो सकता है, जहां पर मानवीय विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। उसमें समानता का, पर्यावरण का और स्थायित्व का ख्याल रखा जाए। गांधी कहते हैं, 'भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्तरंजित मार्ग पर नहीं है, जिस पर चलते-चलते पश्चिम खुद थक गया है। भारत का भविष्य सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है।' जहां जमीन कम हो और लोग ज्यादा, वहां विकास के नजरिये में फर्क तो होना चाहिए। गांधी यह भी कहते हैं, 'हम सच्चा उद्योग करें तो हिंदुस्तान के छोटे-छोटे उद्योगों से करोड़ों रुपयों का धन पैदा कर सकते हैं। उसमें पैसे की भी विशेष आवश्यकता नहीं है, जरूरत है तो लोगों की मेहनत की।'

लैंसेट की 2019 रिपोर्ट: वायु प्रदूषण से 18 फीसदी मौतें

प्रदूषित हवा घोंट रही जीडीपी का गला

2.6 लाख करोड़ की आर्थिक क्षति

जीडीपी 1.4 प्रतिशत घटी

प्रदूषित हवा हमारी सेहत के साथ 'आर्थिक सेहत' को भी बिगाड़ रही है। एक साल में 17 लाख मौत वायु प्रदूषण की वजह से हुई हैं, जो कुल मौतों का 18 फीसदी है। दूसरी ओर, इससे देश का सकल घेरलू उत्पाद (जीडीपी) को भी 1.4 फीसदी का नुकसान हुआ है जो 2 लाख 60 हजार करोड़ रुपए के बराबर हैं।

यदि समय रहते वायु प्रदूषण पर नियंत्रण नहीं पाया गया तो 2024 तक 20 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था होने के लक्ष्य प्रभावित हो सकता है। लैंसेट प्लेनेटरी हैल्थ में इंडिया स्टेट-लेवल डिजीज बर्डेन इनिशिएटिव के नाम से प्रकाशित पेपर में इसका जिक्र किया गया है।

1990 से 2019 के बीच वायु प्रदूषण से 115% ज्यादा मौतें

29 वर्ष में मृत्यु दर में 64% की कमी

1990 से 2019 तक 29 सालों में मृत्यु दर में 64 फीसदी की कमी आई है। लेकिन बाहरी परिवेश के वायु प्रदूषण से मृत्यु दर में 115 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

इलाज खर्च से 0.4% जीडीपी प्रभावित

40% फेफड़े संबंधी रोग   60% इस्केमिक डिजीज

वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियों के इलाज पर खर्च से जीडीपी 0.4% प्रभावित हुई। आइसीएमआर डीजी प्रो.बलराम भार्गव ने कहा, वायु प्रदूषण के कारण 40% रोग फेफड़ों संबंधी और 60% इस्केमिक डिजीज संबंधित मौतें हुई हैं।

इनका खतरा सबसे अधिक

हार्ट स्ट्रोक, हार्ट अटैक, डायबिटीज, फेफड़े की बीमारियां, फेफड़े का कैंसर

यूपी को जीडीपी में 2.2% का घाटा

रिपोर्ट के अनुसार, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में सबसे अधिक आर्थिक नुकसान उत्तर मध्यम भारत के राज्यों में रहा है। इसमें उत्तर प्रदेश को 2.2% तो बिहार को 2% का जीडीपी में नुकसान हुआ है।

स्वस्थ हवा के मानक

शुद्ध हवा में 78% नाइट्रोजन, 21% ऑक्सीजन, 0.03% कार्बन डाईऑक्साइड, 0.97% हाइड्रोजन, हीलियम, ऑर्गन, निऑन, क्रिप्टन, जेनान, ओजोन व जल वाष्प होती हैं। इनकी मात्रा में बदलाव होने पर ये सेहत के लिए हानिकारक है।

क्यों इतना खतरनाक

बीमारियों से मौतों में तीसरा सबसे खतरनाक कारण

5.3 साल का जीवन-प्रत्याशा में कमी प्रदूषित हवा से

77 फीसदी जनसंख्या प्रदूषित वातावरण के बीच रहती है

50 लाख से अधिक लोगों की मौत होती है पूरी दुनिया में

16.7 लाख से ज्यादा लोगों की मौत 2018 में

21% मौतें नवजातों की वायु प्रदूषण से होती

इनडोर प्रदूषण में 64% कमी और आउटडोर में 115% इजाफा हुआ

पिछले साल वायु प्रदूषण ने ली 17 लाख जानें; देश पर दो लाख 60 हजार करोड़ रुपए का पड़ा आर्थिक बोझ

पिछले एक साल में वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियों की वजह से करीब 17 लाख लोगों की मौत हो गई। इस दौरान मरीजों के इलाज और अन्य खर्चों की वजह से देश पर एक साल में दो लाख 60 हजार करोड़ का आर्थिक बोझ पड़ा। यदि हालात में सुधार नहीं हुआ तो 2024 तक भारत की पांच लाख करोड़ की अर्थव्यवस्था को धक्का पहुंच सकता है। वायु प्रदूषण की वजह से जो बीमारियां हो रही हैं और लोगों की मौत हो रही है उससे देश की आर्थिक व्यवस्था पर गंभीर असर पड़ रहा है। लैंसेट जर्नल में प्रकाशित इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) की रिसर्च स्टडी में यह बात सामने आई है। इसमें कहा गया है कि इनडोर प्रदूषण में 64% की कमी हुई। लेकिन आउटडोर पॉल्यूशन में 115% का इजाफा हुआ है। वातावरण में पार्टिकुलेट मैटर ज्यादा होने की वजह से जो बीमारी हुई है, उससे करीब 10 लाख मौत, हाउसहोल्ड पॉल्यूशन की वजह से बीमारी होने से करीब 6 लाख मौत ओजोन में पॉल्यूशन होने की वजह से जो बीमारी हुई उससे करीब एक लाख मौत हुई है। वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा मौत क्रॉनिक ऑस्ट्रक्टिव पल्मोनरी बीमारी से हुई। इसके बाद 29.2% लोग हृदय संबंधी बीमारी से, 16.2% स्ट्रोक, 11.2% लोअर रेस्पेरेट्री, 5.2% मरीज नवजात, 3.8% मधुमेह और 1.7% मरीजों की मौत फेफड़े के कैंसर होने की वजह से हो गई। देश में 10 लाख की आबादी पर 53.5 लोग वायु प्रदूषण की वजह से किसी न किसी बीमारी से पीड़ित है।

आर्थिक बोझ में मप्र पहले स्थान पर; छत्तीसगढ़ दूसरे परे

मध्य प्रदेश	13790	छत्तीसगढ़	4830
राजस्थान	16058	बिहार	10871
झारखंड	3801	गुजरात	20020

पंजाब	8043	दिल्ली	8449
हरियाण	10962	महाराष्ट्र	27825

(नोटः आर्थिक बोझ करोड़ रुपए में है।)

संपूर्ण समाज के लिए खतरा है पशु क्रूरता

-मेनका गांधी, लोकसभा सदस्य

देश के कुछ न्यायाधीश अब पशुओं के साथ होने वाली क्रूरता को गंभीरता से लेने लगे हैं और कार्यवाही करने लगे हैं। पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट के न्यायाधीश राजीव शर्मा ने पशु क्रूरता के मामलों में कुछ बेहतरीन फैसले दिए हैं। विशेष विषयों पर प्रशिक्षण के लिए भोपाल आने वाले सभी न्यायाधीशों को यह सिखाना चाहिए। जस्टिस शर्मा को प्रकृति एवं पर्यावरण संबंधी मामलों के त्वरित निस्तारण के लिए जाना जाता है। जस्टिस शर्मा ने कुछ ऐतिहासिक फैसले सुनाए हैं, जैसे गंगा और जंतु जगत को जीवित इकाई माना। जस्टिस शर्मा ने कुछ और भी अहम फैसले दिए हैं, जैसे एफआइआर में जाति न लिखी जाए, किसानों द्वारा आत्महत्या रोकने संबंधी दिशा- निर्देश जारी किए, मृत्युदंड के दोषी कैदियों को कालकोठरी में डालने की सदियों पुरानी परंपरा खत्म की। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी बहुत से सुधारवादी फैसले भी दिए। इसी तरह मुख्य न्यायाधीश संजय करोल और न्यायाधीश अरिंधम लोढ़ा ने त्रिपुरा में मंदिरों में पशु बलि पर प्रतिबंध लगा दिया। न्यायिक सेवा के ही पूर्व अधिकारी सुभाष भट्टाचारजी ने गत वर्ष इस संबंध में एक जनहित याचिका दायर की थी। यह फैसला स्वागतयोग्य है क्योंकि यह प्रथा केवल पुजारियों के लालच और वित्तीय लाभ के लिए बनाई गई है। फैसले में यह संदेश भी दिया गया कि सभ्य समाज में संस्कृति ' के नाम पर ऐसे बर्बर कृत्यों की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। सवा पांच सौ साल के इतिहास में पहली बार अगरतला के दुर्गाबाड़ी मंदिर में कोई बलि न दी जाए, इसकी राह इस फैसले ने ही दिखाई। आज दुनिया भर में न्यायपालिकाएं पशु क्रूरता पर संज्ञान भी ले रही हैं और विधायिका के कार्य में वहां-वहां हस्तक्षेप भी कर रही हैं, जहां-जहां वह वोट बैंक की राजनीति के चलते उदासीन हो जाती है। 19 अगस्त 2019 को अमरीका की नेशनल काउंसिल ऑफ जुवेनाइल एंड फैमिली कोर्ट जजेस (एनसीजेएफसीजे) ने पशु क्रूरता व हिंसा को लेकर एक संकल्प पत्र जारी

किया। इसके अनुसार, 'अनुभव आधारित शोध दर्शाते हैं कि पशु क्रूरता और आपसी हिंसा में कोई न कोई संबंध अवश्य होता है। जीवन साथी , बच्चों से या बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार इसी श्रेणी में आता है। जिन परिवारों में पशुओं के साथ क्रूरता हुई है, वहां आपस में हिंसा की आशंका होती है। एनसीजेएफसीजे सभी पक्षों और पीड़ितों के अधिकार सुरक्षित रखने और परिवारों व समुदायों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। पशु क्रूरता हिंसक अपराध है और अतीत अथवा भविष्य की हिंसक घटनाओं का सूचक है।'

शोधकर्ताओं ने पाया कि 1988 से 2012 के बीच अमरीका के स्कूलों में गोलीबारी की घटनाओं में लिप्त आरोपियों का पशु क्रूरता संबंधी इतिहास रहा है। एनसीजेएफसीजे ने इस बात को मान्यता दी है कि अदालत को किशोर एवं परिवार संबंधी अदालती मामलों में पशु कल्याण के नजरिये से विचार करना चाहिए। पशु क्रूरता के आरोपी के समक्ष मानव सुरक्षा खतरे में होती है। दोनों के बीच संबंध देखा गया है। पशु के साथ दुर्व्यवहार करने वाला घर के सदस्यों के साथ भी गलत ढंग से पेश आ सकता है। यह हिंसक व्यवहार नियंत्रित करने का सूचक माना जा सकता है। पालतू पशु रखने वाली 89 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि साथी के साथ उनके रिश्ते खराब होने के दौरान उनके पशुओं को धमकी दी गई, नुकसान पहुंचाया गया या मार डाला गया। जो बच्चे पशुओं से क्रूरता देख चुके होते हैं, उनमें हिंसक व्यवहार की आशंका दोगुनी होती है।

एनसीजेएफसीजे के अध्यक्ष जज जॉन जे. रोमेरो जूनियर का कहना है, 'न्यायिक अधिकारी होने के नाते यह हमारा किर्तव्य है कि हम किशोर एवं परिवार कानून के तहत लिए जाने वाले फैसलों में पशुओं को परिवार के सदस्यों जैसी ही अहमियत दें। एनसीजेएफसीजे न्यायाधीशों का आह्वान करता कि वे उनके समक्ष प्रस्तुत मामलों में पशु क्रूरता संबंधी आरोपों पर फैसले के लिए आवश्यक समय और संसाधनों पर विचार करें और मानव व पशु दोनों को भावी हिंसा की आंशका से उबारे।'

एनसीजेएफजे पशु कल्याण संगठनों और विशेषज्ञों के साथ मिलकर कार्य करेगा और न्यायाधीशों के लिए शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध करवाएगा, जिससे उन्हें मामलों को समझने में मदद मिले। इस वर्ष एनसीजेएफजे और एनिमल लीगल

डिफेंस फंड (एएलडीएफ) ने पशु क्रूरता पर पहला न्यायिक सम्मेलन आयोजित किया। नतीजा एक नए तकनीकी सहायता बुलेटिन ' पशुओं के साथ दुर्व्यवहार संबंधी मुद्दे के रूप में सामने आया।

दुनिया के हर हिस्से में न्यायाधीश इस बात को मान रहे हैं कि पशु क्रूरता और अन्य प्रकार की हिंसा में आपसी संबंध है। उनके फैसले मानव एवं पशु दोनों के लिए सुरक्षित समुदाय बनाने की राह प्रशस्त कर सकते हैं। क्या केवल कानून से जुड़े ये ही लोग ऐसा मानते हैं कि पशु क्रूरता और सामान्य अपराध के बीच कोई संबंध है? नहीं। एफबीआइ के डेटाबेस में 1 जनवरी 2019 से पशुओं के साथ क्रूरता को आगजनी, चोरी, हत्या जैसे संगीन अपराधों में शामिल माना गया है। ब्यूरो की राष्ट्रीय घटना आधारित रिपोर्टिंग प्रणाली हित निहित है।

सड़क को सीधा बनाने की क्या जरूरत? जहां पेड़ आएं, वहां से घुमाकर निकालें; इससे वाहनों की गति धीमी होगी और हादसे भी घटेंगे: सुप्रीम कोर्ट

उत्तर प्रदेश के मथुरा शहर के कृष्ण-गोवर्धन रोड प्रोजेक्ट को लेकर 3 हजार पेड़ काटने की अनुमति मांगने पर सुप्रीम कोर्ट ने बुधवार को सवाल खड़े किए हैं। सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस एसए बोबडे की अध्यक्षता वाली पीठ ने आश्चर्य जताते हुए यूपी सरकार से पूछा कि सड़क को सीधा बनाने की क्या जरूरत है? सड़क पेड़ों को बचाते हुए घुमावदार भी बनाई जा सकती है। जहां सामने पेड़ आ जाएं, वहां से सड़क को दूसरी तरफ मोड़कर निकाला जा सकता है। इससे वाहनों की गति धीमी होगी, तो हादसे भी कम होंगे। चीफ जस्टिस ने देश में बढ़ रही सड़क दुर्घटनाओं की तरफ इशारा करते हुए कहा कि सीधी सड़क पर लोग रफ्तार से गाड़ी चलाते हैं, जिससे हादसे होते हैं। दरअसल, मथुरा में कृष्ण-गोवर्धन रोड़ के आसपास की छह सड़कों को चौड़ा किया जाना है। इस प्रोजेक्ट की राह में आ रहे करीब 3 हजार पेंड़ों को काटने की अनुमति उत्तर प्रदेश सरकार ने सुप्रीम कोर्ट से मांगी है। बुधावार को कोर्ट ने यूपी सरकार से पूछा है कि काटे जाने वाले पेड़ों की उम्र क्या है? उनके काटने से कितनी ऑक्सीजन का नुकसान होगा? इस संबंध में राज्य चार सप्ताह में जवाब पेश करे।

सुनवाई के दौरान सीजेआई बोबडे ने कहा कि राज्य सरकार यह भी बताए कि जो पेड़ काटे जाएंगे, वे झाड़िया हैं, छोटे पेड़ हैं या बड़े पेड़ हैं? सीजेआई बोबडे ने कहा कि पेड़ अपने स्थान पर बने रहते हैं, तो एकमात्र असर यही होगा कि सड़क सीधी नहीं बनेगी और हाई-स्पीड ट्रैफिक नहीं दौड़ पाएगा। यह असर हानिकारक नहीं हो सकता। पेड़ों को केवल लकड़ी ही नहीं समझा जाना चाहिए। इसके बजाय उनका मूल्यांकन इस बात पर होना चाहिए कि यदि उन्हें कभी काट दें तो वे शेष जीवन में कितनी ऑक्सीजन देते। न्यायमित्र एडवोकेट एडीफन राव ने पेड़ों के मूल्यांकन की एनपीवी (नेट प्रेजेंट वैल्यू) पद्धति के बारे में बात रखी। इस पर कोर्ट ने सरकार को इसी तरीके से पेड़ों का मूल्यांकन करने को कहा।

90 साल पुराना पेड़ काटकर हफ्तेभर उम्र वाला पौधा लगाने का औचित्य नहीं

चीफ जस्टिस बोबडे ने यूपी सरकार से पूछा कि वे इतने पेड़ों की भारपाई कैसे करेंगे? राज्य सरकार ने कहा कि लोक निर्माण विभाग ने आवश्वासन दिया है कि वे इतनी संख्या में पेड़ दूसरे इलाके में लगाकर क्षतिपूर्ति करेंगे। इससे पर्यावरण को नुकसान कम पहुंचेगा। इस पर सीजेआई बोबडे ने सख्त लहजे में कहा कि पेड़ 100 साल पुराना है और उसे काट दिया जाता है तो उसकी भारपाई किसी भी सूरत में नहीं की जा सकती। 90 साल पुराना पेड़-काटकर हफ्तेभर की उम्र वाला पौधा लगाने का औचित्य नहीं है। इसलिए सरकार इन पेड़ों की उम्र बताए।

पशुओं की भावनाओं पर शोध। झलकती है भावनाएं, होते हैं संवदेनशील

पराजय की निराशा पशुओं को भी बना देती है कमजोर

हार-जीत के वक्त जिस तरह के मनोभाव मनुष्य में होते हैं वैसे ही सकारात्मक या नकारात्मक भाव पशुओं में भी संसाधनों के इस्तेमाल की प्रतियोगिता के दौरान अनुभव होते हैं। यह सिद्धांत क्वींस यूनिवर्सिटी बेलफास्ट के स्कूल ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज के शोधार्थियों के नए अध्ययन से जुड़ा है। इतना ही नहीं, यह भीतरी अनुभव उनके बाहरी और भविष्य के व्यवहार को भी बदल सकता है।

संसाधनों के उपयोग की होडः प्रोसिडिंग ऑफ द रॉयल सोसाइटी बी

जर्नल में प्रकाशित शोध निष्कर्ष के अनुसार, पशुओं के बीच संसाधनों को हासिल करने के लिए होने वाली प्रतियोगिता हो वह शुरुआती बिंदु है जो वैज्ञानिकों को उनके मनोभावों की पड़ताल करने के लिए खींच कर ले गई है। विकास, प्रजनन और टिके रहने की कोशिश में संसाधनों के इस्तेमाल के लिए दो जीवों के बीच आपसी बातचीत ही स्पर्धा है और इस प्रतियोगिता में भावनाएं भी हैं। यह तथ्य है कि संसाधन सीमित होने के कारण प्रतिस्पर्धाएं होती हैं।

मनुष्य सरीखा व्यवहार

प्रमुख शोधार्थी एंड्रयू क्रंप ने कहा, मानवीय भावनाएं बगैर संबंध वाले व्यवहार से प्रभावित होती हैं। पशुओं के भाव भी ऐसे ही गैर संबंध वाले संज्ञान व व्यवहार से प्रभावित होते हैं। मसलन, यदि कोई पशु प्रतियोगिता में जीत का अनुभव करता है तो वह ज्यादा सकारात्मक भाव वाला है। प्रतियोगिता में हारने का अनुभव करने वाले पशुओं में नकारात्मकता का भाव होता है और भविष्य में वे दोबारा किसी लड़ाई से कतराते हैं।

पशुओं की भावनाएं भी अहम

यह शोध पशुओं की भावनाओं की भूमिका को स्वीकार करने की जरूरत को बताता है जो कि उनके व्यवहार को समझने में काफी मददगार को सकता है।

-डॉ. गॉरेथे एरनॉट, शोधकर्ता

हार का पड़ता है नकारात्मक असर

इन शोधार्थियों ने पशु प्रतियोगिता को एक केस स्टडी के तौर पर लिया। उन्होंने सुझाया कि जैसे एक अवसाद या गुस्से से ग्रस्त व्यक्ति भविष्य को लेकर निराशावादी हो जाता है, उसी तरह से वह जीव जो लड़ाई हार जाते हैं और भी नकारात्मक भाव वाली दशा में पहुंच जाते हैं। वे जहां जीत सकते हैं वहां भी निराशावादी हो जाते हैं।

लर्निंग स्पीड होती है तेज

रुटीन से हटकर कुछ किया जाता है तो दिमाग में न्यूरॉन्स बढ़ने लगते हैं। तेजी से समझकर एक नई चीज के लिए खुद को तैयार करता है। न्यूरॉन्स का बढ़ना

दिमाग के विकास के लिए फायदेमंद है। एग्जिक्यूशनल प्लानिंग व एक्शन में भी तेजी आती है। **-नीलम मिश्रा, साइकोलॉजिस्ट, गंगाराम हॉस्पिटल, दिल्ली**

अदल-बदल कर जिएं

आप खुद को लेकर नए तरह के प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करते हैं तो व्यवहार में सकारात्मक प्रभाव नजर आते हैं। अडिग प्रवृत्ति कम होगी, ज्यादा व्यवहारिक हो पाएंगे। व्यवहार में जिद है तो रुटीन को समय-समय पर बदल कर इस को नियंत्रित कर सकेंगे।

-डॉ. अनुष्का पुरीए ऑक्यूपेशनल थैरेपिस्ट

देश में 1879 में किसानों पर पहला अध्ययन हुआ, जिसमें कहा गया-ये 70 साल से पीड़ित, आज भी वही समस्याएं

211 साल से लड़ रहे किसान...

41 वॉयसराय, 14 पीएम और 17 सरकारें बदल चुकीं, पर फसलों की कीमत का मुद्दा वहीं

दिल्ली में 14 दिन से चल रहे किसान आंदोलन के आक्रोश की जड़ें 211 साल पुरानी हैं। सबूत हैं अग्रेजों के जमाने के वो दस्तावेज, जो कहते हैं कि किसानों के बारे में देश में सबसे पहला अध्ययन 1879 में सामने आया था। तत्कालीन वॉयसराय लॉर्ड मेयो के आदेश पर ह्यूम द्वारा तैयार की गई उस रिपोर्ट में कहा गया था कि किसान पिछले 70 सालों से अपनी फसलों की सही कीमत के लिए जूझ रहे हैं।

निष्कर्ष ये था कि किसानों की आधी उपज बिचौलिये, सरकारी लोग और बड़े जमींदार ले जाते हैं। किसानों को बमुश्किल छठा हिस्सा मिल पाता है। तब से अब तक देश में 41 वॉयसराय-गवर्नर जनरल, 14 प्रधानमंत्री और 17 स्वेदेशी सरकारें बदल चुकी हैं लेकिन हालात वहीं के वहीं हैं। ऐसे में बड़ा सवाल ये है कि जो समस्याएं 211 साल में दूर नहीं हो पाई, वे 14 दिन के आंदोलन से कैसे दूर होंगी?

जानिए, किसानों के बारे में देश की सबसे पहली रिपोर्ट में क्या-क्या बातें कहीं गई...

वो 3 समाधान...जो तब सुझाए थे, अभी तक नहीं हुए

1. अधिकारी किसानों को हर रोज 10 घंटे दें

विभाग के काबिल सलाहकार दफ्तरों में नहीं, किसानों के बीच रहकर समस्याएं मिटाएं। रोजाना उन्हें दस घंटे दें। दस साल तक एक इलाके में रहें। कृषि कॉलेज खोलें। किसानों से वैज्ञानिक और वैज्ञानिकों से किसान सीखें।

2. किसानों को कला, विज्ञान, उद्योग से जोड़ें

किसानों को उद्योगों, विज्ञान और कला से जोड़ें। यूरोप, अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया में उनके उत्पादों का प्रदर्शन करें। खेतों को उद्योगों से जोड़ें। मौसम की जानकारी उन्हें हर रोज दी जाए। गांव-गांव बोटेनिकल गार्डन तैयार करें।

3. कॉलेजों से ज्यादा कृषि संस्थान बनवाएं

भारत में लॉ, शिक्षा के कॉलेजों-विवि से भी अधिक जरूरी कृषि संस्थान हैं, जो किसानों की मदद करें। स्कूलों में कृषि, बॉटनी, एग्रो केमिस्ट्री वेजिटेबल फिजिओलॉजी और जिओलॉजी पढ़ाएं। प्रैक्टिकल शिक्षा जरूरी।

वो 3 ताकतें...जो किसानों के पास तब भी थीं, आज भी

1. इस देश के किसान दुनिया में सबसे अनुभवी

खेती के तीन हजार साल के अनुभवी इन किसानों के सामने इंग्लैंड के किसान कुछ नहीं हैं। आप ऊपर के गांवों को देखें। गेहूं का ठाठें मारता समुद्र। सैकड़ों मील गेहूं के खेतों में खरपतवार तो दूर, घास तक भी नहीं है।

2. आंधी-तूफान के बारे में सटीक अंदाजा

मौसम के बारे में ऐसे पारंगत कि आंधी, तूफान और ओलावृष्टि तक का उन्हें बोध है। कौनसे पौधों को कितने समय तक रखें, उनके फसलों के पकने के ज्ञान पर आश्चर्य होता है। ग्रहों और सितारों की भी गजब जानकारी।

3. फसल कब, कहां उगानी? उसमें महारथ

भारत के किसानों को कौनसी फसल कब, कहां, कितनी और क्यों बोएं, इस सबमें महारथ। अनाजों के भंडारण में माहिर हैं। बीस साल बाद भी एक-एक दाना दमकता मिलता है। पशु चिकित्सा में भी कुशल हैं।

लॉर्ड मेयो को सौंपी रिपोर्ट में ह्यूम ने जो लिखा था, वो आज भी प्रासंगिक

ह्यूम ने यह रिपोर्ट 1 जुलाई, 1879 को वॉयसरॉय लॉर्ड मेयो को सौंपी थी। इसमें भारतीय किसानों की तारीफों के साथ-साथ ह्यूम ने लिखा था- **'कितना शर्मनाक है कि ये किसान 70 साल से एक समस्या से रूबरू हैं और हल नहीं निकला। क्या हम इन्हें तबाह होने देंगे? क्या अपनी आर्थिक धमनियों को ऐसे बर्बाद होने दें? कोई अपनी आंखों के सामने सोने के अंडे देने वाली हंसिनी को दम तोड़ते कैसे देख सकता है?'** ह्यूम के अनुसार मेयो अकेले वॉयसरॉय थे, जो खुद किसान थे। इसीलिए उन्होंने ये अध्ययन कराया था।

मानवीय खान-पान चट कर सकता है पशु-पक्षियों का बसेरा

दुनिया भर में स्तनधारी, पक्षी और उभयचरों का प्राकृतिक आवास औसतन 18 फीसदी भूमि उपयोग और जलवायु परिवर्तन के कारण बर्बाद हो चुका है। अब इनके आशियाने पर बड़ा संकट मानवीय खान-पान प्रणालियों की वजह से है। आंशका है कि इसमें बदलाव नहीं आया तो यह नुकसान अगले 80 वर्षों में 23 फीसदी तक बढ़ सकता है। लीड्स विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने यह शोध किया है। शोधकर्ताओं ने यह शोध किया है। प्रमुख शोधकर्ता डॉ. डेविड विलियम्स थे, जो लीड्स स्कूल ऑफ अर्थ एंड एन्वायरनमेंट और सस्टेनेबिलिटी रिसर्च इंस्टीट्यूट से जुड़े हैं। यह शोध नेचर सस्टेनेबिलटी में प्रकाशित हुआ है।

डॉ. डेविड विलियम्स के अनुसार, हमारा अनुमान है कि बढ़ती आबादी को लिखाने के लिए कृषि में विस्तार करने से स्तनधारियों, पक्षियों और उभयचरों की लगभग 20 हजार प्रजातियों के प्रभावित होते की आशंका है। शोध बताते हैं कि खाद्य प्रणालियों में बड़े बदलाव के बिना सन 2050 तक जीव-जतुंओं के लाखों वर्ग किलोमीटर प्राकृतिक आवास हमेशा के लिए गायब हो जाएंगे। लगभग 1,300 प्रजातियां अपने बचे निवास में से कम से कम एक चौथाई खोती जा रही हैं और सैकड़ों के कम से कम आधे निवास गायब हो सकते हैं। इससे उनके विलुप्त होने के आसार बढ़ जाते हैं।

चिंता का विषय

विलुप्त होने वाली प्रजातियां सूचीबद्ध नहीं

जैव विवधता कानूनों की पालना नहीं होना

भोजन की बर्बादी

बचाव के उपाय

नए संरक्षित केंद्र की स्थापना

खतरे वाली प्रजातियों के लिए विशेष कानून बनना

सुरक्षित खाद्य प्रणाली को अपनाना

वैश्विक समन्वय की आवश्यकता हमें महत्त्वपूर्ण रूप से कई चीजों को अपनाने की आवश्यकता है। कोई भी दृष्टिकोण अपने आप में पर्याप्त नहीं होता है। लेकिन दुनिया भर में समन्वय और तेजी से कार्रवाई करने से 2050 में बिना किसी निवास स्थान के नुकसान के दुनिया भर की आबादी के लिए स्वस्थ आहार मिलना संभव होना चाहिए। **-डॉ.क्लार्क, ऑक्सफोर्ड, विवि**

शॉर्ट एक्सरसाइज के ये 4 तरीके फिट रहने को 4 मिनट भी काफी

यदि आपके पास 5 से 10 मिनट का भी समय है तो आप जिम में घंटों पसीना बहाने के बराबर फायदा इन 5 से 10 मिनट की HIIT से पा सकते हैं। HIIT यानी हाई इंटेसिटी इंटरवल ट्रेनिंग। इसमें तेज गति की छोटी-छोटी एक्सरसाइज से शरीर पर बड़ा प्रभाव डाला जाता है।

10 मिनट वर्कआउट

यदि आपको चलना, दौड़ना अथवा तैरना पसंद है तो यह 10 मिनट का वर्कआउट ऑप्शन आपके लिए बहुत फायदेमंद हो सकता है।

सिर्फ 7 स्टेप में

1.सबसे पहले दो मिनट वार्मअप करें।

2. अब पूरी क्षमता के साथ 20 सेकंड तक या तो पैडलिंग करें या दौड़ें या तैरें। यानी जो एक्टिविटी सबसे ज्यादा पसंद हो, उसे कर सकते हैं।

3. अब दो मिनट के लिए अपनी रफ्तार को आराम दें। धीरे-धीरे एक्सरसाइज करते रहें।

4. अब दोबारा 20 सेकंड तक पूरी क्षमता के साथ पैडल मारें, दौड़ें या स्विमिंग करें।

5. इसके बाद दोबारा 2 मिनट का गैप लें। धीरे-धीरे मनपसंद एक्सरसाइज करते रहें।

6. अब फिर से 20 सेकंड तक पूरी क्षमता से पैडल मारें, दौड़ें अथवा तैरें। यानी 20-20 सेकंड के तीन स्टेप में तेज गति से एक्सरसाइज करनी है और दो-दो मिनट के तीन राउंड में हल्की एक्सरसाइज करनी है।

7. अब 3 मिनट तक खुद को कूल डाउन करें । इस तरह दस मिनट में ये 7 स्टेप पूरे हो जाएंगे।

यानी हफ्ते में सिर्फ 30 मिनट एक्सरसाइज इस एक्सरसाइज को सप्ताह में 3 दिन कर सकते हैं।

7 मिनट वर्कआउट

इस एक्सरसाइज को बॉडी वेट, चेयर अथवा दीवार के सहारे किया जा सकता है। निश्चित तौर पर ये 7 मिनट बेहद थकाने वाले होंगे, लेकिन ये 7 मिनट आपको हाई इंटेंसिटी वर्कआउट का फायदा देंगे।

सिर्फ 12 स्टेप में

1. यह 12 स्टेप का एक्सरसाइज प्लान है । हर एक्सरसाइज को 30 सेकंड तक करने के बाद 10 सेकंड का आराम करना है।

2. एक्सरसाइज का सीक्वेंस इस तरह रहेगा। सबसे पहले जम्पिंग जैक यानी दोनों हाथों और पैरों को एक साथ खोलकर कूदिए और वापस पहले वाली पोजीशन में आ जाइए।

-इसके बाद वॉल सिट। दीवार का सहारा लीजिए। घुटने मोड़िए और चेयर पोजीशन में बैठ जाइए।

-अब 30 सेकंड पुशअप्स, फिर एब्डॉमिनल क्रंचेज करिए। इसके बाद चेयर पर स्टेपअप और स्क्वॉट्स करिए। कुर्सी पर ट्राइसेप्स डिप्स, प्लैंक, हाईनी अथवा एक

स्थान पर दौड़, अल्टरनेटिंग लंजेज, रोटेशन में पुशअप्स और दोनों तरफसाइड प्लैंक करिए।

3. ऑरलैंडो स्थित ह्यूमन परफॉर्मेंस इंस्टीट्यूट में एक्सरसाइज फिजियोलॉजी के डायरेक्टर क्रिस जॉर्डन के अनुसार एक्सरसाइज के दौरान आपका डिस्कम्फर्ट लेवल 1 से 10 अंकों के स्केल में 8 होना चाहिए।

4 मिनट वर्कआउट

यदि आप अपनी क्षमता के साथ सप्ताह में तीन बार 10 सप्ताह तक यह एक्सरसाइज करते हैं तो ब्लड शुगर और ब्लड प्रेशर कंट्रोल कर सकते हैं।

सिर्फ तीन स्टेन में

1. सबसे पहले हल्का वॉर्मअप करें।

2. अब 4 मिनट तक पूरी क्षमता के साथ दौड़ें, तैरें अथवा साइकिल चलाएं। यानी जो भी आपको पसंद हो, वह एक्सरसाइज एक्टिविटी करें।

3. अब रुकें। सांसों को कंट्रौल करें। 4. इसे सप्ताह में तीन बार करें।

10-20-30 ट्रेनिंग

ट्रेनिंग का यह तरीका आपके ह्दय की क्षमता को बढ़ाता है। चाहे तो दौड़ सकते हैं अथवा साइकिलिंग कर सकते हैं।

1. 30 सेकंड तक आराम से दौड़ें ।

2. अब 20 सेकंड तक हल्की तेज गति के साथ दौड़ना शुरू कर दें। बीस सेकंड के बाद 10 सेकंड तक पूरी क्षमता के साथ दौड़ें। इस सीक्वेंस को 5 बार दोहराएं। 2 मिनट का रेस्ट करें फिर इस सीक्वेंस को 5 बार दोहराएं।

खुलासाः बुजुर्गो पर हुआ एलएएसआइ सर्वेक्षण

पुरानी बीमारियों से जूझ रहा देश का हर दूसरा बुजुर्ग

देश में 60 साल से अधिक उम्र के दो में से एक बुजुर्ग किसी न किसी क्रॉनिक (पुरानी) बीमारी से ग्रस्त हैं। 45 वर्ष से अधिक उम्र के 26 फीसदी से अधिक लोग किसी एक बीमारी और 18 फीसदी से अधिक एक से अधिक बीमारियों से ग्रस्त हैं। देश में गांवों से ज्यादा शहरों में 7.5 करोड़ बुजुर्ग क्रॉनिक

बीमारियों से ग्रस्त है। कर्नाटक में 10 फीसदी बुजुर्ग पुरानी बीमारियों से पीड़ित हैं। यह जानकारी लॉगीट्यूडिनल एजिंग स्टीज ऑफ इंडिया के पहले राष्ट्रीय सर्वे में सामने आई है। 4.5 करोड़ बुजुर्ग हृदय रोग और तनाव की समस्या से ग्रस्त हैं।

गांवों से ज्यादा शहरों में

सर्वे के मुताबिक 37 फीसदी बुजुर्ग उच्च उच्च रक्तचाप से पीड़ित हैं। गांवों की तुलना में शहरों में रहने वाले ऐसे बुजुर्गों की तादाद ज्यादा है। शहरी इलाकों में 40 फीसदी बुजुर्ग उच्च रक्तचाप के शिकार हैं तो देहाती इलाकों में 5 फीसदी।

नए वर्ष में सेहत के 21 कदम

नया वर्ष काफी मायनों में खास होगा क्योंकि 2020 में हमारा सामना कोराना जैसी महामारी से हुआ। कोरोना की गंभीरता ने हमें सेहत के प्रति जागरूक होने के लिए विवश किया है। सेहत के लिए समय निकालने का मौका दिया। कई पुरानी आदतों को छोड़ने और नई आदतों को शुरू करने के लिए भी बाध्य किया है। जानते हैं उन 21 आदतों के बारे में जिनको अपनाकर नए साल में स्वस्थ रह सकते हैं।

1. बार-बार हाथ धोते रहे हैं-बार-बार हाथ धोने से बैक्टीरिया, वायरस, फंगस से बचाव होता है। 65% पेट की बीमारियां, पीलिया, फ्लू, हेपेटाइटिस आदि को हाथ धोकर रोक सकते हैं।

01 करोड़ से अधिक मृत्यु हर वर्ष, इसे बार-बार हाथ धोकर रोक सकते हैं।

2. इन्हें बार-बार न छुएं-आंख, नाक, कान, मुंह और होठों को बार-बार हाथों से छूने से वायरस, बैक्टीरिया या फंगस सीधे शरीर के अदंर जाकर गंभीर बीमारियां कर सकते हैं। ऐसा न करें।

16 से अधिक बार लोग अपने चेहरे को हर घंटे में छूते हैं।

3. हैल्दी ब्रेकफास्ट-50% रिस्क बीमारियों का कम होता है। हैल्दी ब्रेकफास्ट अच्छी सेहत के साथ वजन नियंत्रित रखता और दिनभर ऊर्जा भी देता है।

4. दूसरों की चीजें न यूज करें-दूसरों की तौलिया, रेजर, कंघी, साबुन,

रूमाल का इस्तेमाल न करें। इससे त्वचा-बालों में संक्रमण, डायरिया आदि की आशंका रहती है। कपड़े धूप में ही सुखाएं।

15 मिनट गर्म पानी में भिगोए कपड़े सूखाने के बाद ही दूसरा इस्तेमाल करें।

5. 7-8 घंटे की नींद लें-7-8 घंटे की अच्छी नींद रोज लें। नींद की कमी से लाइफस्टाइल से जुड़ी बीमारियों जैसे हार्ट अटैक, बीपी, कैंसर व मानसिक रोगों की आशंका बढ़ जाती है।

77% खतरा हाइपरटेंशन का बढ़ जाता है नींद की कमी से।

6. तनाव से बचें-60% से ज्यादा जीवनशैली वाली बीमारियां तनाव से तनाव बढ़ने से एड्रिनल ग्लैंड अधिक हॉर्मोन बनाता है। यही अधिकतर बीमारियों की वजह है।

7. स्क्रील टाइम तय करें-मोबाइल-कम्प्यूटर की ब्लू लाइट स्लीप हॉर्मोन मेलाटॉनिन को प्रभावित करती है। इससे एकाग्रता, आंखों की रोशनी कम होती है। छोटे बच्चे आक्रामण हो सकते हैं।

30-40 मिनट स्क्रीन देखने के बाद 5 मिनट का ब्रेक लें, पानी के छीटें मारें।

8. लिक्विड लेते रहें-शरीर में पानी की कमी से थकान, पेट और दिल की बीमारियां, मोटापा, त्वचा की चमक, मुंह से दुर्गंध, जोड़ों में दर्द और किडनी को नुकसान हो सकता है।

2.5-3 लीटर तक पानी, जूस, दाल का पानी या सूप डाइट में रोज लें।

9. जंक फूड को कहें ना-नमक, चीनी और कैमिकल ज्यादा होते हैं। जंक फूड से न केवल मोटापा बढ़ता, बल्कि कई बीमारियों व दिमागी रोगों का भी कारण हैं।

10. नियमित व्यायाम-30-45 मिनट तक व्यायाम रोज करें। केवल वजन सही नहीं रहता, बल्कि कई गंभीर बीमारियों का खतरा भी कम होता है। 35% हार्ट अटैक व स्ट्रोक और 50% टाइप 2 डायबिटीज की आशंका घटती है।

30% खतरा असमय मृत्यु का कम होता है व्यायाम करने से।

11. वैक्सीन लगवाएं-छोटे बच्चों को टीके लगवाकर खसरा, टिटनेस,

पोलियो, टीबी, गलघोंटू, काली खांसी, हेपेटाइटिस बी से बचाते हैं। वयस्कों के लिए फ्लू, टिटनेस, निमोनिया, सर्वाइकल कैंसर के टीके लगते हैं।

16 प्रकार के टीके बच्चों के सहित कुल करीब 30 टीके हैं।

12. **खुलकर हंसें**–खुलकर हंसने से रक्त संचार बढ़ने से खून में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। अच्छी नींद आने के साथ भी बुढ़ापा भी देरी से आता है। हंसने से शरीर की इम्युनिटी भी बढ़ती है।

15 मिनट हंसने से 50 कैलोरी बर्न होती, मोटापा घटता है।

13. **बागवानी व पालतू की केयर**–बागवानी और घर के पालतू जानवरों की केयर से तनाव कम होता है। शरीर चुस्त और दुरूस्त बनता है व हृदय रोगों से बचाव होता है। बच्चों का मानसिक विकास भी अच्छा होता है।

14. **रुटीन टेस्ट करवाएं**–बदलती व खराब दिनचर्या से कम उम्र में ही ब्लड प्रेशर, हार्ट डिजीज, कैंसर, थायरॉइड आदि की समस्या हो रही है। कई गंभीर बीमारियों की पहचान रुटीन जांचों से हो जाती है। समय पर इलाज मिल जाता है।

35 वर्ष के बाद से डॉक्टर की सलाह से रुटीन जांचें कराते रहें।

15. **लंबी सीटिंग से बचें**–कोविड के बाद से वर्क फ्रॉम होम बढ़ा है। लंबी सीटिंग से हार्ट अटैक, बीपी, डायबिटीज, शरीर में दर्द, मोटापे का खतरा कम उम्र से बढ़ा है। बिस्तर या सोफे पर लेटकर काम करने से रीढ़-हड्डियों की परेशानी हो रही है।

02 घंटे से अधिक लंबी सीटिंग से 27% बीमारियों का खतरा बढ़ता है।

16. **सब्जियां ज्यादा खाएं**–शाकाहारी खाना जैसे हरी सब्जियां, मौसमी फल खाने से न केवल वजन नियंत्रित रहता है, बल्कि शरीर भी डिटॉक्स होता है। दूसरी गंभीर बीमारियों से बचाव होता है।

40% से अधिक लोग भारत में है शाकाहारी, जबकि विश्व में 8% हैं।

17. **चीनी-नमक कम खाएं**–डाइट में चीनी-नमक ज्यादा खाने से मोटापा, शुगर, बीपी, किडनी और हार्ट और समस्या बढ़ती है। स्वाद को बढ़ाने के लिए नमक-चीनी का इस्तेमाल कम करें।

50 कैलोरी एक चम्मच चीनी में, रोज 04 चम्मच से ज्यादा न खाएं।

18. गुनगुना पानी पीएं-सुबह उठने के बाद बेड टी की जगह गुनागुना पानी पीएं। इससे कब्ज से बचाव व हार्मोन का स्तर नियंत्रित रहता है। दो गुने तेजी से वजन भी कम होता है।

300-400 मिली ग्राम गुनगुना पानी सुबह उठने के बाद पीना चाहिए।

19. नशा करने से बचें-धूम्रपान व दूसरे नशे से कम उम्र में हृदय की धमनियां कठोर होती हैं। हार्ट अटैक का खतरा बढ़ता है। अल्कोहल से शरीर में प्रोटीन-विटामिन्स की कमी हो जाती है।

30% से अधिक लोग नशा करते हैं देश में और 01 करोड़ से अधिक मृत्यु।

20. वजन नियंत्रित-मोटापा एक बीमारी नहीं, बल्कि अधिकतर बीमारियों का मुख्य कारण है। इसलिए वजन नियंत्रित रखना जरूरी है। मोटापे से जल्दी मृत्यु का खतरा कई गुना बढ़ जाता है।

31% खतरा बढ़ जाता है मोटापे के कारण होने वाली असमय मृत्यु से।

21. मन से दवा न लें-अपने मन से दवा लेना जानलेवा हो सकता है। ज्यादा पेन किलर से अल्सर, कब्ज, लिवर और किडनी डैमेज, अस्थमा का खतरा रहता है। ज्यादा एंटीबायोटिक्स से रेजिस्टेंस का खतरा रहता है।

50% से अधिक लोग छोटी-छोटी बीमारियों के लिए खुद ही दवा लेते हैं। (रा.पत्रिका)

छोटे कदम लांएगे बड़ा बदलाव

कुछ महीनों में कोरोना की आपदा के चलते ठहरी जिंदगी ने हमें फिर समझाया है कि छोटी-छोटी खुशियों को जीना कितना जरूरी है । सेहत सहेजना हो या सुकून से अपनी झोली भर लेने की चाह, ऐसे छोटे-छोटे कदम ही बेहतरी के बड़े बदलावों की ओर ले जाते हैं । हर दिन की कई सहज सी कोशिशें पर्सनल फ्रंट से लेकर प्रोफेशनल मोर्चे तक, कमाल कर जाने को काफी हैं।

खुलकर हंसें

जरा ठहर कर सोचिए तो सही कि हंसी कहां गुम हो गई है? इस साल यह तय

कर लें कि चेहरे की सुंदरता और खुशियों के इजहार की इस साथी को फिर जिंदगी से जोड़ेंगे। जी भरकर हंसे-मुस्कुराएंगे। जिंदगी की इस सबसे खूबसूरत नेमत को घर हो या बाहर अपनी पर्सनैलिटी का हिस्सा बनाएंगे ही। खुशी-खुशी हर हालात का सामना करेंगे। तकलीफ़ भरे समय में भी हंसने के बहाने तलाशेंगे। खुद भी मुस्कुराहटों का स्वागत करेंगे और दूसरों को भी इस जिंदादिली से जोड़ेंगे।

विनम्र व्यवहार

व्यवहार की सहजता और विनम्रता अपने हों या पराए- सभी के दिल में जगह दिला सकती है। विनम्र और सहज बर्ताव आपको घर में नहीं ऑफिस में भी सबका चहेता बना सकता है। छोटे हों या बड़े, सभी के दिल में आपके लिए मान और स्नेह जगा सकता है। याद रखिए कि व्यवहार की विनम्रता आपसे कुछ नहीं लेती मगर आपको सब कुछ दे जरूर सकती है। दिखावे से भरी इस दुनिया में सहजता और सादगी भरा व्यवहार आपकी पर्सनैलिटी की बड़ी ख़ासियत बन सकता है।

वर्तमान में जिएं

यह बहुत आम सी बात, व्यावहारिक रूप से देखें तो बहुत ख़ास हो जाती है। जब आज पर बीता हुआ कल या आने वाला कल हावी हो जाता है, तो देखने में आता है कि हमारा बहुत सा समय बीती बातों को लेकर पछतावे या गुस्से में बीत जाता है। जिसके चलते हम आज को जीना तो भूल जाते हैं। घर के हर सदस्यों के बारे में सोचने वाली महिलाएं इन चिंताओं में ज्यादा घिरती हैं, जबकि जिंदगी का हर पल कीमती है। तय करें कि भविष्य की चिंता छोड़ अपने आज को संवारने की सोचें।

सामाजिक जुड़ाव

महिलाओं के लिए घर-परिवार ही नहीं सामाजिक सरोकारों से जुड़ना भी जरूरी है। यह जुड़ाव आपको सामाजिक और मुखर बनाता है। यह सक्रियता आपको अपने परिवेश के लिए जागरूक करती है। निजी स्तर पर भी समाधान की राह सुझाती है।

किसी के मन की सुनें

हम अपनी कहना ही नहीं भूले, किसी के मन की सुनना भी भूल गए हैं। संवाद की यह कमी रिश्तों में दूरी ही नहीं ला रही पूरे सोशल माहौल को भी बदल रही

है। अबके बरस तय करें कि जो भी जहां भी आपसे कुछ कहना चाहे, आप उनके मन की सुनेंगी जरूर।

गैजेट्स से दूरी

इस साल गैजेट्स के मायाजाल से थोड़ा बाहर आएं। स्मार्ट फोन हो या सोशल मीडिया, सबसे जुड़कर खुद से छूट जाने के लिए नहीं है। तय कर लें कि दिन भर स्क्रीन स्क्रॉल करते रहने के बजाय नियत समय के लिए सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म को इस्तेमाल करेंगी।

सेहत संभालें

स्वास्थ्य को प्राथमिकताओं में ऊपर रखें। बेहतर कदम तभी उठा सकती हैं जब सेहत के मोर्चे पर संभल सकेंगी। महिलाओं में स्ट्रेस, वजन बढ़ना, अकेलापन, डिप्रेशन देखने को मिलते हैं। नियमित व्यायाम, खान पान और मेडिकल चेकअप प्राथमिकताओं में शामिल कीजिए।

समाजजनों को बताई आप्त की परिभाषा

पुनर्वास कॉलोनी के दिगंबर जैन मंदिर में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी गुरुदेव ससंग के सानिध्य में पार्श्वनाथ व चंद्रप्रभु भगवन् का जन्म व तप कल्याणक मनाया। इस अवसर पर भगवान् पार्श्वनाथ व चंद्रप्रभु का पंचामृत अभिषेक व शांति धारा हुई। ब्रह्मचारी खुशपालजी के सानिध्य में भगवान् के पांचों कल्याणक मनाए गए। जन्म कल्याणक के अवसर पर श्रद्धालुओं ने भगवान् का झूला झुलाया। आचार्य कनकनंदी महाराज ने देश विदेश के वैज्ञानिकों की वेबिनार में संबोधित किया। जिसमें आचार्य ने कहा कि कर्म बंधन से मुक्त होने के बाद आध्यात्मिक योग्यता प्रगट होती है। गुरुदेव ने आप्त की परिभाषा बताते हुए कहा कि जो यथार्थवादी, संशय, विभ्रम, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित होते हैं, वे आप्त है। आप्त का अर्थ प्रामाणिक है। जिनके वचन प्रामाणिक हैं जो परम सत्य यथार्थ सत्य को प्रतिपादित करने में सक्षम हैं। संसारी लोग दीन हीन भाव से ग्रसित होने के कारण उनमें घंमड होता है। निर्दोष बनने के लिए धर्म होता है, उसका अनुसरण करना आवश्यक है।

170 साल में इंसान के शरीर का औसत तापमान 1.1 फैरनहाइट कम हुआ

अब 98.6 फैरनहाइट नहीं 97.5 हुआ शरीर का स्टैंडर्ड औसत तापमान

इंसान के शरीर का तापमान घट रहा है। लगभग 170 साल पहले 1851 में हमारे शरीर का औसत स्टैंडर्ड तापमान 37 डिग्री सेंटिग्रेड अथवा 98.6 फैरनहाइट रहता था, जो कि अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में मेडिसिन की प्रोफेसर और सीनियर लेखक डॉ. जूली पर्सोनेट के अनुसार शोधकर्ताओं ने इसके लिए तीन डेटाबेस का अध्ययन किया। 1863 से 1930 के बीच हुए सिविल वॉर के 23,710 वेटरन्स, 1971 से 1975 के बीच अमेरिका में किए गए नेशनल हेल्थ सर्वे के 15,301 रिकॉर्ड्स और 2007 से 2017 के बीच स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के 1,50,280 लोगों के डेटाबेस का अध्ययन किया गया। शोधकर्ताओं ने पाया कि प्रत्येक दशक में शरीर का औसतन तापमान 0.03 डिग्री सेल्सियस अथवा 0.05 डिग्री फैरनहाइट घटा। हालांकि शरीर का औसत तापमान क्यों घट रहा है इसका कारण शोधकर्ताओं को नहीं मिला। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि स्वच्छता में सुधार और बढ़ती मेडिकल एवं डेंटल सुविधाएं, गर्मी के कारण लगातार बना हुआ तापमान और एयर कंडीशनिंग के चलते तापमान में यह कमी हो सकती है। वर्तमान में 98.6 फैरनहाइट की तुलना में 97.5 फैरनहाइट नॉर्मल तापमान हो गया है।

नियमित और सही तरीके से हाथ धोने से हर साल 10 लाख लोगों की जान बच सकती है

ग्लोबल हैंड वॉशिंग डे हाल ही में दुनिया भर में मनाया गया है। कोरोना संक्रमण के इस दौर में हाथों की सफाई लोगों के लिए किसी उपचार से कम नहीं है। ऐसे में इस दिन का महत्व दुनिया भर में और बढ़ गया है। अमेरिकन जर्नल ऑफ इंफेक्शन कंट्रोल की स्टडी के अनुसार घर पर रहने के समय भी अक्सर हाथ धोते रहने से परिवार में संक्रमण का खतरा काफी कम हो जाता है। शोध के अनुसार दरवाजों के हत्थे, बाथरूम के नल और फ्लश का हैंडल घरों में संक्रमण फैलने के

मुख्य स्रोत हैं। ऐसे में इनकी सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन्हें छूने के बाद हाथ जरूर धोएं। एक अध्ययन के अनुसार विभिन्न प्रकार के संक्रमण केवल और केवल हाथ से फैलते हैं। ग्लोबल हैंडवॉशिंग ऑर्गेनाइजेशन की रिपोर्ट बताती है कि हाथ के 15 सेमी हिस्से में लगभग 1500 बैक्टीरिया होते हैं। यदि नियमित रूप से और सही तरीके से लोग हाथों को धोएं तो हर साल लगभग 10 लाख लोगों की जान बचाई जा सकती है।

जानिए हाथों की सफाई और इनसे फैलने वाले संक्रमण के बारे में

क्या सच में हैंड सैनेटाइजर 99.9% वायरस और कीटाणु मारता है?

जनरल साइंस ट्रांसलेशनल मेडिसिन में वर्ष 2018 में प्रकाशित एक शोध में शोधकर्ताओं ने मेलबोर्न स्थित 2 अस्पतालों के 139 बैक्टीरिया सैंपल का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि बैक्टीरिया ने एल्कोहल के प्रति प्रतिरोधक शक्ति पैदा कर ली है। एल्कोहलयुक्त हैंड रब अथवा सैनेटाइज़र के उपयोग के बावजूद वे जीवित रह रहे हैं। हालांकि शोधकर्ताओं ने यह स्पष्ट किया है कि ये अस्पतालों में पाए जाने वाले बैक्टीरिया पर लागू है अन्य बैक्टीरिया के लिए स्टडी की आवश्यकता है। ऐसे में डॉक्टर्स का मानना है कि हाथों को अच्छी तरह साफ करने के लिए साबुन और पानी बेहतर विकल्प है।

2023 तक 12867 करोड़ का होगा हैंड सैनेटाइजर बाजार

एलाइड मार्केट रिसर्च द्वारा 'हैंड सैनेटाइजर मार्केट बाय प्रॉडक्ट, डिस्ट्रीब्यूशन चैनल एंड-एंड यूजः ग्लोबल अपॉर्च्युनिटी एनालिसिस एंड इंडस्ट्री फोरकास्ट 2017-2023' के नाम से प्रकाशित एक शोध के अनुसार 2016 तक हैंड सैनेटाइजर का वैश्विक बाजार 6,736 करोड़ रुपए का था जिसके 2023 तक 12867 करोड़ रुपए तक पहुंचने की संभावना है।

हाथों से कीटाणु शरीर में कैसे पहुंचते हैं?

कीटाणु आंखों, नाक और मुंह के द्वारा पहुंचते हैं। बिना धुले हाथों से रोग पैदा करने वाले कीटाणु भोजन और पेय पदार्थों को भी संक्रमित कर सकते हैं।

हाथों के माध्यम से दरवाजों के हत्थों, फोन स्क्रीन, जिम के उपकरणों, सीढ़ियों आदि में भी कीटाणु पहुंच सकते हैं।

अधिकतर लोग बिना हाथ धोए ही आखों, नाक और मुंह को छूते हैं।

हाथ धोने से जुड़े पांच महत्वपूर्ण फैक्ट

हाथ से एक सेमी भाग में लगभग 1500 बैक्टीरिया होते हैं।

नियमित हाथ धोने में श्वसन संबंधी हर 5 में से 1 बीमार को बचाया जा सकता है।

हाथ धोने से डायरिया संबंधी हर 3 में से 1 बीमार को बचाया जा सकता है।

नियमित रूप से हाथ धोने से हर साल 10 लाख लोगों की मृत्यु रोकी जा सकती है।

2017 तक 5 में से सिर्फ 3 लोगों के पास ही हाथ धोने की बेसिक सुविधा थी। **(स्त्रोतः ग्लोबल हैंडवॉशिग ऑर्गेनाइजेशन)**

तंबाकू से हर साल 12.80 लाख मौतें, टैक्स का वार हो तो मिलेंगे 49 हजार करोड़ रुपए

राजधानी की रायसीना हिल पर नॉर्थ ब्लॉक की इमारत में बजट तैयार कर रहे एक्सपट्र्स के लिए इस साल का बजट चुनौती लेकर आया है। सरकारी आमदनी कम है लेकिन सरकारी खर्च कम करने की बजाय बढ़ाना है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर को घटाने-बढ़ाने की कवायद में सरकार कुछ अलग ही फॉर्मूला अपना सकती है। इसमें तंबाकू उत्पादों पर टैक्स बढ़ाकर लगभग 49 हजार करोड़ रुपए जुटाए जा सकते हैं। इससे ना सिर्फ खजाने में आमदमी बढ़ेगी, बल्कि लाखों लोगों की जिंदगी भी बच सकेगी।

देश में हर साल तंबाकू से 12.8 लाख लोगों की मौत होती है। वित्त मंत्रालय के सूत्र बताते हैं कि उन्हें इस बारे में कुछ सरकारी विभागों, संस्थानों और गैर सरकारी संस्थानों से सिफारिशें मिली है। हालांकि इस पर कोई स्पष्ट राय नहीं बन सकी है।

कमाई बढ़ाने और जान बचाने का फॉर्मूला

स्वास्थ्य अर्थनीति के विशेषज्ञ रीजो जॉन का मानना है कि तंबाकू उत्पादों पर टैक्स बढ़ा कर सालाना करीब 49 हजार करोड़ रुपए जुटा सकते हैं। इससे तंबाकू

का उपयोग भी 22 से 30 फीसदी तक घट सकता है।

सिगरेटः मौजूदा औसत कीमत 12.7 रुपए है। इस पर 2017 तक प्रति हजार सिगरेट 4170 रुपए का उत्पाद शुल्क था। फिर इतना शुल्क दिया जाए तो देश को मिलेंगे 27, 432 करोड़ रुपए अतिरिक्त।

फायदाः 27 हजार करोड़-अतिरिक्त राजस्व, उपयोग में 22% कमी

बीडीः 25 बीड़ी वाले बंडल की औसत कीमत 20 रुपए। हजार बीड़ी पर एक रुपए उत्पाद शुल्क है। हर पत्ती पर 50 पैसे उत्पाद शुक्ल लगा दें तो 18,000 करोड़ अतिरिक्त मिलेंगे।

फायदाः 18 हजार करोड़-अतिरिक्त राजस्व, उपयोग में 24% कमी

गुटखाः औसत कीमत प्रति सौ ग्राम 102 रुपए है। इन पर उत्पाद शुक्ल 103 प्रतिशत हो तो औसत कीमत हो जाएगी 186 रुपए और खजाने में आएंगे 3,000 करोड़ रुपए अतिरिक्त।

फायदाः 3 हजार करोड़-अतिरिक्त राजस्व, उपयोग में 29% कमी

आम जन के लिए क्यों जरूरी

स्वास्थ्य मंत्रालय के दस्तावेजों के मुताबिक 2011 में सालाना आर्थिक बोझ जीडीपी का 1.16% था। तब यह रकम 104,482 करोड़ थी जो अब बढ़ कर 1,79,000 करोड़ आंकी जा रही है। इसका उपयोग कोरोना से जंग में हो सकता है।

कीमत का 75% हिस्सा टैक्स का हो

विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि तंबाकू उत्पादों पर टैक्स बढ़ाने से इनका उपयोग कम होता है। डब्ल्यूएचओ कहता है, तंबाकू उत्पादों की खुदरा कीमत का कम से कम 75% हिस्सा टैक्स का होना चाहिए।

हो सकता है राजस्व का अच्छा माध्यम

पब्लिक फाइनेंस के सिद्धांतों के मुताबिक स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह उत्पादों पर सरकारों को टैक्स लगातार बढ़ाना चाहिए। राजस्व के लिए यह अच्छा माध्यम हो सकता है। सरकारों को ध्यान रखना होगा कि इसके लिए जनता में स्वीकार्यता हो। इस कदम के पक्ष में सभी आंकड़े इकट्ठा कर जनता के सामने रखे जाएं। **-राधिका पांडे, फेलो, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड**

बीस साल में जलवायु आपदाएं दोगुनी से ज्यादा बढ़ीं; 12 लाख से ज्यादा लोग मारे गए, 420 करोड़ प्रभावित

दुनिया को 225 लाख करोड़ रु. का नुकसान हुआ

पिछले 20 साल में प्राकृतिक आपदाओं में दोगुना से ज्यादा बढ़ोतरी हुई है। संयुक्त राष्ट्र की ह्यूमन कॉस्ट ऑफडिजास्टर्स 2000-2019 रिपोर्ट में यह दावा किया गया है। इसके मुताबिक तूफान, सूखा, जंगल की आग और अत्यधिक तापमान की घटनाओं में 20 साल में 12 लाख से ज्यादा लोगों की मौत हुई है। जबकि इनसे 420 करोड़ लोग प्रभावित हुए हैं। इससे दुनिया को करीब 225 लाख करोड़ रुपए का आर्थिक नुकसान हुआ है। आपदा प्रबंधन एजेंसियां अत्यधिक खराब मौसम की बेतहाशा घटनाओं के खिलाफ बेहद मुश्किल लड़ाई लड़ रही हैं। कई लोग बढ़ते जलवायु आपातकाल से बुरी तरह प्रभावित हैं। साल 2019 में वैश्विक औसत तापमान, प्री- इंडस्ट्रियल पीरियड से 1.1 डिग्री ज्यादा था। इसका असर यह रहा कि गर्म हवाएं, सूखा, बाढ़, शीत तूफान और जंगल की आग जैसी अत्यधिक आपदाएं आई। साल 1997 से 2016 तक जंगलों की आग ने जीवाश्म ईंधन जलने से पैदा होने वाली कार्बन डाईऑक्साइड के उत्सर्जन के 22% के बराबर कार्बन का उत्सर्जन किया। अभी दुनिया 3.2 डिग्री या उससे ज्यादा की तापमान वृद्धि के रास्ते पर है। औद्योगिक राष्ट्रों को अगले 10 साल तक सालाना कम से कम 7.2 त्न तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करनी होगी। तब पेरिस समझौते के अनुसार 1.5 डिग्री का लक्ष्य पाया जा सकेगा।

सबसे ज्यादा 40% बाढ़ की घटनाएं, 165 करोड़ लोगों पर असर

शोधकर्ताओं के मुताबिक 20 साल में जलवायु आपदाओं में 40% बाढ़ की घटनाएं हैं। इससे 165 करोड़ लोग प्रभावित हुए हैं। तूफान की 28%, भूकंप की 8% और अत्यधिक तापमान की 6% आपदाएं आई। रूस इस साल सितंबर में 130 साल में सबसे ज्यादा गर्म रहा। रूसी स्टेट वेदर सर्विस ने इसकी पुष्टि की है। दुनिया के ज्यादातर देश जलवायु परिवर्तन संबंधी संकटों का सामना कर रहे हैं।

नाइट्रस ऑक्साइड से प्रदूषण में भारत आगे

नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन से पर्यावरण को क्षति पहुंचाने में ब्राजील और चीन के साथ ही भारत भी अग्रणी है। तीनों देशों में कृषि उत्पादन बढ़ाने को नाइट्रोजन खाद का सर्वाधिक इस्तेमाल किया जाता है। इससे नाइट्रोजन खाद जलवायु के लिए गंभीर खतरा बन गई है। नेचर जर्नल में प्रकाशित शोध में यह दावा किया गया है। खतरा इतना बढ़ गया है कि पेरिस समझौते के जलवायुलक्ष्यों को हासिल करना मुश्किल हो गया है।

नाइट्रस ऑक्साइड में और होगी बढ़ोतरी

नाइट्रस ऑक्साइड की बढ़ोतरी का सबसे बड़ा कारण कृषि है। रिपोर्ट में संभावना व्यक्त की गई है कि जानवरों के लिए भोजन और फीड की बढ़ती मांग भी वैश्विक नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन को और बढ़ाएगी। नाइट्रोजन के प्रभाव पर यह पहला बड़ा वैश्विक अध्ययन है।

कार्बन डाई-ऑक्साइड से अधिक खतरनाक

यह गैस कार्बन डाई-आक्साइड की तुलना में तीन सौ गुना अधिक प्रभावित करती है, क्योंकि यह लंबे समय तक वायुमंडल में बनी रहती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि मौजूदा समय में नाइट्रस ऑक्साइड पूर्व औद्योगिक स्तरों के मुकाबले 20 प्रतिशत तक बढ़ा है। विभिन्न मानव गतिविधियों से होने वाले उत्सर्जन के कारण हाल के दशकों में इसकी वृद्धि में और तेजी आई है, जिसके और बढ़ने की आशंका है।

दक्षिण एशिया की हवा सबसे खराब, भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में वायु प्रदूषण से होता है 3.50 लाख गर्भपात

ये देश भारत में वायु गुणवत्ता स्तर को पूरा कर लें तो प्रेगनेंसी लॉस में 7% की कमी संभव

दुनिया के जिन इलाकों की हवा सबसे ज्यादा प्रदूषित है वहां गर्भावस्था का नुकसान, मिसकरेज और मृत बच्चों का जन्म सबसे ज्यादा है। लैंसेट हेल्थ जर्नल के एक नए अध्ययन के मुताबिक वायु प्रदूषण का गर्भपात से सीधा संबंध है। रिसर्चरों

ने पाया है कि भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में उच्च वायु प्रदूषण की वजह से सालाना 3 लाख 49 हजार 681 प्रेगनेंसी लॉस हो रही है। रिसर्च के मुताबिक 'अगर ये देश भारत के वायु गुणवत्ता स्तर को पूरा कर लें तो सालाना प्रेगनेंसी लॉस में 7 फीसदी की कमी आ सकती है। वायु प्रदूषण सीधे मां को प्रभावित करता है। एक अन्य रिसर्च के मुताबिक वायु प्रदूषण मां के गर्भनाल को तोड़ सकता है और गर्भ में भ्रूण तक पहुंचकर नुकसान पहुंचाता है। रिसर्चरों ने दावा किया है कि दक्षिण एशिया में प्रेगनेंसी पर प्रदूषण का प्रभाव दिखाने वाली यह अपने तरह की पहली स्टडी है। रिसर्चरों ने कहा कि स्टडी के निष्कर्ष सार्वजनिक और मातृ स्वास्थ्य को बेहतर करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। खासतौर से कम आय वाले देशों के लिए। दक्षिण एशिया में गर्भ का नुकसान दुनिया में सबसे ज्यादा है और यह दुनिया का सबसे ज्यादा पीएम 2.5 प्रदूषित इलाका है। स्टडी के मुख्य लेखक पीकिंग यूनिवर्सिटी के लेखक असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ टाओ झुई ने कहा कि जब हम सांस लेते हैं तो पीएम 2.5 के सूक्ष्म प्रदूषित कण फेफड़े में चले जाते और खून में प्रवेश कर जाते हैं। सबसे ज्यादा प्रदूषित कण पावर प्लांट, उद्योग और वाहनों के उत्सर्जन से निकलते हैं। इस तरह के कण फेफड़े और हृदय से संबंधित गड़बड़ियों और कमजोर इम्यून सिस्टम के लिए जिम्मेदार होते हैं। भारत और पाकिस्तान के उत्तरी मैदानी इलाकों में वायु प्रदूषण से गर्भपात का जुड़ाव सबसे ज्यादा है। शहरी इलाकों में कम उम्र की माताओं की तुलना में अधिक उम्र की मांओं को खतरा ज्यादा है। रिसर्चरों ने 1998 से लेकर 2016 तक के डाटा का अध्ययन किया। स्टडी में 34,197 महिलाओं को शामिल किया गया जिनको गर्भ का नुकसान हुआ था।

भारत में एयर क्वालिटी डब्ल्यूएचओ के मानक से चार गुना खराब

रिसर्चरों ने साल 2000 से 2016 के बीच पाया कि दक्षिण एशिया में प्रेगनेंसी लॉस का 7.1 फीसदी मां के प्रदूषित हवा में जाने से हुआ। भारत का वर्तमान एयर क्वालिटी स्टैंडर्ड 40 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर है। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन के एयर क्वालिटी गाइडलाइन के मुताबिक 10 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर सुरक्षित माना जाता है। स्टडी कहती है कि दुनिया में कुल प्रेगनेंसी लॉस में 29 फीसदी खराब हवा की वजह से होता है।

साल 2019 में वायु प्रदूषण के कारण देश में 1.16 लाख से अधिक नवजातों की मौत

देश में प्रदूषित होती हवा के बीच वायु प्रदूषण की भयावह तस्वीर दिखाने वाली एक रिपोर्ट आई है। साल 2019 में वायु प्रदूषण के कारण देश में 1.16 लाख नवजातों की मौत हुई। वहीं, दुनियाभर में 4.76 लाख बच्चों की मौत हुई। बुधवार को हेल्थ इफेक्ट्स इंस्टीट्यूट ने स्टेट ऑफग्लोबल एयर-2020 नामक वैश्विक रिपोर्ट जारी की। रिपोर्ट के मुताबिक, इनमें आधी से ज्यादा मौतों का संबंध बाहरी पीएम 2.5 प्रदूषक तत्व से है। इसके अलावा अन्य मौतें कोयला, लकड़ी और गोबर से बने ठोस ईंधन से जुड़ी हुई हैं। भारत में 2019 में बाहरी और घरेलू वायु प्रदूषण के लंबे समय के प्रभाव के कारण स्ट्रोक, दिल का दौरा, डायबिटीज, फेफड़े के कैंसर, फेफड़ों की पुरानी बीमारियों और नवजात रोगों से ये मौतें हुई। नवजात शिशुओं में ज्यादातर मौतें जन्म के समय कम वजन और समय से पहले जन्म से संबंधित जटिलताओं से हुई। शोध में पाया गया कि 64% मौत घरेलू वायु प्रदूषण के कारण हुई। दक्षिण एशिया में आस-पास के प्रदूषण ने भी एक प्रमुख भूमिका निभाई। 50% नवजात की मृत्यु घर के बाहर के वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से जुड़ी थी।

दुनिया में 67 लाख लोगों की मौत, वायु प्रदूषण चौथा कारण

रिपोर्ट के मुताबिक वायु प्रदूषण के कारण साल 2019 में विश्वभर में 67 लाख लोगों की मौत हुई। उच्च रक्तचाप, तंबाकू का सेवन और खराब आहार के बाद समय से पहले मौत का चौथा प्रमुख कारण वायु प्रदूषण को पाया गया है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल समेत दक्षिण एशियाई देश साल 2019 में पीएम 2.5 (धूल के महीन कण के उच्चतम स्तर के मामले में टॉप 10 में रहे हैं।

नदियों में गंदगी न जाए तो वे अपने आप साफ हो जाएंगी

-डीपी डोभाल, पूर्व वैज्ञानिक, वाडिया इंस्टीट्यूट, देहरादुन

2020 के कोरोना काल ने पर्यावरण के संबंध में हमें स्पष्ट रूप से सिखाया कि हवा-पानी को साफरखने के लिए हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं ? लॉकडाउन के दौरान हवा इतनी साफ हो गई थी कि देश के तमाम हिस्सों

से हिमालय पर्वतश्रृंखला के दर्शन होने लगे। शहरों में भी आसमान इतना साफ हो गया कि तारे नजर आने लगे। दिल्ली में यमुना के किनारे पर पानी का रंग इतना साफ हो गया कि मछलियां नजर आने लगीं, गंगा में कई स्थानों पर डॉल्फिन दिखने की खबरें आई। विज्ञान की भाषा में बोलें तो देश के तमाम महानगरों का एक्यूआई 100 के नीचे आ गया, नदियों के पानी में डिजॉल्व ऑक्सीजन बढ़ गई, बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) कम हो गई। पहाड़ी इलाकों में गतिविधियां थमी रहीं, हलचल कम रही सो लैंडस्लाइड कम हुए, डंपिंग न के बराबर रही, नतीजा यह हुआ कि ग्लेशियर से पिघला जल नदियों से होता हुए मैदानों तक शुद्ध रूप में ही पहुंचा। दरअसल, नदियों के प्रदूषण को कम करने के लिए सालों से करोड़ों रुपए की योजनाएं लागू करने के बाद भी जल की गुणवत्ता में इतना सुधार नहीं आ पाया था जो लॉकडाउन के शुरुआती तीन हफ्तों में ही दिखा। सीधा सबक है कि यदि नदियों में औद्योगिक गंदगी नहीं जाएगी तो नदियां खुद -ब -खुद साफ हो जाएंगी। लेकिन सदा के लिए तो लॉकडाउन नहीं रह सकता या उद्योग बंद नहीं किए जा सकते, इसलिए समझना यह है कि किस तरह उद्योगों के मैल को नदियों में पहुंचने से रोका जाए या उसे उपचारित करके ही नदियों में डाला जाए। इसी तरह, सड़कों पर वाहनों का आवागमन बंद था, औद्योगिक इकाइयां और निर्माण कार्य बंद थे, इसलिए धूल व धुआं भी नहीं उड़ रहा था सो हवा की गुणवत्ता में भी भारी सुधार आया। यानी लॉकडाउन ने सीधे तौर पर दिखा दिया कि हमारी किन गतिविधियों के से प्रदूषण बढ़ता है। इसलिए हमें कैसे संतुलन व नियंत्रण रखना है, इसकी सीधी सीख मिली। निर्माण कार्य, औद्योगिक गतिविधियों को हमें किस तरह योजनाबद्ध तरीके से करना है कि वह पर्यावरण को कम से कम प्रदूषित करे। कोरोना संक्रमण का भले ही पूरे विश्व की मानवजाति पर बेहद प्रतिकूल असर रहा हो लेकिन हिमालय के लिए यह अपेक्षाकृत अनुकूल साबित हुआ। इस साल हिमालय पर पर्वतारोहण व साहसिक पर्यटन बिल्कुल बंद रहा, पहाड़ों पर इंसानी गतिविधियां न के बराबर हुई। ऊपर से, यूरोप समेत पूरी दुनिया में ऑटोमोबाइल और कार्बन उत्सर्जन करने वाले उद्योग कई महीने बंद रहे। इससे प्रदूषण पश्चिमी विक्षोभ के साथ हिमालय तक

नहीं पहुंच पाया और इससे ब्लैक कार्बन की मात्रा पिछले कई दशकों से बेहद कम हो गई। अभी ये कितनी कम रही है, इस पर ग्लेशियर वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं। लेकिन उम्मीद है कि परिणाम बहुत अनुकूल रहे हैं। कुल मिलाकर जो ऑक्सीजन पूरी दुनिया को हिमालय देता है, वो हिमालय भी काफी हद तक इस साल तरोताजा हुआ है। यह आंशिक ही सही, लेकिन कुछ फायदे की बात रही। हिमालय में ग्लेशियर का दायरा कम होने के पीछे ग्लोबल वार्मिंग व क्लाइमेट चेंज को जिम्मेदार माना जाता है, ऐसे में खासतौर पर कोरोना काल में हम क्लाइमेट चेंज व ग्लोबल वार्मिंग जैसे बड़े मुद्दों और पर्यावरण से कम से कम छेड़छाड़ के प्रति अपेक्षाकृत ज्यादा जागरूक हुए।

बॉलीवुड की कमाई हिंदी से, पर कामकाज अंग्रेजी में

मुंबई में करीब 100 संस्थान बॉलीवुड को हिंदी सिखा रहे

10 साल में भारतीय फिल्म इंडस्ट्री में हिंदी फिल्मों का राजस्व 110% बढ़ा

भारतीय फिल्म इंडस्ट्री में बॉलीवुड सबसे बड़ी इंडस्ट्री है। यह इंडस्ट्री 10% से बढ़ रही है। हिंदी फिल्मों का ओवरसीज बिजनेस भी 27% से बढ़ रहा है। यह हिंदी की ताकत ही है कि साल 2009 में सभी जुबानों में बनने वाली फिल्मों से आने वाले राजस्व में बॉलीवुड का हिस्सा 19% था जो अब 40% हो गया है। यानी 110% ग्रोथ रही।

मुनाफे के आंकड़ों की बात करें तो बॉलीवुड कमाता तो हिंदी फिल्मों से है लेकिन कामकाज अंग्रेजी में होता है। यहां तक कि फिल्मी कहानियों को कागज पर उकेरने से लेकर स्क्रीन तक पहुंचाने वाले लेखक को आज भी 'स्टार दर्जा' हासिल नहीं है।

आर्टिकल-15 के सह लेखक रहे गौरव बताते हैं कि पहले की तुलना में अभी हालात सुधरे हैं, लेकिन हिंदी फिल्म लेखक को जो क्रेडिट और फीस मिलनी चाहिए वह नहीं मिल रही है। तुलसी कंटेंट के को पार्टनर चैतन्य हेगड़े बताते हैं अभी फिल्म के बजट का 2% उसके लेखन पर खर्च हो रहा है, जबकि गौरव का कहना है कि यह 94% होना चाहिए। देखा जाए तो अंग्रेजी

'प्रधान इस इंडस्ट्री में हिंदी बोलने वाले भी बढ़ रहे हैं। इसकी मिसाल है कि मुंबई में अब 100 से ज्यादा इंस्टीट्यूट हो गए हैं जहां हिंदी भाषा का उच्चारण सिखाया जाता है। लीजा रे, जैकलीन फर्नांडिस और स्कॉटिश इतिहासकार विलियम डालरेंप्ले जैसी हस्तियों को हिंदी सिखा चुकी पल्लवी सिंह बताती हैं 'बॉलीवुड में सुपर एलीट, अंग्रेजी कल्चर के लोग हैं। सेट पर हिंदी न आने की वजह से भाव नहीं आ पाते हैं। वहां ये लोग फंसते हैं, जिस वजह से हिंदी सीखते हैं।

2020 में एंटरटेनमेंट सेक्टर 2.42 लाख करोड़ रु. का होगा

फिक्की की रिपोर्ट के मुताबिक देश में मीडिया एंड एंटरटेनमेंट सेक्टर 2018 में 1.82 लाख करोड़ था, जो 2022 में 2.42 लाख करोड़ रुपए का होगा। कोविड ने ओटीटी की रफ्तार बढ़ा दी है। 2018 में ओटीटी प्लेटफॉर्म ने 1200 घंटे का ओरिजनल कंटेंट जनरेट किया। 2019 में यह 1600 घंटे का हो गया। कोविड में 58% लोग एंटरटेनमेंट एप्स पर थे।

दुनिया की 40% पौधों की प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा, ये 2016 के मुकाबले दोगुनी रफ्तार से गायब हो रहेः रिपोर्ट

हमारे भविष्य और प्रकृति के लिए आधुनिक विकास भस्मासुर बनता जा रहा है। 42 देशों के 200 से ज्यादा वैज्ञानिकों की जलवायु परिवर्तन पर रिसर्च रिपोर्ट यही चेतावनी दे रही है। रॉयल बॉटेनिकल गार्डेन्स, कीव की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के लगभग 40 फीसदी उपयोगी पौधों की प्रजातियों पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। रिपोर्ट कहती है कि ये पौधे दवाइयों, ईंधन और भोजन के रूप में काफी उपयोगी हो सकते है। लेकिन खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन जैसे वैश्विक मुद्दों को हल करने में इन पौधों व फुंगी के इस्तेमाल का अवसर हम खो रहे हैं। द एसेसमेंट ऑफ स्टेट ऑफ द वल्डर्स प्लांट एंड फुंगी नामक रिपोर्ट यूनाइटेड नेशन्स सम्मिट के दिन जारी की गई है। ताकि दुनियाभर के नेताओं पर नष्ट हो रही जैव विविधता को रोकने के मुताबिक मौजूदा पौधों की प्रजातियों का केवल एक छोटा हिस्सा भोजन और ईंधन के

रूप में उपयोग किया जाता है। 7,000 से ज्यादा खाद्य पौधों में भविष्य के फसल की संभावना है।

फिर भी दुनिया की आबादी को खिलाने के लिए कुछ मुट्ठी भर फसलों का ही इस्तेमाल किया जाता है। 2500 से ज्यादा ऐसे पौधे मौजूद हैं जो करोड़ों लोगों को इनर्जी दे सकते हैं। जबकि केवल 6 फसलें, मक्का, गन्ना, सोयाबीन, पाम ऑयल, रेपसीड और गेहूं जैव ईंधन का सबसे बड़ा हिस्सा प्रदान करते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि विभिन्न प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा पहले से काफी तेज हो गया है। साल 2016 में 21 फीसदी पौधों के मुकाबले इस साल 1,40,000 या 39.4 फीसदी पौधों के विलुप्त होने का अनुमान है।

कीव में डायरेक्टर ऑफ साइंस प्रो. एलेक्जेंडर एंटोनेली ने कहा कि हम विलुप्त होने की उम्र में जी रहे हैं। यह जोखिम की चिंताजनक तस्वीर है। इस पर तत्काल कार्रवाई की जरूरत है। हम समय के खिलाफ रेस हार रहे हैं क्योंकि ये प्रजातियां तेजी से गायब हो रही है। हम उनको खोज सकते हैं और उन्हें नाम दे सकते हैं। इसमें से बहुत सारे प्लांट ऐसे हैं जो नई दवाइयों को खोजने के मुश्किल चुनौतियों के हल में महत्वपूर्ण सुराग हैं।

दवाओं में इस्तेमाल होने वाली 723 पौधों की प्रजातियों पर बड़ा संकट

रिसर्च में पाया गया है कि दवाओं में इस्तेमाल हो रही 723 पौधों की प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं। इसका कारण इनकी जरूरत से ज्यादा खेती मानी जा रही है। साल 2019 में विज्ञान में 1942 प्लांट और 1886 फुंगी को नया नाम दिया गया। ये प्रजातियां भोजन, पेय पदार्थ, दवाइयां या फाइबर के रूप में काफी महत्वपूर्ण साबित हो सकती हैं।

क्योंकि बीमारियों से बचाव में यही शरीर की सबसे मजबूत दीवार है

80 साल के बुजुर्ग की इम्यूनिटी भी 20 साल के युवा जैसी हो सकती है

-डॉ चंद्रकांत लहारिया, वैक्सीन और हेल्थ सिस्टम एक्सपर्ट

कोरोना संक्रमण के दौर में इम्युनिटी लगातार चर्चा में है। शरीर में जब कोई बैक्टीरिया या वायरस आता है तो इम्युनिटी (रोग प्रतिरोधक क्षमता) उससे लड़ती है। अच्छी बात यह है कि आप अपनी इम्युनिटी को बेहतर कर सकते हैं। आमतौर पर उम्र बढ़ने के साथ इम्युनिटी घटती है, लेकिन लंदन के किंग्स कॉलेज में 80 साल से अधिक उम्र के 125 साइकिलिस्ट पर हुए एक शोध का नतीजा बताता है कि उस उम्र में भी नियमित एक्सरसाइज से इम्युनिटी को 20 साल के युवा जैसा रखा जा सकता है।

चार बिंदुओं के आधार पर समझिए इम्यूनिटी और उसके प्रभावों को

1. इम्यूनिटी दो तरह की जन्मजात और वैक्सीन वाली

इम्यूनिटी वह क्षमता है जो शरीर के अंदर व बाहर पाए जाने वाले हानिकारक तत्वों और सूक्ष्मजीवों को पहचानने और उन्हें खत्म करने की शक्ति शरीर को प्रदान करती है। इम्यून सिस्टम शरीर में एंटीबॉडी और विशेष प्रकार के टी-सेल्स का निर्माण करता है। इम्यूनिटी दो प्रकार की होती है। पहली है, सहज या प्राकृतिक इम्यूनिटी। यह जन्मजात होती है। सभी परिस्थितियों में एक ही तरीके से काम करती है। दूसरी है, एडैप्टिव। यह किसी विशेष रोगजनक के प्रति स्पेसिफिक होती है। वैक्सिनेशन के बाद इस तरह की इम्यूनिटी पैदा होती है।

2. मौसम का इम्यूनिटी पर नहीं होता असर

इम्यूनिटी शरीर के अदंर होती है। इस पर बाहरी फैक्टर्स जैसे कि मौसम में बदलाव आदि का असर नहीं होता है। हालांकि मौसम व्यक्ति के स्वास्थ्य को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकता है। जैसे सर्दियों में कम तापमान में कुछ वायरस आसानी से फैलते हैं। साथ ही सर्दियों में लोग एक दूसरे के काफी नजदीक रहते हैं जिससे इन वायरस के फैलने का खतरा और बढ़ जाता है।

3. ज्यादा चीनी, कम नींद मतलब इम्यूनिटी कमजोर

सोते समय इम्यून सिस्टम साइटोकाइन नाम का प्रोटीन रिलीज करता है। अनियमित अथवा अपर्याप्त नींद से साइटोकाइन का बनना प्रभावित होता है। एक्सरसाइज से एंटीबॉडी और व्हाइट ब्लड सेल्स में बदलाव होते हैं। व्हाइट ब्लड सेल्स बीमारियों से लड़ने का काम करती है। एक्सरसाइज के दौरान शरीर के विभिन्न हिस्सों

में रक्त अधिक प्रभावी तरीके से पहुंचता है। अत्यधिक एंग्जाइटी और तनाव, अस्वस्थकर डाइट खासकर अत्यधिक वसा और शर्करायुक्त भोजन, धूम्रपान और स्टेराइड्स आदि इम्यूनिटी को कमजोर कर सकते हैं।

4. कमजोर इम्यूनिटी यानी बीमारी से लंबा संघर्ष

कमजोर इम्यूनिटी का सीधा अर्थ है कि व्यक्ति को वायरस और बैक्टीरिया से बचाव के लिए अधिक संघर्ष करना होगा। वह आसानी से बीमार पड़ेगा और ठीक होने में अधिक समय लगेगा। मजबूत इम्यूनिटी वाले लोगों की तुलना में इनमें सक्रमण के गंभीर लक्षण दिखाई पड़ते हैं। कई ऐसी बीमारियां हैं जिनके चलते इम्यून सिस्टम कमजोर हो जाता है ऐसे व्यक्तियों में अन्य बीमारियों का खतरा सर्वाधिक होता है।

संस्कृत-तमिल के समागम से उभरीं कई अन्य भाषाएं

देवदत्त पटनायक, प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों के आख्यानकर्ता और लेखक

मेरे माता-पिता पचास साल पहले ओडिशा से चेनई के रास्ते बंबई आकर बस गए। मैं ओडिया और मराठी दोनों भाषाएं काफी अच्छे से बोल लेता हूं। पहली मेरे पूर्वजों की भाषा है और दूसरी मेरे निवास स्थल की भाषा। इसलिए मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि ओडिया को भारत की शास्त्रीय भाषाओं में से एक घोषित किया गया, जबकि मराठी को इस दर्जे के लिए औपचारिक आवेदन देना पड़ा है।

किसी भाषा को शास्त्रीय भाषा मानने के लिए कुछ मापदंड हैं -उस भाषा का इतिहास 1500 से 2000 साल पुराना होना चाहिए, उसका साहित्य और उसके ग्रंथ प्राचीन होने चाहिए, उसकी साहित्यिक परम्परा मौलिक होनी चाहिए और किसी अन्य भाषा से मिलती-जुलती नहीं होनी चाहिए। ओडिया स्पष्टतः इन सभी मानदंडों को पूरा करती है। संभवतः मराठी भी करती है, लेकिन उस पर केंद्र सरकार के फैसले का इंतजार है।

भाषाएं नदियों जैसी होती हैं। नए क्षेत्रों में जाने पर वे बदलती हैं, उपनदियों जैसे एक साथ आती हैं और शाखाएं बनकर उपभाषाएं बनती हैं। किसी भाषा को 'शास्त्रीय' भाषा घोषित करने से उसे दूसरी भाषाओं की तुलना में अधिक 'प्राचीन', अधिक 'शुद्ध' और अधिक 'मौलिक' मानने का एक आग्रह पैदा हो सकता है। ऐसा

करने में हमें हमारे अहं से सावधान रहना चाहिए। लेकिन हमें किसी भाषा के इतिहास और भूगोल को स्वीकार करने से भी खुद को रोकना नहीं चाहिए।

प्रकृति से आया शब्द 'प्राकृत' उन भाषाओं के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो अपने आप उभरीं, लोगों की आपसी बातचीत से। उधर संस्कृति से आया 'संस्कृत' शब्द शब्दशास्त्रियों द्वारा शुद्ध भाषा के लिए इस्तेमाल किया जाता है। तार्किक रूप से देखा जाए तो प्राकृत भाषाएं पहले आई होंगी और संस्कृत बाद में। लेकिन लोकप्रिय विद्या के अनुसार ऋषि संस्कृत को उसके उत्कृष्ट रूप में देवताओं से मनुष्यों तक ले आए और भारत की हर भाषा संस्कृत के बिगड़ने से उभरी। लेकिन भाषाविद् शायद इससे सहमत नहीं होंगे।

वास्तव में वैदिक संस्कृत पौराणिक संस्कृत से बहुत अलग है। पौराणिक संस्कृत का श्रेय ऋषि पाणिनि को दिया जाता है। अपने एक प्रसिद्ध उद्धरण में वे कहते हैं, 'बर्तनों के लिए आप कुम्हार के पास जाते हैं लेकिन भाषा के लिए भाषाविद को भी बाजार जाना पड़ता है।' इस प्रकार उन्होंने स्वीकार किया कि भाषा का निर्माण और विकास मानवीय बातचीत से होता है, न कि किसी अधिकारी द्वारा। 'संस्कृत' को ब्राह्मणों की भाषा बहुत बाद में कहा जाने लगा।

ब्राह्मणों ने संस्कृत भाषा को जीवित बनाए रखा, जबकि प्राकृत ढेर सारी अन्य भाषाओं में बदल गई। शुरू में पाली, मगधी और अर्ध-मगधी भाषाएं उभरीं और फिर पश्चिम भारत में मराठी व पूर्व भारत में ओडिया उभरी। तमिल दक्षिण भारत की भाषा है और उसका श्रेय महान ऋषि अगस्त्य को दिया जाता है। तमिल संभवतः संस्कृत से भी प्राचीन भाषा है, लेकिन हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते।

संस्कृत के साथ मिलकर तमिल से कन्नड़, तेलुगु और मलयालम भाषाएं उभरीं, जो स्वयं शास्त्रीय भाषाएं हैं। वेदों में भी गैर संस्कृत, द्रविड़ शब्द मिले हैं, जो तमिल भाषा की प्राचीनता की ओर इशारा करते हैं।

उत्तर भारत में सैन्य शासक और व्यापारी फारसी और अरबी भाषाएं लाए। उत्तर भारत की स्थानीय भाषाओं, अपभ्रंश, के साथ ये दो भाषाएं मिल गई और कई नई भाषाएं बनी जैसे खड़ीबोली, अवधी और ब्रजभाषा। इन भाषाओं ने हिंदी और उर्दू को जन्म दिया जो राजनीतिक कारणों से अब अधिकांशतः भारत और पाकिस्तान में

ही बोली जाती हैं। आधुनिक राष्ट्र भाषाओं को अक्सर निर्धारित करते हैं, जबकि भाषाएं स्वभावतः तरल होती हैं।

फिर सैकड़ों आदिवासी भाषाएं भी तो हैं। विद्वानों ने वेदों में 300 से अधिक मुंडा (आदिवासी भाषाओं का एक परिवार) शब्द ढूंढ निकाले हैं। प्राध्यापक गणेश देवी ने पीपुल्स लिंगविस्टिक सर्वे ऑफइंडिया शुरू किया। उनके अनुसार जनगणना में भारत में सिर्फ 122 भाषाएं बताई गई हैं, जबकि असल में भारत में तकरीबन 780 विभिन्न भाषाएं हैं, जिनके बोलनेवालों का दुनिया को देखने का नजरिया भी बिलकुल अलग है। इनमें से कई भाषाओं की कोई लिपि नहीं है और अंत में उनके बोलनेवाले भी बहुत कम रह जाएंगे। यह इसलिए कि कई लोग एक-सी दुनिया में रहना चाहते हैं, ताकि सिर्फएक ही भाषा बोले जाने के कारण दक्षता बनी रहे।

(दैनिक भास्कर)

इन्हें आदतों में शामिल करें

कोरोना ने नुकसान पहुंचाने के साथ-साथ कई सीख भी हमें दी है। इसने वैश्विक महामारी से लड़ने की क्षमता विकसित की है। हमें अपनी सेहत के बारे में सोचने का मौका और समय दिया है। सौ साल तक हम कैसे जीवित रहे यह सीख अब दोबारा से मिली है। अभी तक हम अपनी जरूरतों के अनुसार ही सुनते आ रहे थे। कोरोना ने शरीर की और जरूरतों को सुनने के लिए प्रेरित किया है।

महामारी से खुद और दूसरों को बचाने का मंत्र

इसमें हमें लॉकडाउन का मतलब बताया है। यह भी बताया कि फ्लू, टीबी, डायरिया आदि एक से दूसरे में फैलने वाली बीमारियों का मैंनेजमेंट कैसे कर सकते हैं। यह भी बताया कि कैसे खुद को आइसोलेट करें ताकि बीमारी दूसरों में न फैले। इससे डायरिया, टायफाइड, टीबी और फेफड़ों से जुड़ी बीमारियों से बचा जा सकता है लेकिन कोरोना के साथ इसे भूल गए तो ये बीमारियां फिर से पनपने लगेंगी। कुछ समय बाद दूसरी महामारी आ जाएगी।

हैल्थ का बजट तय करें

कोरोना ने हमें युद्ध में जीतने की सीख दी है। देश के लिए सुरक्षा व स्वास्थ्य दो चीजें महत्त्वपूर्ण हैं। कोरोना वायरस और मनुष्य के बीच भी एक युद्ध चल रहा है।

बीमारियों से लड़ने के लिए व्यक्ति व देश स्तर पर हैल्थ का बजट रखना होगा, नहीं तो जंग हार जाएंगे। सेहत को प्राथमिकता देनी होगी।

इम्युनिटी का सही अर्थ

कोरोना ने इम्युनिटी का सही अर्थ समझाया है। यह केवल डाइट से नहीं है। क्या, क्यों कैसे और कब खाना चाहिए। यह भी जरूरी है। कोरोना से शरीर में इंप्लेमेशन (सूजन) होने पर निमोनिया बिगड़ने पर कई बीमारियां कैसे बिगड़ जाती हैं यह भी देखा जा रहा है। इसलिए इम्युनिटी का महत्त्व बढ़ा है।

प्रदूषण नियंत्रित कर गंभीर बीमारियों को रोक सकते

लॉकडाउन में प्रदूषण का स्तर कम हो गया था। कोरोना ने हमें यह भी सीख दी है कि प्रदूषण को रोककर कैंसर जैसी दूसरी गंभीर बीमारियों से बचाव किया जा सकता है। बुजुर्गों की सेहत का ध्यान रख सकते हैं। कोविड ने यह भी बताया है कि कैसे वायरस के साथ रहा जा सकता है। मास्क का इस्तेमाल शुरू हुआ तो दूसरी गंभीर बीमारियों का भी खतरा कम हुआ है। इस दौरान हार्ट अटैक के मामले भी कम देखने को मिले हैं।

नमस्ते और संयुक्त परिवार का महत्त्व

संयुक्त परिवार और नमस्ते को दुनिया ने अपनाया। यह केवल कोरोना के बाद ही संभव हुआ है। हमें झुककर बात करने का सही अर्थ भी समझ में आया है कि सिर नीचे कर बात करने से मुंह के वायरस सामने वाले तक नहीं पहुंचते हैं। संक्रमण नहीं फैलता है। जिंक की पूर्ति के लिए अंकुरित चीजें दोबारा खाने लगे।

केवल मीठा नहीं, कड़वा और कसैला भी जरूरी है

पिछले कुछ वर्षों में आहार में काफी बदलाव आया है। तीन स्वाद मुख्य होते हैं। मीठा, कसैला और कड़वा। अभी आहार में 80% तक मीठा ही खा रहे है लेकिन कोरोना ने कसैला और कड़वा खाने का सबक दिया है। क्योंकि मीठा खाना शरीर में इंप्लेमेशन को बढ़ाता है जबकि कसैला-कड़वा एंटीइंफ्लेमेटरी होते हैं।

-हेमंत पाण्डेय

ईस्वी सन् 2021 की पूर्व सन्ध्या में सृजित कविता-

मैं हूँ धन्य स्व-परम सत्य के ज्ञान से

(मम परम सत्य को नहीं जानते भौतिक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, न्यायाधीश से ले रूढ़िवादी-संकीर्ण-कट्टर धार्मिक आदि।)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-निर्बल से लड़ाई बलवान् की....)

मैंने स्व-परम सत्य को जाना...2
मैं हूँ आत्मा...बनूंगा परमात्मा...शुद्ध-बुद्ध-आनन्द रूप आत्मा...
मैंने स्व-परम सत्य को जाना...(ध्रुव)...
मैं हूँ स्वयम्भू-सनातन-चैतन्य...अनन्त गुण गण धाम...
अनन्त ज्ञान दर्शन सुखवीर्य मय...अस्तित्व-वस्तुत्व-अगुरुलघु गुण...(1)...
मम इह स्वरूप को न जानते...भौतिक वैज्ञानिक आदि...
जीवों की उत्पत्ति कब क्यों हुई...क्या है स्वरूप-उद्देश्य आदि...(2)...
अनादिकालीन कर्म सम्बन्ध से...बना हूँ अशुद्ध-संसारी...
जन्म ग्रहण किया चौरासी लक्ष योनि में...नहीं जाने जीव-विज्ञानी...(3)...
द्रव्यकर्म उदय से भावकर्म होते...जो है राग-द्वेष-मोह मय...
ईर्ष्या तृष्णा घृणा वैर विरोध आदि...जिसे न जानते मनोविज्ञानी...(4)...
नोकषाय उदय से हास्य रति अरति...शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद...
पुरुष नपुंसक रूपी विभाव होते...न जानते हैं मनोविज्ञानी...(5)...
वैज्ञानिक, न्यायाधीश, समाज सुधारक...राजनीतिज्ञ व अर्थशास्त्री...
कानून-सम्विधान कर्त्तादि न जानते...जो होते हैं अनात्मवादी...(6)...
तथाहि सङ्कीर्ण कट्टर रूढ़िवादी...धार्मिक भी न जानते मम (स्व) रूप...
सत्ता-सम्पत्ति-ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि...वर्चस्व वाले भोगी-उपभोगी...(7)...
आत्मविशुद्धि युक्त...श्रद्धा-प्रज्ञा सहित...जो होते हैं आत्मानुभवी...
वे ही जानते मम स्वरूप को...वे ही होते हैं परमज्ञानी...(8)

इसलिए हूँ मैं धन्य, अन्य से मैं भिन्न...जो होते हैं मोही-कुज्ञानी...
मम शुद्ध स्वरूप, प्राप्त करने हेतु...'कनक सूरी' बना आत्मज्ञानी/(आत्मध्यानी)...(9)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-31/12/2020, रात्रि-8.38

(यह कविता वेबिनार में ब्र.सन्ध्या भगिनी की मेरी समता सम्बन्धी जिज्ञासा के उत्तर में जो मैंने स्व-आत्मा के बारे में कहा, उससे प्रेरित हो बनी।)

आध्यात्मिक विजय के लिए सिद्धों के गुणस्मरण-गुणानुवाद-गुणानुकरण

(चाल : चाँद सी महबूबा हो...,आत्मशक्ति....,जय हनुमान....,जिस देश में....)

हे! शुद्ध-बुद्ध आनंद नमः...हे! ज्ञानदर्शन सुख नमः।
हे! सच्चिदानंद कंद नमः...हे! सत्य सनातन आत्मा नमः।।
हे! अक्षत अनंतगुण नमः...हे! द्रव्यगुण-पर्याय नमः।
हे! घाती-अघाती नाशक नमः....हे! अष्ट प्रमुख गुणाय नमः।।
हे! रत्नत्रमय आत्मा नमः...हे! ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता नमः।
हे! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नमः...हे!, एक अनेक (अनंत) स्वरूप नमः।।
हे! जन्म-जरा-मृत्यु रिक्त नमः...हे!, तन-मन अक्ष रिक्त नमः।
हे! द्रव्य-भाव-नोकर्म रिक्त नमः...हे! अस्तित्व-वस्तुत्व युक्त नमः।।
हे! संसार चक्रनाशक नमः...हे! लोकालोक ज्ञायक नमः।
हे! सर्वज्येष्ठ सर्वश्रेष्ठ नमः...हे! पावन परमेश्वर नमः।।
हे! परमपरमेष्ठी सिद्ध नमः...हे! परम अमृत तत्त्व नमः।
हे! परम पुरुष आत्मा नमः...हे! लिंगातीत चैतन्य नमः।।
हे! आत्मस्थित सर्वगत नमः...हे! आत्मज्ञाता सर्वज्ञाता नमः।
हे! पूज्य से भी पूजनीय नमः...हे! कनक सूरी द्वारा पूजनीय नमः।।

बहिरात्मा देहादि पर को आप (मैं) जानता

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाणु मुणेइ।

सो बहिरप्पा जिण भणिउ पुणु संसार भमेइ।।(10) यो.सार

पद्य-देहादिक को पर कहा जिनेन्द्र ने, उसे ही जो स्व स्वरूप माने।
उसे बहिरात्मा जिनेन्द्र ने कहा, वह संसार में भ्रमण करे।।
समीक्षा-केवल बाह्य भौतिक वस्तु ही, नहीं होते पर स्वरूप।
स्व-शुद्धात्मा के अतिरिक्त सभी ही, होते भी हैं पर स्वरूप।।
शरीर भी होता पर स्वरूप, नोकर्म पुद्गल से होता निर्मित।
विज्ञान के अनुसार एक्स.वाई से बना,अथवा डी.एन.ए.,आर.एन.ए. से बना।।
स्थूल रूप से रज वीर्य से बना, हड्डी माँस रक्त चर्मादि से।
अतः शरीर भी भौतिक होने से, नहीं सम्भव कभी भी आत्मरूप।
तथापि जो शरीर को ही 'मैं' मानते, करते हैं अहंकार-ममकार।
वे सभी अनात्मवादी नास्तिक, अन्धविश्वासी मिथ्यात्वी महामूढ़।।

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।

मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।।(7) इष्टो.

Deluded by infatuation the knowing being is unable to acquire adequate knowledge of the nature of things, in the same way as a person who has lost his wits in coneguence of eating intoxicating is unable to know thow them properly!

''धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं

होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

प्रश्न - अमूर्तिक आत्मा किस प्रकार से आविर्भूत होता है, आबद्ध होता है?

उत्तर - शुद्ध आत्मा अमूर्तिक होते हुए भी संसारी जीव अभी अमूर्तिक नहीं है कर्म से आबद्ध संसारी जीव व्यवहारनय की अपेक्षा मूर्तिक है।

नशे को पैदा करने वाले कोद्रव - कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट, पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसी प्रकार कर्म बद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब सकते हैं।

समीक्षा- सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य, तत्त्व पदार्थों में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत रूप श्रद्धान करता है। सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोम्मट्टसार में कहते हैं-

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं च ण सद्दहदि।

सद्दहदि असब्भावं उवइट्टं वा अणुवइट्ठं।।(18)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हन्त आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है और ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन, प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं। तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवद्दिट्ठं।

जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग लग्गरवो।।(72) (रयणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छन्द होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचेदि हुमहुरं खुरसं जहा जरिदो।।(17)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता।

दृष्टान्त - पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसन्द नहीं करता, उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

इंदिय विसय सुहादिसु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्वं।

बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।।(29)(रयणसार)

जो मूढ़मति इन्द्रियजनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते हैं उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य -भौतिक हानि वृद्धि में अपनी

हानि-वृद्धि मानकर सुखी दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकान्त, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यावादियों के 363 भेद होते हैं।

मोही पर को अपनाता

वपुर्गृहंत धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते।।(8)

All the objects, the body, the house, the wealth, the wife, the son, the friend, the enemy and the like are quite different in their nature from the soul; the foolish an, however, looks upon then as his own!

स्व-पर विवेकहीन मूढ़ मोही जीव शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र मित्र यहाँ तक कि शत्रु को भी जो कि सर्वथा स्वयं से भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। सर्वथा सर्व प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से जो स्व स्वरूप से अन्य है, भिन्न है ऐसे परद्रव्य को भी दूढ़तर मोह से आविष्ट जीव अपना मान लेता है। शरीर जो कि अचेतन परमाणुओं से (रक्त, माँस, हड्डी, चर्म आदि) निर्मित होने के कारण अचेतन स्वरूप है उसे भी अपना मान लेता है। इसी प्रकार घर, धन, स्पष्ट रूप से भौतिक जड़ वस्तु से निर्मित है उसे भी अपना मान लेता है। भार्या, पुत्र, मित्र तथा शत्रु जो कि शारीरिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से भी भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। यहाँ पर शरीर आदि को हितकारी मानता है और शत्रु आदि को मेरा अहितकारी मानकर उसमें भी मेरा शत्रु है ऐसा अपनापन रखता है।

समीक्षा - शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ही स्व-चतुष्टय है और इससे भिन्न समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव से भिन्न है, पर है तथापि मोही जीव मोह के कारण पर आत्म स्वरूप को भी स्व-स्वरूप मान लेता है, जिससे उसकी स्वार्थ सिद्धि होती हो, इन्द्रियजनित सुख मिलता हो उसको अपना

हितकारी मानकर अपना मानता है और राग करता है तथा जिससे स्वार्थसिद्धि नहीं होती है, इन्द्रियजनित सुख नहीं मिलता हो उसको अपकारी मानकर उससे द्वेष करता है। एक के प्रति रागात्मक संबंध है तो दूसरे के प्रति द्वेषात्मक संबंध है। मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कारण श्रद्धा रूप से तथा आचरण रूप से शरीर आदि पर वस्तु में मोह करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव श्रद्धा रूप से परद्रव्य को पर मानते हुए भी जब तक चारित्रमोहनीय कर्म का उदय रहता है तब तक वह पर द्रव्य को व्यवहार रूप से, आचरण रूप से अपना मानता है।

ज्ञानी को देहादि पर को आत्मा नहीं मानना चाहिए

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाणु ण होहिं।

इउ जाणे विणु जीव तुहुँ अप्पा अप्प मुणेहिं।।(11) यो.सार

पद्य- देहादिक को जो पर कहा है, भी न अपना स्वरूप होते।

यह जानकर हे! आत्मन तू, स्व आत्मा को अपना स्वरूप मानो।।

पुद्गल द्रव्य का उपकार

शरीवाङ् मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।।(9) मोक्ष.

शरीर वाङ् मनस्प्राण-अपानाः जीवानां पुद्गलानां उपकारः।

The function of matter forms the physical basis of the bodies, speech mind the respiration of the souls.

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है।

इस सूत्र में संसारी जीवों के लिए पुद्‌गल का क्या-क्या उपकार है उसका वर्णन किया गया है। संसारी जीवों के पाँच शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्‌वास पुद्‌गल से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्‌गल स्वरूप हैं। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्‌गलिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीर आदि बनते हैं उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है-

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।

णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं।।(607) (गो.सा.)

तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियक,

आहारक, ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तेजोवर्गणा रूप स्कन्ध के द्वारा तैजस शरीर बनता है।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।

अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।(608)

भाषा वर्गणा के द्वारा चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल के आकार का द्रव्यमन तथा कार्माण वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

''शरीर आदि पौद्गलिक हैं'' इसको सिद्ध करने के लिए तार्किक शिरोमणि भट्टअकलंक देव ने राजवार्तिक में तार्किक एवं वैज्ञानिक प्रणाली से बहुत सुन्दर वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार है-

1. **शरीर पौद्गलिक**-औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण पाँचों शरीर कर्म मूलतः सूक्ष्म होने से अप्रत्यक्ष हैं और जो स्थूल है वह प्रत्यक्ष है। मन अप्रत्यक्ष ही है। वचन और श्वासोच्छ्वास कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष हैं-क्योंकि ये इन्द्रियों के विषय नहीं हैं अतः इन्द्रियों से अतीत हैं। अतः शरीर पुद्गल है।

2. **कार्माण शरीर पौद्गलिक**-यद्यपि कार्माण शरीर आकार रहित है तथापि मूर्त्तिमान्, पुद्गलों के सम्बन्ध से अपना फल देता है, जैसे ब्रीहि (चावल) आदि धान्य, पानी, धूप आदि मूर्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध से पकता है। इसलिए पौद्गलिक है, उसी प्रकार कार्माण शरीर भी गुड़ कंटक आदि मूर्त्तिमान पुद्गल द्रव्यों के सम्बन्ध से पकता है, अर्थात् इष्टानिष्ट बाह्य सामग्री के निमित्त से कार्माण शरीर अपना फल देता है, अतः कार्माण शरीर पौद्गलिक है, क्योंकि कोई भी अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से नहीं पकता तथा अमूर्त्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ से विपच्यमान दृष्टिगोचर नहीं होता।

वचन पौद्गलिक-पुद्गल के निमित्त से होने वाले दोनों प्रकार के वचन पौद्गलिक हैं। वचन दो प्रकार के हैं-द्रव्यवचन और भाववचन। दोनों ही पौद्गलिक हैं क्योंकि दोनों ही पुद्गल के कार्य हैं अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही होते हैं। भाववचन, वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय के निमित्त से होते हैं।

अतः भावमन पुद्गल का कार्य होने से पौद्गलिक है; यदि वीर्यान्तराय और मति-श्रुत-ज्ञानावरण रूप पौद्गलिक कर्मों का क्षयोपशम नहीं हो तो भाववचन हो ही नहीं सकता। भाववचन के सामर्थ्य वाले आत्मा के द्वारा प्रेर्यमाण पुद्गल वचनरूप से परिणत होते हैं अर्थात् आत्मा के द्वारा तालु आदि क्रिया से जो पुद्गल वर्गणाएँ वचनरूप परिणत होती हैं उसे द्रव्यवचन कहते हैं। श्रोतेन्द्रिय का विषय होने से द्रव्य वचन भी पौद्गलिक हैं।

प्रश्न- यदि शब्द पौद्गलिक है तो एक बार ग्रहण होने के बाद उनका पुनः ग्रहण क्यों नहीं होता? अर्थात् एक बार उच्चारण करने के बाद वही शब्द पुनः सुनाई क्यों नहीं देता?

उत्तर- बिजली के समान असहंतत्व होने से पुनः गृहीत नहीं होते हैं। जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध बिजली द्रव्य एक बार चमक कर फिर शीघ्र ही विशीर्ण; (नष्ट) हो जाता है अतः पुनः आँखों से दिखाई नहीं देता हैं, उसी प्रकार श्रोतेन्द्रिय के द्वारा एक बार उपलब्ध (सुने गये) वचन सम्पूर्ण से शीघ्र ही विशीर्ण हो जाने से पुनः दुबारा नहीं सुनाई देते।

प्रश्न- यदि शब्द पौद्गलिक हैं तो चक्षु आदि के द्वारा शब्दों का ग्रहण क्यों नहीं होता?

उत्तर- घ्राण के द्वारा ग्रहण करने योग्य होने पर गन्धद्रव्य रसादि की अनुपलब्धि के समान चक्षु आदि के द्वारा गृहीत नहीं होते हैं। जैसे घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य गन्धद्रव्य के साथ अविनाभावी रूप, रस, स्पर्श आदि विद्यमान रहकर के भी सूक्ष्म होने से घ्राणेन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध नहीं होते अर्थात् घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होते हैं, उसी प्रकार श्रोतेन्द्रिय के विषयभूत शब्द सूक्ष्म होने से चक्षु आदि शेष इन्द्रियों के द्वारा गृहीत नहीं होते।

शब्द को अमूर्त्तिक कहना उचित नहीं है क्योंकि शब्द का मूर्त्तिमान पदार्थ के द्वारा ग्रहण, प्रेरणा और अवरोध देखा जाता है। शब्द अमूर्त्तिक है 'अमूर्त्त आकाश का गुण होने से' यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि मूर्तिमान, पौद्गलिक पदार्थों के द्वारा ग्रहण होता है। कर्णेन्द्रिय का विषय होने से मूर्तिमान श्रोतेन्द्रिय के द्वारा उसका ग्रहण होता है जो अमूर्त होता है वह किसी मूर्तिमान इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होता। वायु के द्वारा प्रेरित रूई की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेरित किया जाता है क्योंकि

विरूद्ध दिशा में स्थित व्यक्ति को वह शब्द सुनाई देता है, अर्थात् जिस तरफ की वायु होती है उधर ही अधिक सुनाई देता है, वायु के प्रतिकूल होने से समीपस्थ को भी सुनाई नहीं देता है।

इससे अनुमान होता है कि शब्द प्रेरित है और यंत्र के द्वारा प्रेरित कर दूसरे देशों में भिजवाया भी जाता है। अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा प्रेरित नहीं होता। नल, बिल, रिकार्ड आदि में नदी के जल की तरह शब्द रोका भी जाता है, परन्तु अमूर्तिक पदार्थ मूर्तिमान् किसी पदार्थ के द्वारा अवरूद्ध हुआ नहीं देखा जाता है।

मूर्तिमान् पदार्थों के द्वारा अभिभूत-तिरस्कृत होने से भी शब्द को मूर्तिमान् जानना चाहिए। जैसे सूर्य के प्रकाश से अभिभूत (तिरोभूत) होने वाले, होने से तारा आदि मूर्तिक हैं, उसी प्रकार सिंह की दहाड़, हाथी की चिंघाड़ और भेरी का घोष आदि महान् शब्द के द्वारा शकुनि (पक्षियों) के मन्द शब्द तिरोभूत होते हैं तथा कांसी आदि के बर्तन गिरने पर उत्पन्न ध्वनि, ध्वनि अन्तर के आरम्भ में हेतु होती है। अथवा गिरि-गह्वर-कूप आदि में शब्द करने पर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। पर्वत की गुफाओं आदि से टकराकर प्रतिध्वनि होती है। अतः शब्द मूर्तिक है।

प्रश्न- अमूर्तिक पदार्थों का भी मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा तिरोभाव देखा जाता है, जैसे मूर्तिमान मदिरा के द्वारा अमूर्तिक विज्ञान (इन्द्रियज्ञान) का तिरोभाव देखा जाता है, इसलिए मूर्तिमान पदार्थों से मूर्तिमान पदार्थों का ही अभिभव होता है, यह निश्चित हेतु नहीं है।

उत्तर– मूर्तिक मदिरा के द्वारा इन्द्रियज्ञान का जो अभिभव देखा जाता है वह भी मूर्त्त से मूर्तिक का ही अभिभव है, क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञान इन्द्रियादि पुद्‌गलों के आधीन होने से पौद्‌गलिक है, अन्यथा (यदि विज्ञान पौद्‌गलिक नहीं है तो) आकाश के समान विज्ञान का भी मदिरा आदि के द्वारा अभिभव नहीं हो सकता था। अतः उपर्युक्त हेतुओं से शब्द पौद्‌गलिक पदार्थ सिद्ध होता है।

4. प्राणापान पौद्‌गलिक- कोष्ठ (उदर) की वायु को उच्छ्‌वासलक्षण प्राण कहते हैं। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय

की अपेक्षा रखने वाला आत्मा के द्वारा शरीर कोष्ठ से जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसको उच्छ्वासलक्षण प्राण कहते हैं।

बाह्य वायु को अभ्यन्तर करना अपान है। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपाङ्ग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो बाह्य वायु भीतर ली जाती है, उस निःश्वास को अपान कहते हैं। ये सोच्छ्वास (प्राणपान) आत्मा के जीवन में कारण होते हैं अतः इनके द्वारा पुद्गल आत्मा का उपकार करता है। इन सब का प्रतिघात देखा जाता है अतः ये सब मूर्तिक हैं। उन प्राणापान और वाङ् (वचन), मन, श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात आदि होने से इन को मूर्तिमान् (पौद्गलिक) समझना चाहिए। जैसे-भय के कारणों से तथा वज्रपात आदि के शब्दों के द्वारा मन का प्रतिघात और मदिरा आदि के द्वारा मन का अभिभव देखा जाता है। हाथ से मुख और नाक को बन्द कर देने पर श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात और कण्ठ में कफ आदि के आजाने से श्वासोच्छ्वास का अभिभव देखा जाता है। अतः मन और श्वासोच्छ्वास पौद्गलिक हैं क्योंकि मूर्तिक पदार्थों के द्वारा अमूर्तिक पदार्थ के अभिघात और अभिभव (रूकावट) नहीं हो सकते।

श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। इनके द्वारा आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है; क्योंकि प्राणापानादि कर्म आत्मा के कार्य हैं अतः आत्मा रूपी कारण के बिना श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य नहीं हो सकता, जैसे किसी यन्त्रमूर्ति की चेष्टाएँ उसके प्रयोक्ता को अस्ति बताती हैं उसी प्रकार प्राणापानादि क्रियाएँ क्रियावान् आत्मा की सिद्धि करती हैं।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च।।(20)

जीवानां सुख-दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाश्च पुद्गलानामुपकारो भवति।

Soul experiences pain, pleasure, life and death through the agency of matter.

सुख, दुःख, जीवन और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं।

19 नम्बर सूत्र में बताया गया कि, परिमाण विशेष से गृहीत पुद्गल जैसे-शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन, व्यवहरण, चिन्तवन और श्वोसोच्छ्वास रूप से जीव का उपकार करते हैं वैसे सुख आदि भी पुद्गलकृत

उपकार हैं उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन, मरण भी पुद्गलकृत उपकार है।

(1) **सुखः** बाह्य कारणों के कारण और साता वेदनीय के उदय से जो प्रसन्नता होती है, उसे सुख कहते हैं। जब आत्मा से बद्ध साता वेदनीय कर्मद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होता है।

(2) **दुःख**-असाता वेदनीय कर्म के उदय से आत्म परिणामों में संक्लेश होता है वह दुःख है। जब आत्मा से बद्ध असाता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्रादि बाह्य कारणों से परिपाक को प्राप्त होते हैं, तब आत्मा के जो संक्लेश परिणाम होते हैं, उसे दुःख कहा जाता है अर्थात् सातावेदनीय के उदय में सुख और असाता वेदनीय के उदय को दुःख कहते हैं।

(3) **जीवित** : भवस्थिति में कारणभूत आयुकर्म द्रव्य से सम्बन्धित जीव के प्राणपान लक्षण क्रिया का उपरम नहीं होना ही जीवित है। भवधारण में कारण आयु नाम का कर्म है। उस आयु कर्म के उदय से प्राप्त भवस्थिति को धारण करने वाले जीव के पूर्वोक्त प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) क्रिया का चालू रहना उसका उच्छेद नहीं होना ही जीवित है।

(4) **मरण** : उस श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही मरण है। जीव के जीवित में कारण भूत श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही जीव का मरण है।

आत्मज्ञानी ही निर्वाण पाता

(आत्मा को ही अपना मानने वाला ही आत्मज्ञानी)

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाण लहेहि।
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुं तहु संसार भमेहि।।(12) यो.सा.

पद्य- आत्मा को ही जो आत्मा माने, वे ही निर्वाण को पाते।
पर को जो आत्मा माने है, तो तू संसार में भ्रमण करे।।

समीक्षा- स्व को ही स्व पर को ही पर मानना होते सम्यक्त्व व सही ज्ञान।
यही भेद विज्ञान या वीतराग ज्ञान, अन्यथा मिथ्यात्व व कुज्ञान।।
इस हेतु ही देव शास्त्र गुरु श्रद्धान, ध्यान अध्ययन व तप त्याग।

इससे होता आत्मा का क्रम विकास, गुणस्थान आरोहण से मिले निर्वाण।।
अन्यथा होता मिथ्या श्रद्धान ज्ञान, जिससे श्रावक साधु धर्म होता कुधर्म।
तप त्याग संयमादि होते हैं मिथ्या, जिससे संसार में होता भ्रमण।।

सन्दर्भ- हे अन्तरात्मन्! तुमने अनन्त दुःख के कारण मूलभूत बहिरात्मपना को त्यागकर परमात्मपना के साधकस्वरूप परम पवित्र, सर्वश्रेष्ठ, समतारूप, सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह-ब्रह्मचर्य-रत्नत्रय दस धर्म के जीवन्त/प्रायोगिक रूप जो साधु को प्राप्त किया है उसमें मनसा-वचसा-कर्मणा एकनिष्ठ होकर समस्त कल्याण के मूलभूत आत्मकल्याण में सतत, समग्रता से प्रयत्न करो क्योंकि ये ही एक कार्य है जो कि तुमने अनन्त काल से अनन्त जन्म में भी नहीं किया है। इसके अतिरिक्त और समस्त कार्य यथा-जन्म, मरण, भोग-उपभोग, शत्रुता, मित्रता, युद्ध-कलह, मान-अपमान, मरन-मारना, सत्ता-सम्पत्ति, प्रसिद्धि-बुद्धि, वैभव, राज-पाट, अमीरी-गरीबी, रोग-शोक, भय-उद्वेग, क्लेश-संक्लेश, तनाव-उदास आदि समस्त कार्य अवस्थाओं को तुमने किया, करवाया, अनुभव किया है। इन सब कार्यों से तुमने अनन्तज दुःख भी भोगे हैं अतः हे सुखेच्छु, संवेग-वैराग्य युक्त आत्मन्! अभी तो कम से कम एक बार भी स्वयं के लिए मरकर भी देखो कि स्वयं के लिए मरण से तुम कैसे अमृत बन जाते हो, अजर-अमर, शाश्वितक, ''सच्चिदानंद'' ''सत्यं शिवं सुदरम्'' बन जाते हो। यथाः-**अयि कथमपि मृत्वा तत्वाकौतूहली सन् अनुभव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्। पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।। अमृत कलश**

हे शान्ति के इच्छुक आत्मन्! तत्त्व कौतुहल आदि किसी भी प्रकार से मरकर भी स्व-विज्ञानघनस्वरूप आत्म तत्त्व को मोह, माया, शोक-दुःख से मुहूर्तमात्र के लिए अलग अनुभव करो और जब ऐसा अनुभव करो तो तत्काल स्वशुद्धात्मा से भिन्न भौतिक/अनात्म/विकारभूत मोहादि को हठात् त्याग कर दो। इससे तुम निर्मल/पवित्र आनन्द घनस्वरूप हो जाओगे।

विरम किमपरेणकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षणमासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलादिभिन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भायाति किं चोपलब्धि।।

हे आत्मन्! संसार के अकार्य कोलाहल से विराम लो। स्वयं ही समस्त

संकल्प-विकल्पों से अवकाश प्राप्त करके स्व-आत्मस्वरूप का अवलोकन/अनुभव करो। तब स्वयं को अनुभव हो जाएगा कि तुम्हारा चैतन्य शुद्ध-स्वरूप समस्त भौतिक स्वरूप से भिन्न है या नहीं? अर्थात् निश्चय से भिन्न है।

अतएव हे आत्मन्! आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्म अनुसंधान, आत्म परीक्षण-निरीक्षण, आत्मविश्लेषण, आत्मानुचरण से ही स्वात्मोपलब्धि रूप सुख-शान्ति, संवर, निर्जरा, मोक्ष प्राप्त किया जाता है। अन्य सब धार्मिक क्रिया-काण्ड, व्रत-नियम-उपनियम, तप-त्याग, परीषह-उपसर्ग सहन, पूजा-पाठ, जप-तप, मंत्र-ध्यान आदि इसके लिए साधन/निमित्त/कारण/उपाय हैं। हे साधकात्मन्! तुम्हारा निज आत्म वैभव अक्षय अनन्त है। वर्तमान पंचमकाल के समस्त देश-विदेश के सामान्य जन से लेकर उद्योगपति, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, वैज्ञानिक, साधु-संत के वैभव सीमित हैं, क्षायोपशमिक, कर्म सापेक्ष हैं।

अतएव आत्म वैभव की अपेक्षा वर्तमान के स्व-पर के वैभव अत्यन्त तुच्छ हैं/हेय हैं, इसलिए वर्तमान के स्व-पर वैभव से न राग करो, न ईर्ष्या करो, न अहंभाव करो, न दीनभाव करो। जो कुछ तुम्हारी वर्तमान की उपलब्धि है उसका सतत सदुपयोग निज आत्म वैभव की उपलब्धि के लिए ही करो। वर्तमान की उपलब्धि का उपयोग ख्याति, पूजा, लाभ, प्रसिद्धि, संक्लेश-तनाव, ईर्ष्या-द्वेष, लन्द-फन्द में करके इह-परलोक में दुःखी मत हो। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि प्राचीनकाल के तीर्थंकर, गणधर आदि चार ज्ञान एवं चौसठ ऋद्धियों के स्वामी होते हुए भी उन सब का उपयोग ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि या यहाँ तक कि उनके ऊपर उपसर्ग-परीषह करने वालों के निवारण के लिए नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से उपलब्धि का (1) सम्यक् सदुपयोग नहीं होता (2) प्राप्त उपलब्धि में मन्दता आती है (3) आत्मोत्थ अक्षय उपलब्धि में बाधा होती है। अतः हे आत्मन्! ''वन्दे तद्गुण लब्धये'' के अनुसार तुम्हारी पंचपरमेष्ठी में जो पूजा/भक्ति/प्रार्थना तब यथार्थ होगी जब तुम उनके गुणों को स्वीकार करोगे क्योंकि गुणानुस्मरण, गुणानुवादन तथा गुणानुकरण ही यथार्थ भक्ति है, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है। हे आत्मन् ''आदहिदं कादव्वं यदि चेत् परहिदं कादवं, आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुट्ठू कादव्वं। उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहाचिन्ता

च मध्यमा, अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिंताऽधमाधमा।।'' अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्वउपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपंच, ढ़ोंग-पाखण्ड, संक्लेश त्याग करो।

सिद्धि एवं श्रेय मार्ग

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं, त्वयाऽपि भूयोजननादि लक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतीलोम वर्तिभि, ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणनम्।। आत्मानुशासनम्

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्यात्व, अज्ञान एवं राग द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरूद्ध प्रवृत्तियों सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामनगोचर, विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।।(10)

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रिय दमन, दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित हैं।

दया-दम-त्याग-समाधि निष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताङ्ञ्साऽर्थम्।
अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः, जिन! त्वदियं मतद्वितीयम्।।(6) युक्त्यानुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकान्त रूप शासन अद्वितीय है। इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तपाता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधकरूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकान्त प्रवादों दर्शनमोहनीय के उदय से सर्वथा एकान्तवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है। हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनन्त अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्णरूप प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्यप्रवर

समंतभद्र स्वामी ने कहा भी हैः-

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।।(3)

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते हैं कि :-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। ''तत्त्वार्थ सूत्र''

Right belief, Right knowledge, Right conduct, these (Together contribute) the path to liberation

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक्, संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

"Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power".

विश्वहितंकर कनकनन्दी गुरुवर के वेबिनार में आओ

रचयित्री-श्रमणी आर्यिका सुनिधिमती

(चालः शायद मेरी शादी...)

आओ सब मिलकर के आओ, कनक गुरु के द्वार चले।
वेबिनार से ज्ञान गंगा में, डुबकी लगा ज्ञान (शुभ) स्नान करे।।
गुरु की दिव्य देशना पाकर; भव्यों के मन मुदित हुए।
दुर्लभ आत्मतत्त्व को सुनकर; मन ही मन अनुभूत हुए।। (1)
गुरु की शुभ चर्या को लखकर, शुभ भावों का बोध हुआ।
कहीं पाप को मैं न बाँधू, ऐसी क्रिया में दक्ष हुआ।।
ज्ञान की मूरत मेरे गुरुवर, वात्सल्य भाव समाये हैं।
हित मित प्रिय वचनों से, सबको सम भाव समझाये हैं।। (2)
विश्वहितंकर विश्व शुभंकर, गुरुवर मेरे विश्वजयी।
इन्द्रियजेता आगम वेत्ता, विज्ञजनों के हृदयजयी।।

मैं (अहं) शब्द के शुद्धस्वरूप का; सत्य तथ्य समझाया है।
मिथ्या भाव से जकड़े जन का; मन का कलुष मिटाया है।। (3)
बाल युवा वृद्धों से सीखते, महागुरु ये सहजमयी।
जड़ चेतन तत्त्वों से पाते, नई-नई शिक्षा उपादेयी।।
'वन्दे तद्गुणलब्धये' गुरुवर, सतत भावना ये भाऊँ।
आत्म (अक्षय) निधि को पाने हेतु, तव चरणों में शिरनाऊँ।। (4)

ग.पु.कॉ., दि-30-12-2020, पूर्वाह्न

अभिनव श्रुत केवली की दिव्य देशना

आज जब सम्पूर्ण विश्व और प्राणी जगत् अपने अस्तित्व को बचाने हेतु संघर्षरत है...पंथवाद और संतवाद की लड़ाई में जिनागम या जैनधर्म वर्तमान में अपनी वास्तविक परिभाषा को लेकर भारी दुविधा में है...षट् आवश्यक कर्म से लेकर भाव और आत्म विशुद्धि जैसे मूल विषय तो जैसे मीलों पीछे छूट से गए हैं...ऐसे विकट और विपरीत समय में भी हम मेवाड़ और वागड़वासियों का सुवर्ण सौभाग्य ही हैं कि जहाँ विश्व भर के वैज्ञानिक, दार्शनिक, चिंतक, आत्मध्यानी जिनके ज्ञान और विचारों से रूबरू होने को लालायित रहते हैं...वो महान् वीतराग तीर्थ रूपी दिव्य विभूति आज अत्यंत सहज और आत्मीय रूप से हमें सुलभ हैं। जिनकी वैयावृत्ति जिनकी भक्ति और यह कहे कि उनकी परमोज्ज्वल आत्म वैभव को आत्मसात करने का एक अद्वितीय दुर्लभ अवसर हमें अपने जीवन में प्राप्त हो रहा है। ऐसे अलौकिक-विलक्षण ज्ञान के दिव्य सूर्य जिनागम के अथाह कोष, अभिनव श्रुत केवली, स्वाध्याय तपस्वी, महागुरु भगवंत वैज्ञानिक धर्माचार्य।

श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

जिनके पिछले 7 माह से लगातार प्रत्येक सप्ताह में 4 दिन दोपहर में जैनम चैनल पर जूम मीटिंग के माध्यम से ''स्वाध्याय वेबिनार'' के रूप में एक अतुलनीय दिव्य पाठशाला या यू कहे कि ज्ञान गंगा की अविरल धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है...जिसमें पूज्य साधु भगवंतों त्यागी व्रतियों, वैज्ञानिक, लेखक प्रोफेसर सहित सिर्फ देश से ही नहीं विदेशों से भी अनेक महाबड़भागी जिज्ञासु श्रावक जुड़कर अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने कटिबद्ध हो रहे हैं। मानव जीवन की तमाम शारीरिक,

मानसिक और आध्यात्मिक प्रतिकूलताओं के बीच अपनी आत्मा को साधने, मिथ्या दूषण से बचाने हेतु अपनी दिव्य देशना से जैनधर्म, आत्मधर्म या जिनागम के सच्चे और यथार्थ स्वरूप का प्रतिपल परिचय कराने वाले हम सबके परम वंदनीय पूज्य गुरुदेव द्वारा इस वेबिनार से हम अभागे, अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवों पर महान् उपकार हो रहा है। वेबिनार में जितने अद्भुत अनसुलझे प्रश्न...उतने की अलौकिक परन्तु आगमोक्त, सम्यक समाधान...मानो अमृत ही बरस रहा है...गुजरा समय कभी लौटकर वापस नहीं आता। व्यर्थ के विवाद और मतांतर को छोड़िए...कर्म प्रधानता को स्वीकर कर जीवन की विषमताओं को परे रखकर पूज्य गुरुदेव के ज्ञान समवशरण का अटूट हिस्सा बनिए और अपने हृदय के रोम रोम को पवित्र बनाइये! कदाचित पूरा न देख पाए-सुन पाए तो लघु वीडियो क्लिप देखिए पर शुरुआत या पुरुषार्थ कीजिए निरर्थक जीवन को सार्थक कीजिए।

सबके लिए यही शुभ भावना!

Zoom App direct Link:

Join Zoom Meeting

https://zoom.us/j/5671081008?pwd=SHRVdGE3OVpJV3NlVkxld0dhV1U5QT09

Meeting ID: 567 108 1008

Passcode: 1008

मेरे जीवन के महा उपकारी पूज्य गुरु भगवंत का आत्म वैभव-आत्म गौरव सदा जयवंत हो...आपका आत्मानंद, आपका आत्मानुभव और आपकी आत्मसाधना हमारा भी सम्यक-मोक्ष मार्ग प्रशस्त करे...यही मंगल कामना।। **जय जय गुरुदेव**

भावपुष्प भूपेश जैन चितरी

श्री आदिनाथ जी चैन्तयालय परिवार

Respected Sir. Jai Jinedra.

Have you read my above two articles

1. Body & Soul, Birth & Death.

2. Jainism, The Art of Living.

This article is my search which I delivered in JAINA CONVENTION 1997 in Toronto Canada as Jain Scholar invited by Executive Committee of JAINA.

Earlier in 1995 I was invited by JAINA Convention Committee in JAINA Convention Chicago and delivered my lecture in JAINISM is a SCIENCE which was the theme of Convention.

First article was published in India in 2000 in Speaking tree column of Times of India New Delhi.

Second article was published in JAIN Digest of JAINA quartely magazine.

Thus we must understand thata it is not new that we are discussing about Jainism is a Science.

Lack of knowledge is no excuse.

Truth of Natural Laws will remain always the same at all time for (JEEV) SOUL and (AJEEV) Pudgala as described in 1000 years old Granth Dravya Sangrah written by Sidhant Chakravarti Acharya Nemichandra and is a subject of discussion of Webinar organized by Prof. respected Shri Raj Mal ji through JAINAM channel addressed by Shrut kevli Acharya kanak Nandi ji Gurudev.

We both are attending this webinar for the last four months.

It is my humble suggestion to all modern Scientist who are attending this webinar and who have attained tremendous knowledge in Modern Science in various filed and retired from top positions should minimize their knowledge of Modern Science (who has not recognized ATMA till today) while attending above said WEBINAR.

With due Appoligy. With warm regards.

Ram Gopal Jain

Indian American Chicago/California USA.

'वैज्ञानिक' धर्माचार्य आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव की जय

गुरु ग्रंथन का सार है, गुरु है प्रभु का नाम।
गुरु अध्यात्म की ज्योति है, गुरु हैं चारों धाम।।

-ज्योति जैन

सन् 1997 में आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का पहला चातुर्मास सागवाड़ा हुआ था। उस चातुर्मास में मुझे बहुत कुछ सिखने को मिला जैसे-पूजा कैसे होती है, आहार किस प्रकार देते हैं आदि। गुरुदेव चातुर्मास में स्वाध्याय कराते थे लेकिन उनके स्वाध्याय में न जाकर मैंने बहुत कुछ खोया।

सागवाड़ा चातुर्मास में गुरुदेव गुप्तिनंदी जी, माताजी राज श्री, श्रद्धाश्री क्षमाश्री के पास मैं रोज आहार देने माताजी की वृयावृत्ति करने जाती थी। आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव को भी मैं आहार देने जाती थी। परंतु मेरे पापकर्म का उदय होने के कारण मैं स्वयं गुरुदेव के स्वाध्याय से नहीं जुड़ पाई। गुरुदेव की भक्त तो मैं सागवाड़ा चातुर्मास से हूँ परंतु गुरुदेव के पास जो ज्ञान का अनंत भंडार है वह मुझे तब पता चला जब टीना और मनीष भैया के घर पर ग्रीष्म कालीन चातुर्मास हुआ था। तब मैं उनके घर पर दोपहर में स्वाध्याय में तीन-चार बार गई और मुझे अनेक अनंत ज्ञान के बारे में ज्ञात हुआ।

मुझे सुविज्ञसागर जी गुरुदेव ने भी स्वाध्याय से जुड़ने के लिए प्रेरित किया, तब भी मैं स्वाध्याय से नहीं जुड़ पाई।

कुछ-महीनों बाद, मेरे पुण्यकर्मों का उदय हुआ। गुरुदेव स्वयं जूम चैनल के माध्यम से मेरे घर पर मुझे ज्ञान देने आए। उस ज्ञान को प्राप्त करके, मुझे आत्मा की अनुभूति हुई। तब मुझे ज्ञात हुआ कि शरीर और आत्मा दोनों अलग-अलग है।

ऐसे 'अनंत ज्ञानी', 'सरल स्वभावी' 'बाहरी आम्डबरों' से दूर, 'फेशन-व्यसन' से दूर 'आध्यात्मिक' 'सिद्धान्तवादी' 'आत्म तत्त्व के ज्ञानी' सभी भक्तों के साथ एक जैसा व्यवहार करने वाले गुरु के सानिध्य में स्वाध्याय करके मुझे आनंद व आत्मा की अनुभूति हुई है। ऐसे स्वाध्याय तपस्वी गुरु को पाकर मैं धन्य हो गई।

गुरुदेव 'श्रुत केवली' हैं, मुझे उनमें साक्षात् सिद्ध अरिहंत दिखते हैं। गुरु के स्वाध्याय में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुदेव गणधर हैं और मैं समवशरण में बैठ कर उनकी 'गणधर' वाणी सुन रही हूँ। अनंतज्ञान, सम्यक दर्शन का ज्ञान कराने वाले गुरु पुण्य कर्म से ही मिलते हैं। वैश्विक गुरु विश्व में मिलने दुर्लभ हैं। स्वआत्मा का अनुभव कराने वाले गुरु को पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया।

'वैज्ञानिक' धर्माचार्य आचार्य कनकनन्दी गुरु देव की जय

रचयित्री-श्रीमती ज्योति जैन
ग.पु.कॉ, सागवाड़ा

(जब कोई बात बिगड़ जाए....)

कनक गुरु सामने मेरे हो गए सपने सच मेरे
वो रहते हरदम पास है विश्वास, है विश्वास
वो 'आध्यात्मा' के 'उजियारे' मिटा देते हैं, अज्ञान के 'अधियारे'
वो रहते हरदम पास है विश्वास, है विश्वास। कनक गुरु सामने....
ज्ञान तेरा समन्दर से भी है गहरा रूप तू तो है 'श्रुत केवली' सा
'गणधर' सी तेरी वाणी ज्ञान को तेरे मैं करूँ अर्जन
तो जीवन बन जाए 'ज्ञानामृत' है विश्वास, है विश्वास
कृपा तेरी जो, हम पर है भुला पायेंगे हम कैसे
ज्ञान की ये गंगा जो तुमने घर-घर बरसाई है
कनक गुरु को मैं करूँ वंदन तो जीवन बन जाए 'आध्यात्मिक'
है विश्वास, है विश्वास
सफल हो ये मेरा जीवन, तू मेरे जीवन का दर्पण
वो रहते हरदम पास है विश्वास, है विश्वास

'वैज्ञानिक' धर्माचार्य आचार्य कनकनन्दी गुरु देव की जय

रचयित्री-श्रीमती ज्योति जैन

(मेरा एक सपना है देखूँ तूझे सपनों में...)

मेरे कनक गुरु, बड़े ही भोले-भाले हैं,
कि देखूँ जिसमें मैं, वो जग से निराले हैं।
जब-जब मन ये उदास होता है,
मेरे कनक गुरु मेरे पास होते हैं।
जब से मैंने मैं से मैं को जाना है,
तब से मैंने राग, द्वेष को छोड़ा है।

कि सारी दुनिया में, कनक गुरु का सहारा है
कि देखूँ जिसमे मैं, वो जग से निराले हैं
जब जब मन ये उदास होता है,
मेरे कनक गुरु मेरे पास होते हैं।

नया-नया ये ज्ञान मिला है गुरुवर से,
निज आत्मा ही बने परमात्मा है।
गिरा जब-जब भी, तूमने ही संभाला है
कि देखूँ जिसमें मैं वो जग से निराले हैं। मेरे कनक गुरु......।

अन्त्योदय से सर्वोदय हेतु पूर्वग्रहादि त्यजनीय

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.कोई दीवाना... 2.क्या मिलिए...)

पूर्वाग्रह दुराग्रह हठाग्रह जो न छोड़ते,
तथापि स्वयं को जो श्रेष्ठ-ज्येष्ठ मानते।
वे हैं निकृष्ट-कुज्ञानी व अन्धविश्वासी हठी,
नीति सदाचार से ले आध्यात्मिक से दूरमति।। (1)

ऐसे व्यक्ति बुद्धि-संवेदनशीलता से कुंठित होते,
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र से रहित होते।
जिससे उनका सर्वोदय भी न हो पाता,
दीनहीन अहंकार से उनका पतन ही होता।। (2)

ज्ञेय है अनन्तानन्त अतः ज्ञान भी अनन्तानन्त,
सर्वज्ञ बिना न कोई जान पाता सम्पूर्ण ज्ञेय (सत्य)
गणधर तक भी होते असर्वज्ञ या छद्मस्थ,
वे भी सर्वज्ञ से पूछते प्रश्न साठ हजार तक।। (3)

पूर्वाग्रहादि से जो सहित वे होते मिथ्यादृष्टि,
जिसके कारण से वे होते मिथ्याज्ञानी
जिससे उनके भाव-व्यवहार-कथन मिथ्या
ऐसे व्यक्ति के धर्मकर्मादि भी मिथ्या।। (4)

अनन्तानुबन्धी क्रोधादि व मोह के उपशमादि से,
बनते उदार सत्यग्राही आत्मविशुद्धि से।
पूर्वाग्रहादि से परे बनते सत्यग्राही सुदृष्टि,
सत्य के उपासक व आध्यात्मिक दृष्टि।। (5)

जिससे वे पाते समता-शान्ति-संतुष्टि,
हित प्राप्ति व अहित परिहार में प्रवृत्ति।
दीनहीन अहंकार से परे आध्यात्मिक प्रवृत्ति,
नीति-नियम सदाचारादि में प्रवृत्ति।। (6)

अतएव अन्त्योदय से सर्वोदय हेतु,
पूर्वाग्रहादि त्याग करना है प्रमुख सेतु।
आगम अनुभव व विश्व साहित्य (मनोविज्ञान) से मैंने जाना
सनम्र सत्यग्राही बनना ''कनकसूरी'' को भाया।। (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-03-01-2020 पूर्वाह्न-1:31

संदर्भ-

जैन नीति अथवा अपेक्षा विवेचन

एकेनाऽऽकर्षन्ती, श्लथयंती वस्तु-तत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मंथान-नेत्रमिव गोपी।। (225) पु.सि.

Like a milk maid, drawn one (end) of the rope and lossening the other, Jaina philosophy deals with reality of things and succeeds in acquiring the essence.

जिस प्रकार ग्वालिन दही को मथते समय एक हस्त से मथानी की रस्सी को खींचती है और अन्य हस्त से ढ़ीली करती है जिससे मक्खन निकलता है और वह गोपी हर्ष से युक्त हो जाती हैं उसी प्रकार जैनी नीति है। एक सम्यक्त्व से वस्तुतत्त्व को आकर्षण करती है पुनः अन्य ज्ञान से रहस्य को ग्रहण करती है। पुनश्च अन्त में चारित्र से कार्य को उत्पादन करके जयवंत होती है।

कथंचित् कभी कालादि एक कारण मुख्य होने से अन्य कारणों का अभाव नहीं होता। मुख्य गौण रूप से पाँचों ही कारण सम्पादन के लिये अपना-अपना

योगदान देते हैं, इसलिये कार्य उत्पादन के लिये पाँचों ही कारण को मानना सम्यक् है। एकादि कारण को भी मानना या एक कारण से ही कार्य की उत्पत्ति मानना असम्यक् है।

प्रमाण-ज्ञान का उल्लेख 'स्यात् (कथंचित्) सत्' अथवा 'स्यात् सदैव'-इस प्रकार से होता है। इसमें 'स्यात्' का प्रयोग इसलिये किया जाता है कि दूसरे भी धर्म सापेक्ष रूप से ध्वनित अथवा सूचित हो। 'स्यात्' शब्द जोड़ देने से वह कथन स्याद्वाद बनता है। नय का उल्लेख 'सत्' इस प्रकार से होता है? (सदैव सत्-स्यात् सदिति प्रिधाऽर्थो मीयेत दुनीर्ति नय-प्रमाणः) क्योंकि वह स्वाभिमत धर्म का ही कथन करता है। स्वाभिमत धर्म से भिन्न की चर्चा में वह नहीं पड़ता परन्तु यदि वह स्वाभिमत धर्म के निवेदन के साथ ही साथ इतर धर्म अथवा धर्मों को निषेध करे तो वह नय नहीं किन्तु दुर्नय है। इसका उल्लेख सत् ही है ऐसा एकान्त (निरपेक्ष एकान्त) निर्धारण रूप है। नय और दुर्नय इन दोनों के वाक्य में अन्तर नहीं होता, फिर भी अभिप्राय में अवश्य अन्तर होता है।

जिस प्रकार धर्म का अवधारणरहित निर्देश नय है; जैसे कि सत्, उसी प्रकार एकान्त का अवधारण यदि सापेक्ष हो तो भी वह 'नय' है, जैसे कि स्यात् सदैव अमुक अपेक्षा से सत् ही है। इस वाक्य में ही स्यात् प्रयोग किया गया है, अतः सत्त्व (अस्तित्व) सावधारण है, परन्तु वह सापेक्ष है। यह सापेक्षता 'स्यात्' के प्रयोग से अथवा अध्याहार से जानी जाती है, अर्थात् उसके पीछे इस प्रकार का अभिप्राय होता है। इसी प्रकार 'घट अनित्य है'-यह अवधारण रहित धर्म-निर्देश जिस प्रकार नय है उसी प्रकार 'घट कथंचित् अनित्य ही है' ऐसा सावधारण निर्देश भी सापेक्ष होने से नय है।

'नयस्तव स्यात्पदलाञ्छना इमे'-(स्वामी समन्तभद्र)।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।

अनेकान्तः प्रमाणत्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।। (स्वयंभूस्तोत्र)

अनेकान्त भी एकान्त नहीं है अर्थात् वह अनेकान्त भी है और एकान्त भी है। **प्रमाण गोचर अनेकान्त है और नयगोचर एकान्त है।**

इस पर से देखा जा सकता है कि नयवाद जब सापेक्ष एकान्तवादों का सुयोजित हार ही अनेकान्तवाद है।

श्री सिद्धसेन दिवाकर के सन्मतितर्क के तृतीय काण्ड की इस 69वीं गाथा में जिन वचन को मिथ्यादर्शन का समूह रूप बतलाया है।

भद्दं मिच्छादंसण समूहमइअस्स अमयसारस्स।

जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहिदिगम्मस्स।। (69)

इस 69 वीं गाथा में जिनवचन को मिथ्यादर्शनों का समूह रूप बतलाया है अर्थात् अनेकान्त पूत जिनवाणी, समन्वित बने हुए मिथ्यादर्शनों का समुच्चय है। अर्थ कि जैसे मिथ्यादर्शन कहा जाता है उसके आंशिक ज्ञान में आंशिक सत्य समाविष्ट है। 'षड्-दर्शन' जिन अंग भणीजे-आनन्दघन का यह उद्‌गार भी इसी बात को सूचित करता है। अंशज्ञान को अंश सत्य मानने के बदले सम्पूर्ण सत्य मान लेना ही मिथ्यादर्शन है।

हाथी के सुप्रसिद्ध उदाहरण पर विचार करने से देखा जा सकता है कि समूचे हाथी का ज्ञान होने पर ही एक हाथी पूर्ण रूप से ज्ञान हो सकता है, परन्तु यदि उसके एक-एक अवयव को ही हाथी समझ लिया जाय तो उससे समूचा हाथी समझ लिया ऐसा नहीं कहा जायेगा, परन्तु हाथी के एक-एक अंश का ही ज्ञान हुआ है ऐसा कहा जायेगा। हाथी के एक-एक अवयव को हाथी मानने वाले वे अन्धे कैसे पागल थे और इसलिए हाथी के एक-एक अवयव को हाथी मानकर परस्पर झगड़ने लगे। एक ही ओर की अपूर्ण दृष्टि को पकड़कर और उसे पूर्ण सत्य मानकर दूसरे के दृष्टिबिन्दु एवं तत्सापेक्ष समझ को समझाने का प्रयत्न नहीं करने वाले तथा पूरा समझे बिना इसकी अवगणना करने वाले आपस-आपस में कितना विरोध और झगड़ा-टंटा मचाते हैं यह हमारी आँखों के सामने हम प्रतिदिन देखते हैं। अज्ञान का (दुराग्रहयुक्त) अधूरे ज्ञान का काम ही लड़ने का है।

जिस प्रकार हाथी उसके एक-एक अवयव में नहीं, किन्तु उसके सभी अवयवों में समाविष्ट है, उसी प्रकार वस्तु उसके एक अंश में नहीं किन्तु उसके सभी अंशों के समुच्चय में रही हुई है। अतः उसके सभी अंशों का ज्ञान होने पर ही वह पूर्ण रूप से ज्ञात समझी जायेगी। इसका अर्थ यह हुआ है कि हाथी के मुख्य-मुख्य सभी अवयवों में हाथी को समझना जिस तरह हाथी के बारे में पूर्ण ज्ञान कहा जाता है उसी तरह वस्तु को उसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों में

जानना, उस वस्तु के बारे में पूरी समझ कही जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि वस्तु के एक-एक नहीं, किन्तु शक्य सभी अंशों के ज्ञान में वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान सन्निहित है। जड़ अथवा चेतन तत्त्व के अनेक अंशों को यदि बराबर समझा जाय तो दार्शनिकों में, हाथी के एक-एक अंग को पकड़ कर लड़ने वाले उन लोगों की भाँति, क्या लड़ाई हो सकती है?

व्यवहार में तो समय एवं परिस्थिति के अनुसार कोई एक विचार-मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। व्यवहार में तो ऐसा ही होता है। नय दृष्टि व्यवहारिक उपयोग की वस्तु होने से जिस समय जो विचार-दृष्टि योग्य अथवा अनुकूल प्रतीत होती हो उस समय वह दृष्टि (नय दृष्टि) अनेकान्तरन्त-कोष में से ग्रहण करने की होती है।

'स्याद्वाद' अथवा 'अनेकान्तवाद' एक ऐसी विशालदृष्टि का वाद है जो वस्तु का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न-भिन्न दिशाओं से अवलोकन करता है। यह विशाल एवं व्यापक हो, इसी व्यापक दृष्टि के-अवलोकन से एकांगी दृष्टि के विचार संकुचित और अपूर्ण सिद्ध होते हैं, जबकि भिन्न-भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से संगत भिन्न-भिन्न (विरूद्ध दिखाई देने वाले) विचार भी माला में मौक्तिको की भाँति समन्वित है और इसका परिणाम अपूर्ण दृष्टियों में निपजने वाले कलह को शान्त करके साम्यवाद (समवाद-समभाव) के सृजन में आता है क्योंकि एक दृष्टि के आधार पर एकांगी अभिप्राय रखने वाले को जब दूसरी दृष्टि का विचार आता है तब उसकी एकांगी हठ और अभिनिवेश दूर हो जाते हैं। अवश्य ही, एक-दूसरे के मानस के समाहित बनाकर परस्पर माधुर्यपूर्ण बनाने में व्यापक ज्ञान की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव है जब हमारी दृष्टि व्यापक हो। इसी व्यापक दृष्टि को जैनदर्शन में 'अनेकान्त दृष्टि' कहते हैं और यह वस्तुतः संस्कारी जीवन का एक समर्थ अंग है। यह दृष्टि व्यवहारिक भी है और आध्यात्मिक भी है। इसे व्यवहार जगत् का विलक्षण पुरुष भी समझ सकता है और आध्यात्मिक मार्ग का प्रवासी भी समझ सकता है। इस विशाल दृष्टि के निर्मल जल से अन्तर्दृष्टि का प्रक्षालय होने पर रागद्वेष शान्त होने लगते हैं और इसके परिणामस्वरूप चित्त की अहिंसात्मक शुद्धि होने पर आत्म समाधि का मार्ग सुलभ बनता है।

विशाल दृष्टि के योग से उदार भाव प्रकट होता है। यह एक दो उदाहरण के साथ तनिक देखें।

एक सम्प्रदाय कहता है कि जगत्कर्ता ईश्वर तो दूसरा कहता है कि जगत् कर्ता ईश्वर नहीं है। निःसन्देह इन दोनों में से कोई एक असत्य है परन्तु समझने की बात तो यह है कि इन दोनों वादों का लक्ष्य क्या है? ईश्वर कर्तृत्ववादी कहता है कि यदि तुम पाप करोगे तो ईश्वर तुम्हें दण्ड देगा, नरक में भेजेगा और यदि तुम पुण्य करोगे तो वह प्रसन्न होगा, सुख देगा, स्वर्ग में भेजेगा। ईश्वर कृर्तत्व का विरोध करने वाले जैन आदि कहते हैं कि यदि तुम पाप करोगे तो अशुभ का बंध होगा, खाए हुए अपथ्य भोजन की भाँति इसका (अशुभ कर्म का) दुःख रूप तुम्हें मिलेगा, तुम्हें दुर्गति में जाना पड़ेगा, परन्तु यदि तुम पुण्य करोगे तो तुम्हें शुभकर्म का उपार्जन होगा, खाये हुए पथ्य भोजन की तरह यह (शुभ कर्म) तुम्हें सुखदायी होगा।

एक धर्म सम्प्रदाय मनुष्यों को ईश्वर कर्तृत्व वादी बनाकर जो काम करना चाहता है वही काम दूसरा धर्म-सम्प्रदाय उन्हें ईश्वर कर्तृत्व मत का विरोधी बनाकर करना चाहता है। इसमें देखना तो यह चाहिये कि धर्म में (धर्म के मुद्दे में) भिन्नता आई? नहीं। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा परिणाम मिलने के बारे में सभी का एकमत ही है। तब भिन्नता फल की मार्गसरण की विचारणा में आई।

यह भिन्नता ऐसे विशेष महत्त्व को क्यों गिनी जानी चाहिये कि विरोधजनक के रूप में परिणत हों? विरोध तो वहाँ हो सकता है जहाँ दोनों का उद्देश्य एक नहीं है। ईश्वर कर्तृत्ववाद को यदि वैज्ञानिक दृष्टि से अतथ्य माने तो भी वह धर्म (अधर्म प्रेरक) तो नहीं कहा जा सकता। बुद्धि की अपेक्षा जिनकी भावुकता सविशेष है उन्हें ईश्वरकर्तृत्वाद अधिक प्रिय और उपयोगी लगता है।

वे ऐसा विचारने लगते हैं कि ईश्वर के भरोसे सब कुछ छोड़ देने से निश्चिन्त हुआ जा सकता है। इसके फलस्वरूप कर्तृत्व का अहंकार उत्पन्न नहीं होता और पुण्य पाप का विचार सतत् बना रहता है। **अधिक बुद्धिमान गिने जाने वाले लोग ईश्वरकर्तृत्व तर्क सिद्ध न होने से उसे नहीं मानते हैं।** वे ऐसा मानते हैं कि ईश्वर को कर्ता न मानकर **स्वावलम्बी बनाना और**

आत्मबल एवं निज पुरुषार्थ को विकसित करने में जागृत रहना आवश्यक है। ईश्वर को प्रसन्न करने की भोली भक्ति और प्रयास करने के बदले कर्त्तव्य साधना में प्रगतिशील बनने के लिये प्रयत्नशील होना ही अधिक श्रेयस्कर है। उनका ऐसा मंतव्य है कि हमारे पापों को क्षमा करने वाला कोई नहीं है। अतः हमें स्वयं पापाचरण से डरते रहना चाहिए।

इस पर से हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि जो ईश्वर कर्तृत्व को मानते हैं वे उसे इसलिए मानते हैं कि मनुष्य पाप न करें और जो भी ईश्वरकर्तृत्व को नहीं मानते उसकी मान्यता का सार भी यही है कि मनुष्य पाप न करे। दोनों का लक्ष्य एक है। प्राणी सदाचारी बनकर सुखी हों यही दोनों का उद्देश्य है।

इसी प्रकार अद्वैतवाद, जिसका सिद्धान्त यह है कि जगत् का मूल तत्त्व एक ही है, कहता है द्वैतभावना संसार का कारण है। अद्वैतभावना वाला 'यह मेरा स्वार्थ यह दूसरे का स्वार्थ' ऐसा संकुचित विचार नहीं रखता। वह तो जगत् के हित में अपना हित समझता है। जिस वैयक्तिक स्वार्थ के लिये मनुष्य नानाविध पाप करते हैं वह वैयक्तिक स्वार्थ ही उसकी दृष्टि में नहीं रहेगा और इस तरह वह निष्पाप बनेगा। द्वैतवादी कहता है कि मूल तत्व दो हैं। मैं आत्मा हूँ और मेरे साथ लगा हुआ पर भी परतत्त्व-जड़ तत्त्व के साथ संबंध के कारण दुर्वासनावश मूर्ख बनकर अपने सधार्मिक (समानधर्मी) अन्य तत्त्वों (जीवों) के साथ व्यवहार में प्रामाणिक न रहकर अनीति-अन्यायमय व्यवहार रखता हूँ, योग्य नहीं है। मैं जड़ तत्व के कलुषित मोहात्मक बन्धन में गिरकर और उसका आधिपत्य स्वीकार करके दुःखी होता हूँ और दूसरों को दुःखी करता हूँ। अतः मोह के इस दुःखद बन्धन को मुझे तोड़ना चाहिये।

इस तरह अद्वैत, द्वैत दोनों वादों में से एक जैसा ही कल्याण रूप फलितार्थ निकलता है।

उपरोक्त सम्पूर्ण सिद्धान्त एवम् उदाहरण से यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि सम्यक् समन्वयवाद ही सम्यक्वाद या सम्यग्दर्शन है। सम्यग्वाद या समन्वय दृष्टि से जो सिद्धान्त सत्य है वो ही सिद्धान्त विषमता या असमन्वय दृष्टि से मिथ्या है। सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमीचन्द्र जी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा भी है-

परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जेणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचिवयणादो।। (895)

एकान्तवादियों का वचन सर्थवा निरपेक्ष होने से असत्य है। अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शनी जिनेन्द्र भगवान् का वचन सापेक्ष होने से सत्य है।

अनेकान्त दर्शन कथञ्चित् काल को, कथञ्चित् स्वभाव को, कथञ्चित समय को उसके सद्भाव को स्वीकार करता है कभी भी पूर्णतः अभाव को स्वीकार नहीं करता। यह अनेकान्त दर्शन सारग्राही दृष्टि है।

आत्मशुद्धि-शान्ति-मुक्ति हेतु मेरी साधना

(चालः 1.छोटी-छोटी गैया... 2.सायोनारा...) -आचार्य कनकनन्दी

करूँ भावना/(साधना) मैं आत्मशुद्धि/(शान्ति) की, जिससे प्राप्त करूँ पूर्ण मुक्ति भी।
पूर्ण मुक्ति से मिलेगी पूर्ण शक्ति भी, अभी से ही साधना पूर्ण मुक्ति की।। (1)
बीज से अंकुर तथा वृक्ष भी, बिन्दु से रेखा बने छोटी से बड़ी।
साधना से साध्य प्राप्त करूँ मैं, देशजिन से बनूँ पूर्ण-जिन मैं।। (2)
इस हेतु त्यागूँ अशुद्धि-अशान्ति, इसके कारक अन्त-बाह्य निमित्त।।
अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह चौबीस, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व।। (3)
इससे नाशूँ संकल्प-विकल्प-संक्लेश, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा-विभाव।
आकर्षण-विकर्षण-विषमता-द्वन्द्व, जिससे अशुद्धि-अशान्ति होगी मन्द।। (4)
इससे बढ़ती जायेगी आत्मशक्ति, जिससे कर्मनाश से पाऊँगा मुक्ति।
जिससे पाऊँगा अनन्त आत्मविभूति, अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यादि।। (5)
यह मेरा परमलक्ष्य या ध्येय/(प्राप्य), लक्ष्यानुसार ही करूँ साधना सर्व।
समता-शान्ति-निस्पृहता से करूँ साधना, अन्य हेतु 'कनकसूरी' न करे साधना।। (6)

(परम शान्ति-मुक्ति दायक धर्म क्षेत्र में जो अशान्ति आदि है उससे बचने हेतु यह कविता बनी।)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-3/1/2021 रात्रि-9.10

संदर्भ-

अथ निर्णीततत्त्वार्था धन्याः संविग्नमानसाः।
कीर्त्यन्ते यमिनो जन्मसंभूतसुखनिःस्पृहाः।। (1)

अथानन्तर जो संयमी मुनि तत्त्वार्थका (वस्तुका) यथार्थ स्वरूप जानते हैं, मनमें संवेगरूप हैं, मोक्ष तथा उसके मार्ग में अनुरागी हैं और संसारजनित सुखों में निःस्पृह (वांछारहित) हैं वे मुनि धन्य हैं। उनका कीर्तन वा प्रशंसा की जाती है।

क्रोधादिभीमभोगीन्दै रागादिरजनीचरैः।

अजय्यैरपि विध्वस्तं न येषां यमजीवितम्।। (6)

जिन मुनिजनों का संयमरूपी जीवन क्रोधादि कषायरूप भयानक सर्पों से तथा अजेय रागादि निशाचरों से नष्ट नहीं हुआ।

मनः प्रीणयितुं येषां क्षमास्ता दिव्ययोषितः।

मैत्र्यादयः सतां सेव्या ब्रह्मचर्येऽप्यनिन्दिते।। (7)

जिन मुनियों के अनिन्दित (प्रशंसनीय) ब्रह्मचर्य के होते हुए मनको तृप्त करने वाली प्रसिद्ध मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ, ये चार भावनारूपी सुन्दर तथा समर्थ स्त्रियाँ हैं। अर्थात् इन भावनाओं के भावने से जिनके चित्त में कामादि विकारभाव नहीं उपजते।

निःसङ्गत्वं समासाद्य ज्ञानराज्यं समीप्सितम्।

जगत्त्रयचमत्कारि चित्रभूतं विचेष्टितम्।। (9)

जिन्होंने निष्परिग्रहपन को अंगीकार करके तीन जगत् में चमत्कार करने वाले तथा आश्चर्यरूप चेष्टावाले ज्ञानरूपी राज्य की वांछा की।

स्वभावजनितरातङ्कनिर्भरानन्दनन्दिताः।

तृष्णार्चिःशान्तये धन्या येऽकालजलदोद्गमाः।। (11)

जो धन्य मुनि तृष्णारूपी अग्नि की ज्वाला को शान्त करने के लिये अकाल में (ग्रीष्मकाल में) स्वभाव से उत्पन्न, दाहरहित, पूर्ण आनन्द से आनन्दरूप मेघ के उदय के समान हैं।

अशेषसंगसंन्यासवंशाज्जितमनोद्विजाः।

विषयोद्दाममातङ्गघटासंघट्टघातकाः।। (12)

जो मुनि समस्त परिग्रह के त्याग के कारण मनरूप चंचल पक्षी को जीतने वाले हैं तथा विषयरूपी मदोन्मत्त हस्तियों के संघट्ट के (समूह के) घातक हैं।

वाक्पथातीतमाहात्म्या विश्वविद्याविशारदाः।

शरीराहारसंसारकामभोगेषु निःस्पृहाः।। (13)

जिनका वचनपथ से अगोचर माहात्म्य है, जो समस्त विद्याओं में विशारद हैं और शरीर-आहार-संसार-काम-भोगों में निःस्पृह (वांछारहित) हैं।

विशुद्धबोधपीयुषपानपुण्यीकृताशयाः।

स्थिरेतरजगज्जन्तुकरुणावारिवार्द्धयः।। (14)

जिनका चित्त निर्मल ज्ञानरूप अमृत के पान से पवित्र है और जो स्थावर त्रस भेदयुक्त जगत् के जीवों के करुणारूपी जल के समुद्र हैं।

स्वर्णाचल इवाकम्पा ज्योतिःपथ इवामलाः।

समीर इन निःसङ्गा निर्ममत्वं समाश्रिताः।। (15)

जो मेरुपर्वत के समान अचल है, आकाशवत् निर्मल हैं, पवन के समान निःसंग हैं और निर्ममता को जिन्होंने आश्रय दिया है।

हितोपदेशपर्जन्यैर्भव्यसारङ्गतर्पकाः।

निरपेक्षाः शरीरेऽपि सापेक्षाः सिद्धिसङ्गमे।। (16)

वे मुनि हितोपदेशरूप शब्दायमान मेघों से भव्य जीवरूपी चातक वा मयूरों को तृप्त करने वाले हैं तथा शरीर में निरपेक्ष हैं, तो भी मुक्ति के संगम करने में सापेक्ष हैं।

इत्यादिपरमोदारपुण्याचरणलक्षिताः।

ध्यानसिद्धेः समाख्याताः पात्रं मुनिमहेश्वराः।। (17)

इत्यादिक परम उदार पवित्र आचरणों से चिह्नित, मुनियों में प्रधान, मुनीश्वर ध्यान की सिद्धि के पात्र कहे गये हैं।

तवारोढुं प्रवृत्तस्य मुक्तेर्भवनमुन्नतम्।

सोपानराजिकाऽमीषां पदच्छाया भविष्यति।। (18)

आचार्य महाराज कहते हैं कि हे आत्मन्! मुक्तिरूपी मंदिर पर चढने की प्रवृत्ति करते हुए तुझे पूर्वोक्त प्रकार के मुनियों के चरणों की छाया ही सोपान की पंक्ति समान होवेगी। जिनको ध्यान की सिद्धि करनी हो, उन्हें ऐसे मुनियों की सेवा करनी चाहिये।

ध्यानसिद्धिर्मता सूत्रे मुनीनामेव केवलम्।

इत्याद्यमलविख्यातगुणलीलावलम्बिनाम्।। (19)

सूत्र में (सिद्धान्त में) उपर्युक्त गुणों को आदि लेकर निर्मल प्रसिद्ध गुणों में प्रवर्त्तनरूप क्रीडा के अवलम्बन करने वाले केवल मुनियों के ही ध्यान की सिद्धि मानी है। अर्थात् मुक्ति के कारणस्वरूप ध्यान की सिद्धि अन्य के नहीं हो सकती।

विन्ध्याद्रिर्नगरं गुहा वसतिकाः शय्या शिला पार्वती

दीपाश्चन्द्रकरा मृगाः सहचरा मैत्री कुलीनाङ्गना।

विज्ञानं सलिलं तपः सदशनं येषां प्रशान्तात्मनां

धन्यास्ते भवपङ्कनिर्गमपथप्रोद्देशकाः सन्तु नः।। (21)

जिन प्रशान्तात्मा मुनि महाराजाओं के विन्ध्याचल पर्वत नगर है, पर्वत की गुफायें वसतिका (गृह) हैं, पर्वत की शिला शय्यासमान हैं, चन्द्रमा की किरणें दीपकवत् हैं, मृग सहचारी हैं, सर्वभूतमैत्री (दया) कुलीन स्त्री है, विज्ञान पीने का जल और तप उत्तम भोजन है, वे ही धन्य हैं। ऐसे मुनिराज हम को संसाररूप कर्दम से निकलने के मार्ग का उपदेश देनेवाले हों।

आत्मन्यात्मप्रचारे कृतसकलबहिःसंगसन्यासवीर्या-

दन्तर्ज्योतिःप्रकाशाद्विलयगतमहामोहनिद्रातिरेकः।

निर्णीते स्वस्वरूपे स्फुरति जगदिदं यस्य शून्यं जडं वा

तस्य श्रीबोधवार्धेर्दिशतु तव शिवं पादपङ्करुहश्रीः।। (27)

जिसका आत्मा में अपना प्रवर्तन है, परद्रव्य में नहीं है और बाह्यपरिग्रह के त्याग से तथा अंतरंगविज्ञानज्योति के प्रकाश होने से जिसका महामोहरूप निद्रा का उत्कर्ष नष्ट हो गया है और जिसको स्वरूप का निश्चय होने से यह जगत् शून्यवत् वा जडवत् प्रतिभासता है, ऐसे श्रीज्ञानसमुद्र मुनि के चरणकमल की लक्ष्मी (शोभा) तुम को मोक्षपद प्रदान करें, ऐसा आशीर्वादात्मक उपदेश है।

आत्मायत्तं विषयविरतं तत्त्वचिन्तावलीनं

निर्व्यापारं स्वहितनिरतं निर्वृतानन्दपूर्णं।

ज्ञानारूढं शमयमतपोध्यानलब्धावकाशं

कृत्वाऽऽत्मानं कलय सुमते दिव्यबोधाधिपत्यम्।। (28)

हे सुबुद्धि! अपने को प्रथम तो आत्मायत्त कहिये पराधीनता से छुड़ा कर स्वीधन कर। दूसरे इन्द्रियों के विषयों से विरक्त कर। तीसरे-तत्त्वचिन्ता में मग्न (लीन) कर। चौथे-सांसारिक व्यापार से रहित निश्चल कर। पाँचवें-अपने हित में लगा। छट्टे-निर्वृत अर्थात् क्षोभरहित आनंद से परिपूर्ण कर। सातवें-ज्ञानारूढ़ कर। आठवें-शम यम दम तप में अवकाश मिलें ऐसा करके फिर दिव्यबोध कहिये केवलज्ञान के अधिपतिपने को प्राप्त कर।

भावार्थ-उपर्युक्त आठ कार्यों से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

आत्मविजयी महावीर मुनि बाहुबली-भगवान् बाहुबली

(बाह्यतः सम्पूर्ण 28 मूलगुण पालन बिना बाहुबली मुनि बने ऋद्धि सम्पन्न व अरिहंत-सिद्ध)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.छोटी-छोटी गैया... 2.यमुना किनारे... 3.सायोनारा....)

बाहुबली! बाहुबली! बाहुबली! महातपस्वी महावीर बाहुबली!
तीनों युद्ध में चक्री से हुए विजयी, चक्ररत्न बना आप का आज्ञाकारी।।
संसार-शरीर-भोग से हुई विरक्ति, आत्मविजयी हेतु बने संन्यासी।
अठ्ठाईस मूलगुण धारी बने श्रमण, एकस्थान में खड्गासन में लगाये ध्यान।। (1)
अतएव एक वर्ष तक न किया आहार, तथाहि न किया आपने विहार, निहार।
अतः बाह्य से न किया समिति पालन, केशलोंच भूमिशयन, स्थिति भोजन शून्य।।
तथापि आपने किया मूलगुण पालन, चौरासी लाख उत्तर गुण पालन।
उत्तमक्षमादि दशधा धर्म पालन, अन्तरंग-बहिरंग तप पालन।। (2)
आत्मविशुद्धि हेतु ध्याया धर्म ध्यान, द्वादश अनुप्रेक्षाओं से वैराग्य ज्ञान।
तीनों शल्य व तीनों गारव शून्य, जिससे पाये ऋद्धियाँ व चार ज्ञान।
अन्त में घाती क्षय से बने सर्वज्ञ, दिव्यध्वनि से किया विश्व सम्बोधन।
अघाती क्षय से बने शुद्धबुद्ध आनन्द, अनन्तचक्री से भी अधिक वैभव/(आत्मवैभव)।। (3)

ये भी संभव हुए आत्मविशुद्धि से, समता शान्ति व निस्पृहता से।
अन्तरंग-बहिरंग तप-त्याग से, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह त्याग से।।
आत्मविशुद्धि हेतु बहिरंग साधना, अन्यथा व्यर्थ है बहिरंग साधना।
कार्य कारण सिद्धान्त की ये व्यवस्था, निमित्त उपादान की ये ही व्यवस्था।। (4)
कार्य में समाहित हो जाते कारण, निमित्त उपादान में ये ही विधान।
पूववर्ती कारण ही उत्तरवर्ती कार्य; पानी यथा बने निमित्त से हिम/(बर्फ)।।
आत्मविशुद्धि समता-वीतरागता में, समाहित होते हैं सभी ही गुण।
ध्यानस्थ मुनि न पालते बाह्यव्रत; तथापि बाह्यव्रत पालक से श्रेष्ठ।। (5)
ध्यानस्थ मुनि से ले श्रेणी आरोहण मुनि, अरिहंत व सिद्ध भगवान्।
नहीं करते बाह्यव्रत नियम पालन, तथापि पालने वालों से श्रेष्ठ ज्येष्ठ।।
प्रमत्त (छट्ठा) गुणस्थान तक होता वृत पालन, सप्तमगुणस्थान परे नहीं पालन।
(यथा) भोजन पक्व अनन्तर नहीं अग्नि आवश्यक, तथाहि सर्वत्र यह जानने योग्य।। (6)
परम सामायिक चारित्र सर्वश्रेष्ठ चारित्र, इस में गर्भित समस्त चारित्र।
सामायिक अभाव से अन्य चारित्र श्रेय, (परम) सामायिक में अन्य चारित्र न ग्राह्य।।
इससे शिक्षा मिलती अनेक विध, आत्मविशुद्धि-समता हेतु ही धर्म।
अन्यथा धर्म साधना होती व्यर्थ, यथा तुस खण्ड़न से न मिले अक्षत।। (7)
शक्ति अनुसार तप-त्याग विधेय; आत्मा की विशुद्धि अवश्य करणीय।
उत्सर्ग अपवाद सापेक्ष ही करणीय, आत्मविशुद्धि उत्सर्ग बाह्य साधना अपवाद।।
ये है आध्यात्मिक रहस्य सर्वदा ज्ञेय, रागीद्वेषी मोही द्वारा होता अज्ञेय।
आगम अनुभव से जाना ये सत्य; आत्मविशुद्धि-समता 'कनक' का ध्येय।। (8)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-7/1/2020, रात्रि-10.08

मम स्वभाव ही मम-वैभव

(स्ववैभव में/(से) ही अनन्त सुख, विभाव व सांसारिक-वैभव में (से) दुःख)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.आत्मशक्ति... 2.देहाची तिजोरी... 3.भातुकली... 4.क्या मिलिए...)

मम स्वभाव ही है मम-वैभव, उसमें/(से) करूँ मैं आत्मगौरव।

अन्य सभी विभाव परद्रव्य, उसमें/(से) न करूँ मैं गौरव।।
मम स्वभाव सच्चिदानन्दमय, सत्यशिव सुन्दर कन्द।
अनन्तज्ञान दर्श सुखवीर्यमय, अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व।। (1)
तन मन इन्द्रिय रिक्त चिन्मय, द्रव्यभावनोकर्म शून्य अमूर्त।
स्वयंभू सनातन अनादि अनिधन, शुद्धबुद्ध आनन्द कन्द।।
इसके अतिरिक्त सभी विभाव, द्रव्यभावनोकर्म या परद्रव्य।
सचित्त अचित्त मिश्र परिग्रह, अन्तरंग बहिरंग परिग्रह।। (2)
अनादिकालीन कर्म बन्ध से; बना हूँ मैं अशुद्ध-विभाव।
जिससे हुआ स्वभाव से च्युत; भ्रमा हूँ पंचपरिवर्तन अनन्त।।
विश्व के हर कण भोगा-त्यागा, विश्व के हर क्षेत्र में जन्मा-मरा।
भूत के हरकाल में जन्मा-मरा, चौरासीलक्षयोनियों में जन्मा-मरा।। (3)
किया अशुभ भाव असंख्यलोक प्रमाण, आत्म-वैभवपाना ही अभी शेष।
आत्मवैभव से पाऊँगा परमानन्द, अन्यथा/(इन्द्र) चक्री तक में न परमानन्द।।
ऋषभदेव के पुत्र चक्री भरत, क्षायिक सुदृष्टि मोक्षगामी तद्भव।
दिग्विजय पूर्ण हेतु किया संग्राम, चारित्रमोह से होकर पराभव।। (4)
स्व-अनुज बाहुबली कामदेव से, किन्तु परास्त हुआ तीनों युद्ध में।
तथापि चक्ररत्न किया प्रयोग; किन्तु बाहुबली थे सदा अवध्य।।
इससे हुआ बाहुबली को वैराग्य, सत्ता-सम्पत्ति कीर्ति से विरक्त।
संसार शरीर भोग से हुए विरक्त, आत्मवैभवहेतु त्यागे राज्यवैभव।। (5)
भरत चक्री भी अन्त में हुए विरक्त, जिससे वे हुए शुद्ध बुद्ध आनन्द।
शुद्धात्मा स्वरूप ही है परमानन्द; 'कनक' चाहे अतः आत्म-वैभव।।
इस हेतु ही मम सभी साधना; तप त्याग से ले ज्ञानाराधना।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि परे, आत्मवैभव प्राप्ति ही मेरी भावना/(ममकामना)।। (6)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-6/1/2020, रात्रि-9.11

भौतिक विज्ञान से जाना आध्यात्मिक

पुद्‍गल की शक्ति से भी जाना स्वात्मशक्ति

(आगम व आधुनिक विज्ञान व अनुभव द्वारा भौतिक शक्ति से स्वात्मा की अनन्त शक्ति को जाना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.पायोजी मैंने... 2.पाऊले चालती...)

जाना हैं मैंने स्वात्मा की अनन्तशक्ति।
पुद्‍गल/(भौतिक) में यदि इतनी शक्तियाँ, तो मुझ में कितनी शक्ति।। (ध्रुव)
आगम से जाना विज्ञान में पढ़ा, प्रायोगिक से करूँ अनुभव।
अणु परमाणुओं वर्गणाओं से जाना, पुद्‍गल की अनन्त शक्तियाँ।। (1)
आगम से जाना तथाहि विज्ञान में पढ़ा, भौतिक विश्व बना पुद्‍गल से।
इलेक्ट्रोन, न्युट्रॉन, प्रोटोन से प्लाज्मा, क्वार्क से ले क्वांटम तक से।। (2)
बिगबैंग, ब्लैक होल, सुपरनोबा, गेलेक्सी व डार्क मेटर, डार्क एनर्जी।
जीनोम, D.N.A, R.N.A. सेल्स, न्यूरोन, ब्रेन, शरीर आदि भौतिकी।। (3)
सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी, मोबाईल, T.V, रॉकेट, गाडी, कारखाना।
भोजन, पानी; फल-फूल, औषधि, प्राणवायु, प्रकाश, सर्दी, गर्मी भौतिक ज्ञान।। (4)
पाँचों इन्द्रिय गम्य सभी ही भौतिक, तथाहि यंत्रादि गम्य भौतिक।
स्पर्श रस गन्ध वर्ण भार शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आताप उद्योत।। (5)
शरीर वचन मन प्राणापान सुख दुःख जीवितमरण आदि पुद्‍गल से उपस्कृत।
द्रव्यभावनो कर्म या अष्टविधकर्म, सचित्त अचित्त मिश्र परिग्रह भी पुद्‍गल।। (6)
सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि से ले मार्गणा गुणस्थान, कषाय लेश्यादि पुद्‍गल से उपस्कृत।
इससे पुद्‍गल की शक्ति के साथ-साथ जान रहा हूँ स्वात्मा की शक्ति तक।। (7)
पुद्‍गल में भले हो अनन्तगुण उससे भी मुझ में होते विशेष गुण गण।
अनन्तज्ञानदर्शन सुखवीर्य चेतन अमूर्तत्व, जिससे मैं हूँ पुद्‍गल से महान्।। (8)

मैं जानता पुद्गल न जानते तथाहि मैं सुखी पुद्गल होते सुख रिक्त भी।
मैं हूँ चेतन, पुद्गल अचेतन, मैं हूँ अमूर्तिक किन्तु पुद्गल मूर्तिक सभी।। (9)
मेरी वैभाविक शक्ति के कारण कर्म वर्गणायें बनती द्रव्यकर्म मय।
अशुभ भाव से पापमय तो शुभभाव से पुण्य व शुद्ध से होते क्षय।। (10)
पाप से दुर्गति पुण्य से सुगति जिससे संसार में दुःख-सुख।
चतुर्गति व चौरासीलक्षयोनियाँ चौदहमार्गणायें व अभ्युदय सुख।। (11)
तीर्थंकर पुण्य कर्म व उसके कारण होते जो अतिशय व पंचाश्चर्य।
नवनिधि, चौदह रत्न, समवसरण वैभव से ज्ञात हुआ पुद्गल के गुण।। (12)
पुण्य से देव-मानवों की सत्ता-सम्पत्ति-विभूति/(शक्ति-बुद्धि)-ऋद्धियाँ होती उपलब्धि।
इसके परे शुद्धभाव से कर्मक्षय से, अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि उपलब्धि।। (13)
इससे मुझे होता ज्ञान मेरी शक्तियाँ, पुद्गल से अधिक श्रेष्ठ-ज्येष्ठ।
इसलिए तो राजा महाराजा सेठ, चक्री भी त्यागते भौतिक वैभव।। (14)
श्रमण बनकर ध्यान-अध्ययन-समता-शान्ति से बढ़ाते आत्मशक्ति।
जिससे कर्मनाश से अनन्त आत्मवैभव पाते इस हेतु साधनारत 'कनकनन्दी'।। (15)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-8/1/2020, रात्रि 10.01 व 2.03

(यह कविता श्रमण मुनि सुविज्ञ सागर के कारण भी बनी)

गुरु-शिष्य मिलन समारोह

गुरु गुणानुवाद, गुणानुकरण, गुणानुस्मरण

परम पूज्य आध्यात्म योगी, अभिनव श्रुत केवलि, कुलाधिपति, सिद्धान्त चक्रवर्ती, वैश्विक सूरी, सिद्धान्त चक्रवर्ती, महाविज्ञानी, आत्मज्ञानी, ज्ञान दिवाकर, महाकवि, परम आगम निष्ठ, कलिकाल समन्तभद्र, अकलंक स्वामी, निस्पृही आचार्य भगवन् श्री कनकनन्दी गुरुदेव के युगलचरण में 41वें दीक्षा महा महोत्सव....

अनंतानंत...वंदन...अभिवंदन....अभिनन्दन....।

आत्मीय गुणों से विभूषित, जैन धर्म की शान, कुन्थु गुरु के हीरा शिष्य, स्व-पर उपकारी, महाउदारभावी, सरल स्वभावी, समताधारी, आत्मानुशासी, मितव्ययी,

निस्पृही, निराडम्बरी, ख्याति-पूजा-लाभ से परे, संकीर्ण संतवाद, मतवाद, पंथवाद, हठग्रहिता से परे, 300 से अधिक आचार्यों, साधु भगवन्तों, विद्वत्तजनों के शिक्षा गुरु, जीनियसों के जीनियस, धर्म और विज्ञान को जोड़ते हुये जैन सिद्धान्तों को प्रमाणिकता के साथ, अहिंसामयी, अनेकान्त स्याद्वाद धर्म, अपरिग्रहवाद, यथार्थ धर्म स्वरूप को विश्व-पटल पर स्थापित करने वाले, बहुआयामी, विविध विधा के ज्ञाता, पूरे विश्व को आह्वान करने, ललकारने वाले, शान्ति-क्रांति के अग्रदूत, सत्य की प्रतिमूर्ति, आगम प्रणेता, अंतरंग प्रकाशी, कथनी-करनी एक समान, सतत् ध्यान-अध्ययन में लीन महा...गुरु...आप हो।

आप सूर्य के समान स्वयं प्रकाशमान होकर पूरे जग को प्रकाशमान करने वाले, स्व-गुरु के प्रति अनन्य अनुनय-विनय-भक्ति दर्शाने वाले, नंदी संघ के कुलाधिपति (स्व गुरु आ.कुन्थुसागर द्वारा वेबिनार में प्रदत्त उपाधि) प्रकृति प्रेमी आदि अनेक महान् गुणों के धारी गुरुवर को कोटि-कोटि प्रणाम करते हुये मैं सदैव भगवान् से यहीं प्रार्थना करती हूँ कि आप दीर्घायु बने, आपका रत्नत्रय निर्बाध चलता रहे और आप अपने महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुये आकाश की अनंतानंत ऊँचाईयों तक पहुँचे।

हे गुरुदेव! आपके महानतम् गुण अवर्णनीय हैं बड़े-बड़े आचार्य आपके गुणों का वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ बताते हैं और आपके गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान बताते हैं तो मैं स्वयं असमर्थ हूँ यह कोई बड़ी बात नहीं है। मैंने आपकी अनन्य भक्ति वश कलम चलाने का प्रयास किया है।

(विनयांजलि प्रस्तुत)

हे गुरुदेव! यथार्थ स्वरूपी संत शिरोमणि मेरे तो आराध्य प्रभू आप ही हो।

''परम आशीष सदामुझ पर बना रहे।

''वंदे तद् गुण लब्धये'' मेरे यही भाव रहे।''

आपकी चरणानुरागी

Deepika Nagin Shah

Colony Sagawara

वेबिनार से प्राप्त शिक्षा

प्रस्तुति-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

वर्तमान की पृथ्वी पर वैश्विक ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न कुलाधिपति (आचार्य श्री कुन्थुसागर जी द्वारा वेबिनार में प्रदत्त उपाधि) वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर के 41वें दीक्षा दिवस के अवसर पर निराडम्बर रचनात्मक अभिप्रेरक गुरु-शिष्य सम्वादात्मक त्रय दिवसीय वेबिनार महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अभूतपूर्व ऐतिहासिक सद्गुरु गुण गौरव वेबिनार को देखकर व श्रवणकर उपस्थित साधु-साध्वी आचार्य-सन्तगण, वैज्ञानिक, प्राध्यापकों, श्रावक-श्राविकाओं से लेकर सामान्य आबाल-वृद्ध-वनिता-वृन्द अत्यन्त द्रवीभूत व अभिभूत हुए।

इन निराडम्बर अनुष्ठान में देश-विदेश के आचार्य साधु-साध्वी सन्त गणों से लेकर वैज्ञानिकों आदि से आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव के भाव-व्यवहार-लक्ष्य-गुणगण आध्यात्मिक उपलब्धियों आदि के प्रति हृदय के अन्तस्थल से भावभीनी विनयाञ्जली प्रस्तुत कर स्व को गौरान्वित अनुभव किया। आचार्यगणों में आचार्य अनुभव सारग जी, गुणधरनन्दी जी, सुविधिसागर जी, गुप्तिनन्दीजी, विद्यानन्दीजी, देवनन्दीजी, पद्मनन्दीजी, प्रज्ञासागर जी, प्रसन्नऋषिजी, वैराग्य नन्दीजी, कुशाग्रनन्दी, सच्चिदानन्दजी आदि ने अपने स्वानुभवपूर्ण विनयाञ्जली से सबका मन मोह लिया इसी प्रकार श्रमण मुनि सुयशगुप्त, चन्द्रगुप्त, आज्ञासागर, अनुमान सागर आदि ने व ग. आर्यिका ज्ञानमती, चन्दनामती, धैर्यश्री, क्षमाश्री, आस्थाश्री, जिनवाणी आदि श्रमणी आर्यिकाओं व क्षु.ध्यानसागर जी ने भी अपने एक से बढ़कर एक अनुभवात्मक प्रेरक भावों से आचार्यश्री के प्रति अत्यन्त गौरव प्रकट किया व सभी ने उन्हें वर्तमान पृथ्वी पर बहुगुणधारी आध्यात्मिक विभूति बताया। जगद्गुरु सबके दादा गुरु गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी गुरुदेव वे विज्ञानाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव को नन्दीसंद्य के सूर्य की उपमा से गौरव किया जिसे सुनकर जन-गण-मन अभिभूत हुआ। पं. जयकुमार उपाध्ये, डॉ. चिरञ्जीलाल बगड़ा, अभियन्ता योगेन्द्र जैन लन्दन, डॉ. रामगोपाल केलिफोर्निया इसरो वैज्ञानिक डॉ

राजमल, डॉ गोदावत, कोबा आश्रम के साधकों आदि ने भी आ. श्री को उच्चतम आदर्श रूप सन्तगुरु बताया। इस अवसर पर आचार्य श्री कनकनन्दी सृजित प्रायः 10 ग्रन्थों का विमोचन हुआ।

आचार्य श्री के इसरो के वैज्ञानिक शिष्य डॉ सुरेन्द्रसिंह पोखरना के अनुरोध से आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन दि. 9/2/2021 से करेंगे एवं आगामी 19-20-21 मार्च को आत्मा सम्बन्धी फ्लोरिडा में आयोजित वेबिनार में देश-विदेश के वैज्ञानिक एवं आचार्य श्री के वैज्ञानिक शिष्यों के साथ आचार्य श्री भाग लेगें। यह कार्यक्रम भारत सरकार का होगा।

प्रस्तुति-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

चिन्ता (टेन्शनादि) त्याग के शाश्वत नियम शाश्वत समता-शान्ति-तृप्ति-आत्मविशुद्धि के उपाय

(चालः 1. रघुपति राघव... 2. यमुना किनारे...)

चैतन्य आत्मा का चिन्तन करो, जो शुद्ध-बुद्ध-आनन्द है।
पर चिन्ता अधमाधमा छोड़ो, उत्तम आत्म चिन्तन है।।
द्रव्य स्वरूप का चिन्तन करो, जो अनादि अनन्त शाश्वत है।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त, अनन्त गुण पर्याय सहित है।। (1)
इस दृष्टि से सभी द्रव्य स्वतन्त्र, उनका कर्त्ता-भोक्ता अन्य नहीं।
अन्य का कर्त्ता-भोक्ता छोड़कर, स्व कर्त्ता-भोक्ता ही स्वयं बनो।।
अनेकान्तमय सभी द्रव्य है, अनेक विरुध्द कर्म युक्त।
उदार व्यापक भाव-काम करो, सङ्कीर्ण-कट्टर-दुराग्रह छोड़ो।। (2)
अनन्त जीव है अनन्त कर्म भी, भाव-व्यवहार भिन्न-भिन्न तथाहि।
अतः किसी से रागद्वेष न करो, मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ धरो।।
आत्महित प्राथमिकता से करो, आत्महित सह परिहत भी करो।
आत्महित है आत्मविशुद्धि शान्ति, इससे परे कोई भाव-काम न करो।। (3)

स्व-पर प्रकाशी सम दीपक बनो, पर प्रकाश हेतु भी स्व प्रकाशी बनो।
बुझा हुआ दीप न स्व-पर प्रकाशी, पर हेतु संक्लेशित-पापी न बनो।।
राग द्वेष मोह काम क्रोध मद, ईर्ष्या तृष्णा घृणा वैर विरोध।
पर निन्दा अपमानादि अन्धेरा सम, अतः रागद्वेषादि कभी न करो।। (4)
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र धरो, स्व आत्म वैभव का स्मरण करो।
स्वयं हो स्वयम्भू स्वयं पूर्ण स्वतन्त्र, अनन्त ज्ञान दर्श सुख वीर्य पूर्ण।।
स्वयं का ही कर्त्ता-भोक्ता स्वयं हो, अन्य से परिचालित कभी न हो।
क्रय-विक्रय जड़ वस्तु के सम, पर से स्व मूल्यांकन न करो।। (5)
दया दान सेवा परोपकार करो, ख्याति लाभ पूजा वर्चस्व त्यागो।
निष्काम धर्म समता से पालो, परस्पर उपग्रहो शुभभाव से करो।।
सात्विक आहार पेय ग्रहण करो, न्यायोचित धन उपार्जन करो।
फैशन-व्यसन-आड़म्बर छोडो, सादा जीवन उच्च विचार ही करो।। (6)
स्वच्छ शान्त स्थान में निवास करो, प्राणायाम-व्यायाम-भ्रमण करो।
तन-मन-अक्ष स्वस्थ-सबल करो, ध्यान-अध्ययन-शोध-बोध करो।।
ऐसा ही महान् लक्ष्य-भाव-काम से, आत्मविशुद्धि से बढ़ती आत्मशक्ति।
इससे ही मिलती शान्ति-तृप्ति, 'सूरी कनक' का लक्ष्य आत्मोपलब्धि।। (7)
स्वदोष शान्ति से मिले आत्मशान्ति, जिससे लाभान्वित अन्य जीवादि।
अन्यथा न मिले आत्मशान्ति, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-शक्ति से भी।।
श्रद्धा-प्रज्ञा-आगम-अनुभव से, द्रव्य क्षेत्र काल आवश्यकतानुसार।
'सूरी कनक' करे आत्मविशुद्धि सदा, स्व-पर-विश्व कल्याण भावानुसार।। (8)

तीर्थ क्षत्रियों का कर्त्तव्य (वर्णाश्रम-धर्म)

(स्वपर रक्षक व रत्नत्रयधारी-मोक्षपथिक तीर्थक्षत्रियों का धर्म)

(चालः 1. यमुना किनारे... 2.आत्मशक्ति...)

स्व-परान् रक्षति इति स क्षत्रियः, रत्नत्रयधारी मुनि सभी क्षत्रियः।

अनादि अनन्त शाश्वतिक क्षत्रियः, स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करने वाले क्षत्रिय।। (1)

इन्हें कहते हैं तीर्थक्षत्रिय, न्याय उपार्जित धन से करते दान।

रत्नत्रय होते हैं इनकी योनि, अतः वे होते अयोनि सम्भव।। (2)

जो नहीं क्षत्रिय जब वे बनते मुनि, तब वे बनते राजासम क्षत्रिय।

मुनि के वंश होता श्रीवंश, गृहस्थावस्था का सभी होता त्याग।। (3)

इह परलोक के जो हिताहित ज्ञान, वह ही यथार्थ से बुद्धि-पालन।

मिथ्याज्ञान नाश व सुज्ञान पाना, जिसके बलपर मोक्ष को पाना।। (4)

आत्मरक्षा सहित पर रक्षा करना, दुष्टनिग्रह शिष्ट पालन करना।

अक्षरम्लेच्छों को भी वशवर्ती करना, धार्मिक पाखण्डियों को सद्धर्म में लाना।। (5)

स्वचित्तसमाधान पूर्वक न्याय करना, निष्पक्ष माध्यस्थ से दण्डित करना।

इसे कहते हैं समंजसत्व गुण, भगवत्प्रणीत तीर्थक्षत्रिय गुण।। (6)

तीर्थंकरादि शलाकापुरुष आदि, तीर्थक्षत्रिय रूप में पाई प्रसिद्धि।

इक्ष्वाकु-सूर्य-चन्द्रादि वंश, अग्रवाल से ले हुम्मड वंश/(जाति)।। (7)

मोक्षगामी योग्य होता उच्चगोत्र, धर्मपुरुषार्थ से पाते मोक्ष तक।

ऐसा पुरुषार्थी ही तीर्थक्षत्रिय, मोक्ष प्राप्त करना ''सूरी कनक'' का ध्येय।। (8)

ग.पु.का. सागवाड़ा, दि-5/3/2021, रात्रि-8.45

(आदिपुराण के आधार पर यह कविता बनी।)

समता युक्त एकान्त शान्तभावी मितभाषी अलौकिक प्रतिभाधारी वैज्ञानिकाचार्य

श्री कनकनन्दी गुरुवर की विशेषताएँ (8 खूबियाँ)

हिंगलिश प्रयोगी कविता...

(चालः फूलों का तारों का...) **गुणानुमोदक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

समताधारी-शान्तभावी-निस्पृही...

एकान्तवासी-मितभाषी गुरुवर हैं....

वैज्ञानिक सूरी प्रतिभाशाली हैं...

कनकनन्दी सन्त जीनियस/(पुरोगामी/अद्वितीय) हैं...

जय हो गुरु...वैश्विक गुरु...(स्थायी)...

स्वतन्त्र निर्धारण (Self Assement) के क्षमताधारी...

सकारात्मक दृष्टि (Positive Attitude) प्रभावशाली...जय हो गुरु...

स्व का आदर (Self Respect) मूल्यांकन श्रेष्ठ करे...

पर का आदर (Other Respect) यथायोग्य करे...

रचनात्मक सोच (Creative Mind) से अग्रगामी (Progressive) हैं...

ख्याति-लाभ (Name-Fame) परे आनन्दित हैं...कनकनन्दी...(1)...

आत्मनिर्भरता (Self Dependent) का गुण विशेष हैं...

आत्म विश्वास (Self Confident) अलौकिक है...जय हो गुरु...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित...

प्रगतिशील (Progessive) सनम्र सत्यग्राही हैं...

भावात्मक सशक्त (Emotional Power) धैर्यशाली हैं...

अन्य का समादार-गुणग्राही हैं...कनकनन्दी...(2)...

नवाचारक (Innovative) मूल्यवान् (Valuable) उत्पादकता (Productivity)

आनन्ददायी विविध (Multi Diamentional) आयामी विधा...जय हो गुरु...

उच्चतम सफलता (High Success Rate) पुरोगामी (Forward the date) हैं...

पर चिन्ता व्यर्थ चर्चा (Non Productive Acitivity) नहीं है...

हर विषय का शोध-बोध-प्रयोग...

'सुविज्ञ' जनों के अभिप्रेरक (Mottivator) हैं...कनकनन्दी...(3)...